महादेवी का काव्य-वैभव

महादेवी का काव्य-वैभव

(श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य-सौन्दर्य की सर्वांगीण समीक्षा)

सम्पादक

रमेशचन्द्र गुप्त

हिन्दी विभाग, पी०जी०डी०ए०वी० कॉलिज

पहाड़गंज, नई दिल्ली-1

प्रकाशक

प्रेम प्रकाशन मन्दिर

दिल्ली-6

प्रकाशक प्रेमचन्द शर्मा
प्रेम प्रकाशन मन्दिर
3012 बल्लीमारान दिल्ली 6

सस्करण प्रथम सन १९६८
मूल्य ६ ५०

प्रावकथन

आधुनिक हिन्दी काव्य को नवीन अर्थालोक से दीपित करने म छायावादी काव्य धारा की अविस्मरणीय भूमिका है—इस सम्ब ध म अधिकाश मर्मी आलोचक किसी-न किसी रूप में एकमत हैं। कि तु ऐतिहासिक महत्त्व होने पर भी अथ-गाम्भीय और साकेतिक अभिव्यजना के कारण छायावादी कवियों के भाव-सागर के तलस्पर्शी मोतियों का सचय किन्हीं बिरले रसनो द्वारा ही सम्भव हो पाता है। तुलनात्मक दष्टि से इन कवियों म श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य धरातल तक पहुँच पाना और भी अधिक कठिन है। परिमाण म केवल लगभग २५० गीतो का सजन करने पर भी ऐकान्तिक साधना और भावो की सकुलता ने उनके गीतों का कलेवर अनायास ही एक सुनहले आवरण से आच्छादित कर दिया है।

प्रस्तुत ग्र थ 'महादेवी का का य-वभव' के सम्पादन के मूल में यही प्ररणा रही है कि इसके दिशा सकेत से लाभान्वित होकर प्रमाता कवि मानस से तादात्म्य कर सकें। मुझे विश्वास है कि इसका प्रत्येक निब ध काव्य-जिज्ञासुओं को परितुष्ट करके उन्हें श्रीमती महादेवी वर्मा की कविता-श्री क अनाविल सौन्दय का दशन कराने में समथ रहेगा।

इस सकलन को तयार करने मे जिन विद्वान् समालोचको का सहयोग मिला हैं, उन सभी का मैं आभार स्वीकार करता हूँ।

३ सी १४ रोहतक रोड
करौल बाग, नई दिल्ली ५

—रमेशचन्द्र गुप्त

अनुक्रमणिका

सिद्धात

समीक्षा

कृतियां

डॉ सुरेशचन्द्र गुप्त

१

महादेवी की काव्य-दृष्टि

श्रीमती महादेवी वर्मा हिन्दी की कवयित्रियो और गद्य लेखिकाओ मे तो शीर्ष स्थान की अधिकारिणी हैं ही छायावाद के प्रतिष्ठापक कवियों और वतमान युग के कवि-आलोचको मे भी उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी काव्य विषयक मान्यताएँ कविताओ के अन्तगत उपलब्ध नही होती—इसके लिए कुछ कविता सग्रहा की भूमिकाओं (रश्मि साध्यगीत, दीपशिखा, यामा, आधुनिक कवि–प्रथम भाग) और निबन्ध-सग्रहो (महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, क्षणदा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध) का अध्ययन अभीष्ट है। इनके अतिरिक्त सस्मरणात्मक रेखाचित्रों (अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी) म भी उन्होने कही कहीं स्फुट रूप मे काव्य के स्वरूपादि पर विचार किया है। उन्होने काव्य क स्वरूप, हेतुआ प्रयोजनों, रहस्यवाद तत्त्वों, रूपो और वण्य विषयों पर विचार करने के अतिरिक्त काव्य म छायावाद, आदशवाद और यथाथवाद के सापेक्षिक महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। काव्य के अभिव्यजना पक्ष के सम्बन्ध म उनकी धारणाएँ प्राय छायावाद के सन्दभ मे व्यक्त हुई हैं। यहाँ यह उल्लेख अप्रासगिक न होगा कि प्रसाद ने 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' और महादेवी ने 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' लिखकर छायावाद के अन्य कविया की अपेक्षा कान्य चिन्तन मे अपनी विशिष्ट रुचि का परिचय दिया है।

काव्य का स्वरूप

महादेवी ने किसी पथक शीपक के अन्तगत न तो काव्य का लक्षण निर्धारण किया है और न ही कवि कम का सुसम्बद्ध विवेचन किया है। फिर भी, उनकी कुछ स्फुट उक्तियो को एकत्र कर लने पर काव्य स्वरूप विषयक धारणाओ का पर्याप्त सजीव रूप से आकलन किया जा सकता है। यथा—

(अ) "भावना, ज्ञान और कम जब एक सम पर मिलत हैं, तभी युगप्रवतक साहित्यकार प्राप्त होता है।"[1]

(आ) "उसके (कवि के) लिए लोक-समष्टि ही इष्ट है, पर लोक के दान को निरीह भाव से अगीकार कर लेना उसे अभीष्ट नहीं होता। वह लोक का निर्माण भी अपनी कल्पना के अनुरूप चाहता है।"[2]

१ पथ के साथी पष्ठ ८
२ पथ के साथी, पृष्ठ २५

(इ) "कविता सबसे बड़ा परिग्रह है, क्योंकि वह विश्वमात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति है। वह जीवन के अनेक कष्टों को उपेक्षा योग्य बना देती है क्योंकि उसका सृजन स्वयं महती वेदना है। वह दुःख सत्य को आनन्द में स्पंदित कर देती है, क्योंकि अनुभूति स्वयं मधुर है।"[1]

(ई) "इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं वह बाहर रूपान्तरित हो जायगा। फिर जिस परिचय के लिये कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है उसी परिचय के लिये मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की सृष्टि क्यों करती? परन्तु मेरा निकटताजनित आत्म विज्ञापन उस राख से अधिक महत्त्व नहीं रखता जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है। जो इसके पार नहीं देख सकता, वह इन चित्रों के हृदय तक नहीं पहुँच सकता।"[2]

प्रथम उद्धरण में भावना और ज्ञान से उनका अभिप्राय क्रमशः हृदय तत्त्व और बुद्धि तत्त्व से है। कर्म को कवि कर्म का वाचक मानना चाहिए जिसका लक्ष्य भाव और विचार को वाणी प्रदान करना है। अभिप्राय यह है कि साहित्यकार की प्रतिभा का भावना की अनुभूति और ज्ञान लोक तक सीमित नहीं रहना चाहिए अपितु इन्हें समनुरूपता अथवा तारतम्य प्रदान करना भी उसका लक्ष्य होना चाहिए।

दूसरी और तीसरी उक्तियों में 'लोक समष्टि' अथवा 'विश्व मात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति' अथवा 'अनुभूति स्वयं मधुर है' कहकर काव्य में अनुभूति की प्रबलता का समर्थन किया गया है। किन्तु अनुभूति के दुःख सत्य को आनन्द में स्पंदित करने के लिए काव्य-लोक में कल्पना के महत्त्व की भी इसके साथ ही चर्चा कर दी गई है। इससे स्पष्ट है कि वे लोक दर्शन व्यक्तिगत विचार प्रतिक्रियाओं और कल्पना में समन्वय चाहती हैं। इनमें से किसी एक के प्रति कवि का अत्याग्रह वह भी उचित नहीं है यद्यपि अल्पाधिक पक्षपात स्वाभाविक होगा।

अंतिम उद्धरण में आत्माभिव्यक्ति अथवा अनुभवजन्य सहजता को कवि अथवा साहित्यकार का गुण विशेष अथवा स्वाभाविक धर्म माना गया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने कहानी में कल्पना को सत्य के रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति और रेखाचित्र में कल्पना के अनवकाश की तुलना करके अपना निर्णय अनुभूति के पक्ष में दिया है। यह उचित भी है क्योंकि आत्माभिव्यक्ति के लिए अनुभूति तो प्राण-तन्तु के समान है। उनकी कविताओं के अनुशीलन से भी यही ध्वनित होता है कि उनके द्वारा आध्यात्मिक अनुभवों की कल्पना वाग्विलास की प्रेरक न होकर अनुभूति-ग्रहण में सहायक है।

---

१ पथ के साथी, पृष्ठ १५ १६

२ अतीत के चलचित्र, अपनी बात, पृष्ठ २

इसका अर्थ यह है कि उन्होंने कल्पना का निषेध न करके उसे अनुभूति के सान्निध्य में काव्य की गरिमा के लिए आवश्यक माना है। हाँ, इन दोनों के बीच में ज्ञान से प्राप्त आत्म-संस्कार को भी वे सेतु-स्वरूप मानती हैं।

काव्य-हेतु

काव्य रचना के लिए अपेक्षित साधनों के विषय में महादेवी की दृष्टि प्रबुद्ध तो है, किन्तु उनकी एतत्सम्बद्ध उक्तियाँ विषय-स्पष्टीकरण के लिए अपेक्षित विस्तार गुण से रहित हैं। फिर भी, प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास के विषय में उनकी निम्नस्थ उक्तियाँ क्रमशः अवलोकनीय हैं—

(अ) "साहित्यिक सृजन केवल रुचि, इच्छा या विवशता का परिणाम नहीं है, क्योंकि उसके लिए एक विशेष प्रतिभा और उसे सम्भव करने वाले मानसिक गठन की आवश्यकता होती है।"[1]

(आ) "सच्चा कलाकार लोक हृदय को पहचाने बिना नहीं हो सकता, और जो लोक हृदय को पहचानता है वही अमर होता है—जनता उसी को जीवित रखती है।"[2]

(इ) "अभ्यास-मात्र से उत्कृष्ट साहित्य-सृजन सम्भव है, यह आज का वैज्ञानिक युग भी स्वीकार नहीं करता, अन्य अतीत युगों की चर्चा ही व्यर्थ है।"[3]

इन उक्तियों में काव्य-हेतु के विषय में प्रचलित धारणाओं की विज्ञान और मनोविश्लेषणशास्त्र के आधार पर पुनः परीक्षा की गई है। सबसे मुख्य बात तो यह है कि वे अभ्यास को काव्य-तत्त्व का केन्द्र मानने को प्रस्तुत नहीं हैं। उन्होंने अभ्यास का एकान्ततः तिरस्कार तो नहीं किया है, किन्तु वे मात्र अभ्यासमार्गी कवियों के बौद्धिक व्यायाम की समर्थिका भी नहीं हैं। अभ्यास को प्रतिभा और व्युत्पत्ति के बाद तीसरा साधन मानना होगा, और वह भी अत्यन्त गौण। वस्तुतः महादेवी का विशेष आग्रह लोक-साक्षात्कार द्वारा कवि प्रतिभा को प्रौढ़ि प्रदान करने के प्रति है। इसी आधार पर उन्होंने कवि-मन का विश्लेषण करके यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि लोक-दर्शन से ही प्रतिभा के लिए अपेक्षित मानसिक गठन संभव होता है। इस प्रकार वे प्रतिभा और व्युत्पत्ति में कारण-कार्य सम्बन्ध मानती हैं। यदि उनकी काव्य-स्वरूप विषयक मान्यता के सन्दर्भ में इस दृष्टिकोण की पुनर्व्याख्या की जाय तो यह कहना उचित होगा कि कविता को हृदय की वस्तु मानने के फलस्वरूप वे उसकी रचना के लिए अनुभूतिजनित अन्तर्प्रेरणा को अनिवार्य मानती हैं।

---

१ क्षणदा पृष्ठ ११३ ११४

२ जैसा हमने देखा (सम्पादक क्षेमचन्द्र 'सुमन') पृष्ठ १४०

३ क्षणदा, पृष्ठ ११८

काव्य प्रयोजन

काव्य हेतु की तुलना म महादेवी ने काव्य रचना से प्राप्य फल पर अधिक विस्तार से विचार किया है। उनके मत से कवि को काव्य माग पर अग्रसर होने पर भाव सवेदन, सौन्दय बोध और जीवन दशन की विशिष्ट प्रेरणा मिलती है जिससे वह नवीन सस्कारों को ग्रहण करने के अतिरिक्त आत्म परिष्कार भी करता है। यथा—'अपने सृजन से साहित्यकार स्वय भी बनता है, क्योंकि उसम नये सवेदन जन्म लेते हैं, नया सौन्दय-बोध उदय होता है और नये जीवन दशन की उपलब्धि होती है। सारांश यह है कि वह जीवन की दृष्टि से समृद्ध होता जाता है, इसी से साहित्य-सृष्टि का लक्ष्य स्वान्त सुखाय का विरोधी नहीं हो सकता।"[1] इस उक्ति म प्रतिपादित किये गये तीनो तत्व परस्पर निभर हैं क्योंकि काव्य रचना म जहाँ सवेदनशीलता कवि का प्रथम दायित्व है, वहां सौन्दय बोध की शक्ति और चिन्तन की क्षमता के बिना उसकी वाणी या तो पगु हो जाती है अथवा अभिव्यक्ति रूढ़ि बद्ध एव कुण्ठित रहती है। जीवन सिद्धान्ता का निर्धारण वही कवि कर सकता है, जो अनुभूति अथवा सवेदना के अतिरिक्त चिन्तन अथवा विचार-गरिमा का भी धनी हो। इससे कवि के दृष्टिकोण का परिष्कार तो होगा ही, सौन्दय-बोध की पद्धति से उसे अलौकिक आनन्द की प्राप्ति भी होगी। इसी सन्दभ मे उन्होने एक तो 'क्षणदा' म और दूसरे २४ १२ १९५७ को कलकत्ता मे आयोजित अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन के उदघाटन भाषण मे यह प्रतिपादित किया है कि साहित्य म सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति अवश्य रहनी चाहिए। उदाहरणस्वरूप क्रमश निम्नलिखित उद्धरण देखिए—

(अ) "साहित्य का उद्देश्य समाज के अनुशासन से बाहर स्वच्छन्द मानव स्वभाव मे उसकी मुक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए, समाज के लिए अनुकूलता उत्पन्न करना है।"[2]

(आ) "लेखक सामाजिक प्राणी हैं। उन्होने सदव स्वय का बाह्य ससार से एकीकरण किया है। अतएव, उनकी कृतियाँ कभी भी अपने में सीमित नहीं रहतीं। यही कारण है कि कोई भी कलाकार या लेखक नष्ट नहीं होता।"[3]

इन उक्तियो से स्पष्ट है कि साहित्य का प्रयोजन न केवल यह है कि उसम सामाजिक रीति-नीतियो का उल्लेख हो अपितु उसम व्यक्ति को श्रेष्ठ सामाजिक बनाने का प्रयत्न भी निहित रहता है। उनके अनुसार जहाँ सहृदय को व्यक्ति बोध के साथ साथ समाज बोध भी होना चाहिए, वहाँ साहित्य म इन दोनो म समन्वय स्थापन का लक्ष्य भी अपेक्षित है। उनकी एक अन्य प्रतिपत्ति यह है कि समाज के

१ क्षणदा, पृष्ठ ११८ ११९
२ क्षणदा पृष्ठ १२२
३ हिन्दुस्तान (दैनिक) २५ दिसम्बर सन १९५७ पृष्ठ ५

प्रति सद्भावनायुक्त कविता में यश-दान की क्षमता अनिवार्यतः अन्तर्निहित रहती है, अतः यश-लाभ को मुख्य मानकर समाज के प्रति दायित्व निर्वाह न करना साहित्यकार के अविवेक का सूचक है। यश के प्रति कवि के प्रलोभन का विरोध करने के अतिरिक्त उन्होंने कवि के लिए अर्थ-तृष्णा से मुक्ति भी आवश्यक मानी है। यथा—

(अ) "यदि साहित्य को आजीविका की दृष्टि से स्वीकृत कोई एक व्यापार मान लिया जाय, तो न व्यक्ति की प्रतिभा विशेष के लिए मुक्त क्षितिज मिल सकता है और न उक्त कर्म से उसके अविच्छिन्न लगाव को उचित कहा जा सकता है।"[1]

(आ) "कवि अपनी श्रोता-मण्डली में किन गुणों को अनिवार्य समझता है, यह प्रश्न आज नहीं उठता, पर अर्थ को किस सीमा पर वह अपने सिद्धान्तों का बोझ फेंककर नाच उठेगा इसका उत्तर सब जानते हैं। उसकी इच्छा अर्थ के क्षेत्र में जितनी मुक्त है वह श्रोताओं की इच्छा का उतना ही अधिक बन्दी है।"[2]

काव्य के तत्व

१ अनुभूति अथवा लोक-सत्य – महादेवी ने अनुभूति चित्रण अथवा जीवन सत्य की अभिव्यक्ति को कवि का मूल धर्म माना है किन्तु अनुभव का विचार-सम्पदा और कल्पनाशील मनोवृत्ति से सम्बद्ध रखने का भी वे समर्थन करती हैं। संवेदनशीलता अथवा भावुकता को उन्होंने काव्य का अन्तःस्पन्दन माना है जो अनुभूति का ही पर्याय है – 'कवि का निरीक्षण उसके संवेदन का पूरक है, अतः प्रत्येक शब्दचित्र में आकृति की रेखाएँ यथातथ्य और अन्तःस्पन्दन सत्य रहता है।'[3] अनुभव सिद्धि के लिए कवि जब लोक हृदय का साक्षात्कार करता है तब उसके समक्ष विशेषताओं के साथ साथ विकृतियाँ भी आती हैं। महादेवी ने कवि का गुण इस बात में माना है कि वह सामाजिक विषमताओं से आतंकित न होकर सहृदय दृष्टि अथवा करुणा को अपना कर विशेषताओं का यथास्थान अभिषेक करे—"समष्टिगत विषमता और विकृतियों के बीच भी व्यक्तिगत विशेषताओं के लिए कवि की करुणा का अभिषेक दुर्लभ नहीं रहता।"[4] यहाँ व्यक्तिगत विशेषताओं की खोज का अर्थ यह नहीं है कि व्यापक मानवता को व्यक्तिबद्ध कर लिया जाये, अपितु महादेवी जी का अभिप्राय यह है कि समाज सापेक्ष अध्ययन बिन्दुओं का एकान्ततः व्यक्ति निरपेक्ष नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कवि सामाजिकों के व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर समष्टि के सत्य को खोजने का प्रयास करता है। इसी गुण के बल पर कविता व्यक्ति सीमित न रह कर मानव मात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध होती है—" कविता हमारे व्यष्टि-सीमित

१ क्षणदा पृष्ठ ११५
२ स्मृति की रेखाएँ पृष्ठ ६६
३ सप्तपर्णा अपनी बात पृष्ठ ५७
४ सप्तपर्णा अपनी बात, पृष्ठ ६१

काव्य प्रयोजन

काव्य हेतु की तुलना में महादेवी ने काव्य रचना से प्राप्य फलों पर अधिक विस्तार से विचार किया है। उनके मत से कवि को काव्य मार्ग पर अग्रसर होने पर भाव संवेदन, सौन्दर्य-बोध और जीवन दर्शन की विशिष्ट प्रेरणा मिलती है जिससे वह नवीन संस्कारों को ग्रहण करने के अतिरिक्त आत्म परिष्कार भी करता है। यथा— 'अपने सृजन से साहित्यकार स्वयं भी बनता है, क्योंकि उसमें नये संवेदन जन्म लेते हैं, नया सौन्दर्य-बोध उदय होता है और नये जीवन दर्शन की उपलब्धि होती है। सारांश यह है कि वह जीवन की वृष्टि से समृद्ध होता जाता है, इसी से साहित्य-सृष्टि का लक्ष्य स्वान्तःसुखाय का विरोधी नहीं हो सकता।"[1] इस उक्ति में प्रतिपादित किये गये तीनों तत्त्व परस्पर निर्भर हैं क्योंकि काव्य रचना में जहाँ संवेदनशीलता कवि का प्रथम दायित्व है, वहाँ सौन्दर्य बोध की शक्ति और चिंतन की क्षमता के बिना उसकी वाणी या तो पंगु हो जाती है अथवा अभिव्यक्ति रूढ़िबद्ध एवं कुंठित रहती है। जीवन सिद्धान्तों का निर्धारण वही कवि कर सकता है जो अनुभूति अथवा संवेदना के अतिरिक्त चिन्तन अथवा विचार-गरिमा का भी धनी हो। इससे कवि के दृष्टिकोण का परिष्कार तो होगा ही, सौन्दर्य-बोध की पद्धति से उसे अलौकिक आनन्द की प्राप्ति भी होगी। इसी सन्दर्भ में उन्होंने एक तो 'क्षणदा' में और दूसरे २४ १२ १९५७ को कलकत्ता में आयोजित अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में यह प्रतिपादित किया है कि साहित्य में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति अवश्य रहनी चाहिए। उदाहरणस्वरूप क्रमशः निम्नलिखित उद्धरण देखिए—

(अ) "साहित्य का उद्देश्य समाज के अनुशासन से बाहर स्वच्छन्द मानव स्वभाव में उसकी मुक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए, समाज के लिए अनुकूलता उत्पन्न करना है।"[2]

(आ) "लेखक सामाजिक प्राणी हैं। उन्होंने सदैव स्वयं का बाह्य संसार से एकीकरण किया है। अतएव, उनकी कृतियाँ कभी भी अपने में सीमित नहीं रहतीं। यही कारण है कि कोई भी कलाकार या लेखक नष्ट नहीं होता।"[3]

इन उक्तियों से स्पष्ट है कि साहित्य का प्रयोजन न केवल यह है कि उसमें सामाजिक रीति नीतियों का उल्लेख हो, अपितु उसमें व्यक्ति को श्रेष्ठ सामाजिक बनाने का प्रयत्न भी निहित रहता है। उनके अनुसार जहाँ सहृदय को व्यक्ति-बोध के साथ साथ समाज बोध भी होना चाहिए, वहाँ साहित्य में इन दोनों में समन्वय स्थापन का लक्ष्य भी अपेक्षित है। उनकी एक अन्य प्रतिपत्ति यह है कि समाज के

---

१ क्षणदा, पृष्ठ ११८ ११९

२ क्षणदा पृष्ठ १२२

३ हिन्दुस्तान (दैनिक) २५ दिसम्बर सन् १९५७ पृष्ठ ५

प्रति सदभावनायुक्त कविता में यश-दान की क्षमता अनिवार्यत अन्तर्निहित रहती है, अत यश-लाभ को मुख्य मानकर समाज के प्रति दायित्व निवाह न करना साहित्यकार के अविवेक का सूचक है। यश के प्रति कवि के प्रलोभन का विरोध करने के अतिरिक्त उन्होंने कवि के लिए अर्थ-तृष्णा से मुक्ति भी आवश्यक मानी है। यथा—

(अ) "यदि साहित्य को आजीविका की दृष्टि से स्वीकृत कोई एक व्यापार मान लिया जाय, तो न व्यक्ति की प्रतिभा विशेष के लिए मुक्त क्षितिज मिल सकता है और न उक्त कम से उसके अविच्छिन्न लगाव को उचित कहा जा सकता है"[1]

(आ) "कवि अपनी श्रोता-मण्डली में किन गुणों को अनिवार्य समझता है, यह प्रश्न आज नहीं उठता, पर अर्थ की किस सीमा पर वह अपने सिद्धान्तों का बोझ फेंककर नाच उठेगा इसका उत्तर सब जानते हैं। उसकी इच्छा अर्थ के क्षेत्र में जितनी मुक्त है वह श्रोताओं की इच्छा का उतना ही अधिक बन्दी है।"[2]

काव्य के तत्त्व

१ अनुभूति अथवा लोक सत्य — महादेवी ने अनुभूति चित्रण अथवा जीवन सत्य की अभिव्यक्ति को कवि का मूल धर्म माना है किन्तु अनुभव का विचार सम्पन्न और कल्पनाशील मनोवृत्ति से समृद्ध रखने का भी वे समर्थन करती हैं। संवेदनशीलता अथवा भावुकता को उन्होंने काव्य का अन्तःस्पन्दन माना है जो अनुभूति का ही पर्याय है — 'कवि का निरीक्षण उसके संवेदन का पूरक है, अतः प्रत्येक शब्दचित्र में आकृति की रेखाएँ यथातथ्य और अन्तःस्पन्दन सत्य रहता है।'[3] अनुभव सिद्धि के लिए कवि जब लोक हृदय का साक्षात्कार करता है तब उसके समक्ष विशेषताओं के साथ-साथ विकृतियां भी आती हैं। महादेवी ने कवि का गुण इस बात में माना है कि वह सामाजिक विषमताओं से आतंकित न होकर सहृदय-दृष्टि अथवा करुणा को अपना कर विशेषताओं का यथास्थान अभिषेक करे— "समष्टिगत विषमता और विकृतियों के बीच भी व्यक्तिगत विशेषताओं के लिए कवि की करुणा का अभिषेक दुर्लभ नहीं रहता।"[4] यहाँ व्यक्तिगत विशेषताओं की खोज का अर्थ यह नहीं है कि व्यापक मानवता को व्यक्तिबद्ध कर लिया जाये, अपितु महादेवी जी का अभिप्राय यह है कि समाज सापेक्ष अध्ययन बिन्दुओं को एकान्ततः व्यक्ति निरपेक्ष नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कवि सामाजिकों के व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर समष्टि के सत्य को खोजने का प्रयास करता है। इसी गुण के बल पर कविता व्यक्ति सीमित न रह कर मानव मात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध होती है—" कविता हमारे व्यष्टि-सीमित

१ क्षणदा पृष्ठ ११५
२ स्मृति की रेखाएँ पृष्ठ ६६
३ सप्तपर्णा अपनी बात पृष्ठ ५७
४ सप्तपर्णा, अपनी बात, पृष्ठ ६१

जीवन को समष्टि-व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही व्यापक सत्य को अपनी परिधि में बाँधती हैं।"[1] अज्ञेय ने महादेवी की इन धारणाओं की व्याख्या करते हुए व्यक्तिगत अनुभूति को समष्टिगत अनुभूति के साँचे में ढालने की प्रक्रिया को निर्व्यक्तीकरण कहा है।[2] अर्थात वे इस सामाजिक दायित्वों के प्रति कवयित्री की जागरूकता का चिह्न मानते हैं। हाँ, यह उल्लेखनीय है कि अनुभव बिम्ब एक ही अखण्ड चेतना के भिन्न भिन्न छोर हैं, "चाहे भाषा, छन्द और अभिव्यक्ति-पद्धति उसकी (कवि की) व्यक्तिगत हो।"[3]

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि अनुभव अथवा लोक-सत्य कविता का प्रमुख तत्त्व है अर्थात् कवि का मूल धर्म यह है कि वह व्यक्तिगत अनुभूतियों के बल पर समाज के लिए उपयोगी सत्य को वाणी दे। महादेवी ने १५ दिसम्बर सन् १९५७ को प्रयाग में साहित्यकार-सम्मेलन के सभापति-पद से दिये गए भाषण में भी इस सत्य या अनुभूति वैविध्य के आधार पर दो रूप माने हैं—एक, जो पहले से विद्यमान है, और दूसरा जिसकी सम्भावना की जा सकती है। यथा—"जो सत्य है, जो सम्भाव्य सत्य है, वही प्रकट करने वाला साहित्यकार है ... साहित्यकार को जनता के हृदय के स्पन्दन के साथ रहना चाहिए।"[4] उन्होंने अन्यत्र भी इस बात पर बल दिया है कि जो कवि मानव-जीवन से सम्पृक्त अनुभूतिमयी कविता की रचना करता है वही सहृदयों को विशेष सुख प्रदान कर पाता है। वस्तुतः उनकी स्थापनाएँ ये हैं—(अ) काव्य में अनुभूत विषयों के चित्रण को महत्त्व मिलना चाहिए, (आ) उसमें मानव के अन्तर्जगत् तथा बहिर्जगत् का सामंजस्यपूर्ण चित्रण रहना चाहिए। इस विषय में ये उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

(अ) "इस युग का कवि हृदयवादी हो या बुद्धिवादी, स्वप्नद्रष्टा हो या यथार्थ का चित्रकार, अध्यात्म से बँधा हो या भौतिकता का अनुगत, उसके निकट यही एक मार्ग शेष है कि वह अध्ययन में मिली जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर जड़ सिद्धान्तों का पाथेय छोड़कर, अपनी सम्पूर्ण संवेदन शक्ति के साथ जीवन में घुल मिल जावे।"[5]

(आ) काव्य में बुद्धि हृदय से अनुशासित रहकर ही सक्रियता पाती है, इसी से उसका स्थान न बौद्धिक तर्क-प्रणाली है और न सूक्ष्म बिन्दु तक पहुँचने वाली [illegible] विचार पद्धति। वह तो जीवन की, चेतना और अनुभूति के समस्त वैभव के

१ आधुनिक कवि भाग १ भूमिका, पृष्ठ ११
२ [illegible] पृष्ठ ११२ ११६
३ [illegible] पृष्ठ १०
४ हिन्दुस्तान [illegible] १८ दिसम्बर सन १९५७
५ आधुनिक कवि भाग १ भूमिका पृष्ठ ११

साथ स्वीकार करता है। अतः कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है [1]।"

२ चिन्तन अथवा शिव तत्त्व—अनुभूति समृद्ध कविता के प्रति आस्था रखने के अतिरिक्त महादेवी ने काव्य मे शिव तत्त्व (चिन्तन) के समावेश को भी व्यावहारिक माना है। इस सम्बन्ध मे ये उक्तियाँ विचारणीय हैं—

(अ) "हमारी मानसिक वृत्तियों की ऐसी सामंजस्यपूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कहीं सम्भव नहीं। उसके लिए न हमारा अन्तर्जगत् त्याज्य है और न बाह्य, क्योंकि उसका विषय सम्पूर्ण जीवन है, आंशिक नहीं।"[2]

(आ) "काव्य के मूल मे धार्मिक उत्साह प्रेरक शक्ति का कार्य कर सकता है, किन्तु किसी धार्मिक उत्साह से काव्य की उत्कृष्टता सम्भव नहीं होती। इसके विपरीत कभी-कभी ऐसे उत्साह के कारण काव्य अपने सर्वमान्य उन्नत लक्ष्य से च्युत हो जाता है।"[3]

इन उक्तियो से स्पष्ट है कि महादेवी ने बुद्धि तत्त्व अथवा चिन्तन को हृदय तत्त्व अथवा अनुभूति से सम्बद्ध माना है। दूसरे शब्दो मे उन्होंने अन्तर्जगत और बाह्य जगत की क्रिया प्रतिक्रियाओ की चर्चा द्वारा जीवन के प्रति अखण्ड आस्था को व्यक्त किया है। द्वितीय उक्ति से यह भी स्पष्ट है कि वे तर्क पद्धति को सीमित महत्त्व देना चाहती हैं अन्यथा काव्य की सहजता पर कवि के उपदेष्टा व्यक्तित्व के हावी होने की आशंका रहती है। यह उचित भी है—अनुभव की मर्मस्पर्शिता के अभाव मे कोरा चिन्तन किस काम का ? वस्तुतः महादेवी का प्रतिपाद्य यह है कि जीवनव्यापी सत्य के आलोक मे कविता प्राणवती होती है और चिन्तन का रंग चढने पर वह और भी अधिक दीप्त हो उठती है।

३ कल्पना अथवा सौन्दर्य—अब तक के विवेचन से स्पष्ट है कि सत्य की सुखद अनुभूति को व्यक्त करने के लिए काव्य एक सफल माध्यम है। सत्य को वाणी देने में शिव की भाँति सुन्दर का भी विशेष महत्त्व है काव्य में सौन्दर्य के आधान के लिए कविगण प्रायः कल्पना का आधार लेते हैं किन्तु महादेवी ने सौन्दर्य को केवल कल्पनाश्रित न मानकर उसे मूलतः अनुभव से उद्भूत माना है। यथा—

(अ) "सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है। एक अपनी एकता मे असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता मे अनन्त।"[4]

१ दीपशिखा, भूमिका पृष्ठ १७

२ आधुनिक कवि भाग १ भूमिका, पृष्ठ १०

३ सप्तपर्णा, अपनी बात पृष्ठ ४०

४ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृष्ठ १

(आ) "कलाकार यदि सत्य अर्थों में कलाकार हो, तो वह कल्पना को सौंदर्यमय आकार देगा, उसमें वास्तविकता का रंग भरेगा, और उससे जीवन-संगीत की सुरीली लय की सृष्टि कर लेगा।"[1]

(इ) "सत्य की प्राप्ति के लिए काव्य और कलाएँ जिस सौंदर्य का सहारा लेते हैं वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है, केवल बाह्य रूपरेखा पर नहीं।"[2]

इन उक्तियों में कवयित्री का प्रतिपाद्य यह है कि सत्य काव्य का लक्ष्य है और सौंदर्य इस लक्ष्य पूर्ति में योग देने वाला साधन विशेष है। सत्य और सौन्दर्य के इस सहभाव को काव्य जगत में इससे पूर्व भी स्वीकृति प्राप्त थी जैसा कि रवीन्द्र की इस उक्ति से स्पष्ट है—"सत्य की यथार्थ प्राप्ति ही आनन्द है, वही परम सौंदर्य है।"[3] यह जिज्ञासा हो सकती थी कि सत्य के दोनों रूपों—सुरुचिपूर्ण यथार्थ कुरूप यथार्थ—में से सौंदर्य में किसका समावेश रहता है, किन्तु महादेवी ने उपयुक्त उक्तियों में इसका अप्रत्यक्षतः निर्णय कर दिया है। उनकी प्रतिपत्ति यह है कि काव्य में भौतिक सत्य को ज्यों का-त्यों अंकित न करके जीवन के प्रत्येक क्षण अथवा संसार के तुच्छतम पदार्थ को सौंदर्याकृति दी जाती है। कवि अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर विरसता में सरसता को जन्म देता है अथवा कुरुचिपूर्ण पदार्थों में जीवन के सत्य को मुखरित करता है। अभिप्राय यह है कि सौंदर्य दृष्टि के अभाव में कलाकार का सत्य पंगु है और कविता में जीवन की पूर्णता लाने के लिए उसमें सुविचार का होना भी आवश्यक है।

काव्य के रूप

महादेवी ने मुख्य रूप से गीतिकाव्य के स्वरूप का विवेचन किया है, किन्तु प्रसंगवश महाकाव्य के विषय में भी विचार व्यक्त किये हैं। गीतिकाव्य को उन्होंने विषय वविध्य और स्थायित्व के आधार पर विशेष महत्त्व दिया है—"हमारा साहित्य गीत की दृष्टि से विशेष समृद्ध रहा है। ज्ञान, आस्था, दर्शन, नीति अनुभूति आदि को अपने प्रसार के लिए ही नहीं, स्थायित्व के लिए भी गीत के रूप में आना पड़ा है।"[4] इस उक्ति से व्यंजित है कि गीतों में भाव संश्लेषण में रहें और संक्षिप्तता पर अनिवार्यतः बल रहता है। ये दोनों गुण उस अवस्था में और भी वर्द्धमान रहते हैं जब कवि की दृष्टि वैयक्तिक अनुभूतियों पर केंद्रित रहती है। महादेवी के शब्दों में "गीत यदि दूसरे का इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख दुख ध्वनित कर सके तो उसकी

१ क्षणदा पृष्ठ ५०
२ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृष्ठ ८
३ साहित्य (अनुवादक वंशीधर विद्यालंकार), पृष्ठ ४२
४ सप्तपर्णा, अपनी बात, पृष्ठ ११

मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमे स देह नहीं ।"[1] यहाँ यह विचारणीय ह कि गीतो म आत्माभि यक्ति का मु य स्थान है अथवा लोकानुभति का। हमारे विचार में इन दोनो में समजन रहना चाहिए। वस्तुत ये एक दूसरे के पूरक हैं—लोक मम को जाने बिना कवि के निजी अनुभवो में न तो निखार आ सकता है और न ही प्रेषणीयता। गीत की रचना चाहे जितने भावावेश म की गई हो उसमे लोक दृष्टि का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्यभावी है। महादेवी की निम्नलिखित उक्ति का विश्लेषण इसी स दभ म किया जाना चाहिए—'सुख दुख की भावावेगमयी अवस्था विशेष का, गिने चुने शब्दो मे, स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।"[2]

गीतिकाव्य के सम्ब ध मे महादेवी की अ य उक्तियाँ निम्नस्थ हैं—

(अ) "गेयता मे ज्ञान का क्या स्थान है, यह भी प्रश्न है। बुद्धि के तकक्रम से जिस ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है, उसका भार गीत नहीं सभाल सकता, पर तक से परे इन्द्रियो की सहायता के बिना भी हमारी आत्मा अनायास ही जिस सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लेती है, उसकी अभिव्यक्ति मे गेय स्वर-सामजस्य का विशेष महत्त्व रहा है।"[3]

(आ) "गीत का चिरन्तन विषय रागात्मिका वृत्ति से सम्ब ध रखने वाली सुख-दुखात्मक अनुभूति ही रहेगी। पर अनुभूति-मात्र गीत नहीं, क्योकि गेयता तो अभिव्यक्तिसापेक्ष है। साधारणत गीत व्यक्तिगत सीमा मे तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह श दरूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता मे गेय हो सके।"[4]

इन अवतरणो मे दो बातो पर बल दिया गया है—१ गीत म न तो बुद्धि सापेक्ष तक-क्रम की प्रधानता होती है और न ही उसमे सभी लोक सत्यो का समावेश रहता है—उसकी सफलता इस बात पर निभर करती है कि काव्यकर्त्ता की अनुभूतियाँ कितनी प्रबल और रागमयी हैं। २ गीतकार के लिए शिल्प साधना भी अनिवाय है अर्थात गीत म स्वरो का विशिष्ट आरोह अवरोह क्रम रहना चाहिए। दूसरे शब्दो में उन्होने आत्मानुभूति मम व्यजना और कला-समृद्धि को गीतिकाव्य के अनिवाय तत्त्व माना है जिन्हें कवियो और काव्यशास्त्रियो ने सदैव स्वीकृति दी है। उन्होंने गीतिका य म बौद्धिकता का प्रत्यक्षरूपेण विरोध किया है कि तु उनके काव्य का अनुशीलन करने पर अनुगम विधि स यह कहा जा सकता है कि गेय कविता में आत्मानुभूति की प्रधानता के कारण शुष्क ज्ञान भी रसात्मक हो जाता है।

१ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृष्ठ १४२
२ यामा अपनी बात पृष्ठ ७
३ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृष्ठ १४५
४ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृष्ठ १४७

गीतिकाव्य के भेद— महादेवी ने गीतिकाव्य को मूल रूप में दो वर्गों मे विभाजित किया है— १ काव्य गीत अथवा कला गीत २ लोक गीत। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत सगुण अथवा निर्गुण से सम्बद्ध रहस्य गीतो को रखा गया है और दूसरे वर्ग मे लोक गीतो की कला गीतो से तुलना की गई है। रहस्य गीतो म उन्होने आनन्दात्मक अनुभूति की रसाश्रयी व्याख्या को मुख्य माना है। यथा— (अ) "रहस्य गीतो का मूलाधार भी आत्मानुभूत अखड चेतन है"[१], (आ) "रहस्य-गीतों मे आनन्द की अभिव्यक्ति के सहारे ही हम चित्त और सत् तक पहुँचते हैं।"[१] इन उक्तियो के अतिरिक्त पूववर्ती अनुच्छेद मे भी कला गीतों के स्वरूप की चर्चा की गई थी। महादेवी ने लोक गीत की विभाजक रेखाओ को स्पष्ट करते हुए भी मूलत इन दोना को समनुरूप माना है, जसा कि इन उद्धरणो से स्पष्ट है—

(अ) "हमारा यह बिना लिखा गीतिकाव्य भी विविधरूपी है और जीवन के अधिक समीप होने के कारण उन सभी प्रवृत्तियों के मूल रूपो का परिचय देने मे समर्थ है जो हमारे काव्य मे सूक्ष्म और विकसित होती रह सकीं। प्रकृति को चेतन व्यक्तित्व देने की प्रवृत्ति उनमे अधिक स्वाभाविक रहती है।"[३]

(आ) "यदि हम भाषा, भाव, छन्द आदि की दृष्टि से लोकगीत और काव्य गीतो को सहृदयता के साथ परीक्षा करें तो दोनों के मूल मे एक सी प्रवृत्तियाँ मिलेंगी।"[४]

यहाँ लेखिका के प्रतिपाद्य से सहृदयो की सहमति सवथा स्वाभाविक होगी। कला गीतो मे कल्पना की उडान विचार बोझिलता अथवा शिल्प सम्बधी पूर्वाग्रहो के कारण उक्ति प्रवाह के बाधित हाने की सम्भावना रहती है। इसके विपरीत लोक-गीतो मे निर्झर जसी अनगढ नसर्गिकता मिलती है। महादेवी ने किसी एक के प्रति विशेष आग्रह न रखकर प्रकारान्तर से यह सुझाव दिया है कि गीतकारो को लोक-गीतो से असम्पक नही रखना चाहिए।

महाकाव्य— महादेवी ने महाकाव्यो की रचना नहीं की है फिर भी यह जानना रोचक होगा कि इस काव्य रूप के विषय मे उनकी क्या धारणाएं हैं। उन्होंने प्रसगवश इस सम्बन्ध मे ये विचार व्यक्त किये हैं— "महाकाव्य का अभिप्रेत, समग्र परिवेश के साथ जीवन की कथा होने के कारण विविध आकषण विकषण, कतव्य प्रमाद, स्नेह घृणा, जय-पराजय आदि, कवि की सूक्ष्म दृष्टि और निर्विकल्प हृदय की सवेदनशीलता की अपेक्षा रखते हैं। कवि का सौन्दर्य-बोध भी उसकी जीवन और *जगत् के प्रति आस्था से सम्बद्ध रहता है। यदि वह* जीवन और जगत् को दुःखात्मक भ्रम-मात्र मानता है तो उसके निकट उनमे न सौन्दय या सामजस्य की अनुभूति

१ २ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृष्ठ १४६
३ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृष्ठ १६९
४ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृष्ठ १७२

सुलभ रहती है, न सौन्दर्य या सामंजस्य की स्थिति उत्पन्न करने के प्रयास की आवश्यकता।"[1] यह उक्ति महाकाव्य के वस्तु-पक्ष तक ही सीमित रही है, उसके शिल्पगत गुणों की चर्चा यहां नहीं की गई है। कथावस्तु में व्यापकता सौन्दर्य बोध और संवेदनशीलता को भी उभारने में व सफल रही हैं किन्तु वस्तु गरिमा के लिए अपेक्षित अन्य तत्त्वों (पात्र देशकाल आदि) की चर्चा न रहने के कारण यहाँ इस प्रसंग का विस्तृत विवेचन सम्भव नहीं है।

काव्य-वण्य

महादेवी ने काव्य में जीवन से सम्पर्क को आवश्यक मानकर उसमें विषय वैविध्य पर बल दिया है। उनके अनुसार "साहित्य मनुष्य की शक्ति-दुर्बलता, जय-पराजय, हास अश्रु और जीवन-मृत्यु की कथा है।"[2] काव्य-वस्तु की सजीवता अथवा सम्प्रेषणीयता में विषयगत एकरसता बाधक होती है जिसे उन्होंने डॉ० पदमसिंह शर्मा 'कमलेश' के प्रति कथित इस उक्ति में प्रतिपादित किया है—"साहित्य को विविधता से पूर्ण होना चाहिए। यदि कोई एक किसान की पसलियों का चित्र खींचने वाली एक हजार कविताएँ लिखे तो उसमें एकरसता आ जायगी और वह साहित्य की विविधता से दूर की बात होगी।"[3]

महादेवी ने समकालीन छायावादी काव्य-दृष्टि के प्रभाववश कविता में कम से-कम तीन भिन्न विषयों को स्थान देने पर बल दिया है—प्रकृति सौन्दर्य अध्यात्म बोध, मानववादी दृष्टिकोण।

१ प्रकृति-सौन्दर्य —आलोच्य कवयित्री ने प्रकृति को काव्य का अनिवार्य उपकरण माना है—"भारतीय प्रतिभा प्रकृति के प्रति सनातन रागमयी है।"[4] उनका प्रतिपाद्य यह है कि प्रकृति चित्रण के बिना काव्य का सौन्दर्य फीका पड जाता है, क्योंकि प्रकृति का महत्त्व मानव संगीत की श्रवणकर्त्री के रूप में तो है ही, वह इस संगीत की प्रेरणादायिनी विभूति भी है—"प्रकृति मानव के सौन्दर्य और प्रेम के महागीत की सजग श्रोता ही नहीं, उसकी निरन्तर संगिनी अनुगायिका भी है, इसी से उसके अभाव में संगीत के स्वर अकेले और प्रतिध्वनिशून्य हो जाते हैं।"[5] अपने कविता-संग्रहों की भूमिकाओं में उन्होंने अवसर मिलने पर प्रकृति के महत्त्व की चर्चा अवश्य की है जिससे यह रहस्य स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपनी कविताओं में प्रकृति के सौन्दर्य रूपों को व्यापक अभिव्यक्ति क्यों दी है।

---

१ सप्तपर्णा अपनी बात पृष्ठ ४२
२ सप्तपर्णा अपनी बात पृष्ठ ११
३ जैसा हमने देखा (सम्पादक क्षेमचन्द्र 'सुमन'), पृष्ठ १४०
४ सप्तपर्णा, अपनी बात, पृष्ठ ३६
५ सप्तपर्णा, अपनी बात पृष्ठ ५७

२ अध्यात्म बोध रहस्यवादी कवयित्री होने के नाते महादेवी ने अपनी कविताओं में तो अध्यात्म तत्त्व को स्थान दिया ही है उन्होंने प्रसगवश इस पर भी विचार किया है कि आज की परिस्थितियों में इस विषय को किस रूप में अभिव्यक्ति दी जानी चाहिए। रूढ अर्थ में तो आध्यात्मिकता का सम्बन्ध परम्परीण धार्मिक मान्यताओं से है किन्तु महादेवी की प्रतिपत्ति यह है कि वर्तमान युग में उसे मानव धर्म से सम्बद्ध किया जाना चाहिए। यथा —

"कविता के लिए आध्यात्मिक पृष्ठभूमि उचित है या नहीं, इसका निर्णय व्यक्तिगत चेतना ही कर सकेगी। जो कुछ स्थूल, व्यक्त, प्रत्यक्ष और यथार्थ नहीं है, यदि केवल वही अध्यात्म से अभिप्रेत है तो हमें वह सौन्दर्य, शील, शक्ति, प्रेम आदि की सभी सूक्ष्म भावनाओं में फैला हुआ, अनेक अव्यक्त सत्य-सम्बन्धी धारणाओं में अंकुरित, इन्द्रियानुभूत प्रत्यक्ष की अपूर्णता से उत्पन्न उसी की परोक्ष रूप भावना में छिपा हुआ और अपनी ऊर्ध्वगामी वृत्तियों से निर्मित विश्वबन्धुता, मानव धर्म आदि के ऊँचे आदर्शों में अनुप्राणित मिलेगा। यदि परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों को हम अध्यात्म की संज्ञा देते हैं तो उस रूप में काव्य में उसका महत्त्व नहीं रहता। इस कथन में अध्यात्म को बलात् लोकसंग्रही रूप देने का या उसको ऐकान्तिक अनुभूति अस्वीकार करने का कोई आग्रह नहीं है। अवश्य ही वह अपने ऐकान्तिक रूप में भी सफल है परन्तु इस अरूप रूप की अभिव्यक्ति लौकिक रूपकों में ही तो सम्भव हो सकेगी।"[1]

इस उक्ति में छायावादी कविता में आध्यात्मिकता के समावेश को, निश्चय ही, नवीन भूमिका प्रस्तुत की गई है। महादेवी ने अध्यात्म बोध को लोक सम्बद्ध रखने के उद्देश्य से ही लौकिक प्रणय रूपकों का आश्रय लिया है। वस्तुतः यह कहना उचित होगा कि उन्होंने इस उक्ति द्वारा उस आक्षेप का उत्तर दिया है कि उनके काव्य में अलौकिक प्रेम की छाया में लौकिक प्रणय रूपों का विकास हुआ है। इसके उत्तर में उनकी प्रतिपत्ति यह है कि अध्यात्म बोध अब अपने रूढ़ अर्थ से भिन्न अर्थ में प्रचलित है अतः कवियों द्वारा लौकिक रूपकों का आश्रय लेना वर्तमान चिन्तन पद्धति के सर्वथा अनुकूल है।

३ मानववादी दृष्टिकोण—महादेवी ने काव्य में जीवन को उसकी व्यापकता के अनुरूप विविध रूपों में स्थान देने का परामर्श दिया है। इसके लिए काव्यानुभूति की सूक्ष्मता और चिन्तन की सुदृढता में सामंजस्य अपेक्षित है। लोक-जीवन की विविध धाराओं को गतिशील रखने में ही काव्य की सार्थकता है और इसके लिए मानववादी दृष्टिकोण को अपनाना युक्तियुक्त है। यथा—"यदि हम पहले मिली सौन्दर्य-दृष्टि और आज की यथार्थ-सृष्टि का समन्वय कर सकें, पिछली सक्रिय भावना से बुद्धिवाद की शुष्कता को स्निग्ध बना सकें और पिछली सूक्ष्म चेतना

१ आधुनिक कवि प्रथम भाग, भूमिका, पृष्ठ १७-१८

की व्यापक मानवता में प्राण प्रतिष्ठा कर सकें तो जीवन का सामजस्यपूर्ण चित्र दे सकेंगे।"[1] इस उक्ति की प्रेरणा भूमि केवल मानववाद ही नहीं है, अपितु महादेवी ने दो अन्य दिशाओं से भी प्रेरणा ली है—एक तो उन्होंने जीवन के विश्लेषण में छायावादी सौन्दर्य दृष्टि को अपनाने का आग्रह किया है और दूसरे वे प्रगतिवादी मान्यताओं के अनुकूल यथार्थ के बौद्धिक विश्लेषण को भी अपेक्षित मानती हैं। इन सबके समन्वय से काव्य में जिस लोक-मानवता का उदय होगा, वही कवि का अभिप्रेत होना चाहिए।

मूल्यांकन

महादेवी के काव्य सिद्धान्तों का अनुशीलन करने पर इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि उन्होंने काव्य चिन्तन के प्रति विशिष्ट जागरूकता दिखाई है। उनकी कुछ धारणाओं में परम्परानुमोदन-मात्र है किन्तु ऐसे प्रसंगों में भी जिज्ञासा का अभाव नहीं है। यदि उन्होंने काव्यांगों पर स्वतन्त्र रूप से विचार व्यक्त किये होते तो उनकी उपलब्धियाँ निश्चय ही कहीं अधिक गम्भीर होतीं। फिर भी, उल्लेखनीय है कि काव्य प्रयोजन को छोड़कर उन्होंने प्रायः सभी काव्यांगों के विवेचन में छायावाद की मौलिक विशेषताओं से लाभ उठाया है। कविता के प्रति उनकी आत्मीयता ने भी विवेचन में भावुकता का मणि काचन योग रखा है। यदि उनके पास छायावादी काव्य बोध का अभाव होता तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी आलोचना-दृष्टि इतनी प्रखर नहीं हो सकती थी।

---

१ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृष्ठ ७७

डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित

२

महादेवी की सौन्दर्यानुभूति

सौन्दर्य का प्रथम साक्षात्कार वस्तु विशेष के आकार अथवा उसके रूप बोध के साथ सम्पन्न होता है और उसकी अन्तिम परिणति गृहीता की चेतना के सम्पर्क में अनुभूति के रूप में होती है। जगत के साथ पहला सम्पर्क क्षण मनुष्य को उसके वैभिन्न्य और वैचित्र्य के प्रति औत्सुक्यपूर्ण कौतूहल से विचलित कर देता है और उसके अन्तर में आनन्द की तरंगवती धारा प्रवाहित कर देता है। अत वैचित्र्य को ही सौन्दर्य का आधार स्वीकार कर लें तो उसकी अवस्थिति वस्तुगत माननी होगी। आरम्भिक स्थिति में व्यक्ति का मन सौन्दर्य का भोक्ता है और उसकी चेतना सौन्दर्य का निश्चय करने में महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान करती है ऐसा ज्ञान नहीं रहता। इस बात का बोध नहीं रहता कि सौन्दर्य की प्रतिष्ठा वस्तु में नहीं अपितु उसकी दृष्टि में ही अधिक सम्भव होती है। मनुष्य में इस चेतना का विकास शनै शनै होता है कि वस्तु का सौन्दर्य व्यक्ति-सापेक्ष अथवा बहुत-कुछ व्यक्ति-सापेक्ष भी होता है।

औत्सुक्यपूर्ण कौतूहल की आरम्भिक भावना व्यक्ति मन के प्रसादन के हेतु प्राय मृदुल-कोमल को ही अपना आश्रय-स्थल बनाती है और प्राय दृश्य जगत् के बीच ही प्रसार पाती रहती है। चेतना के विकास और जगत से नाना रूप-व्यवहारों की परिचिति और अनुभूति के साथ साथ हमारा मन केवल अनेक वस्तुओं के वैविध्य के बीच से संचरित होता हुआ भी जब एक ही वस्तु के अनेक रूपों का भी परिचय-लाभ करने लगता है, तब गृहीता की दृष्टि अपनी चेतना के सहारे सौन्दर्य का ऐसा पट बुनने लगती है जो उसकी कल्पना पर निर्भर और जीवन के राग विरागात्मक भावों और उन्हें उभारने वाली वस्तुओं के सामंजस्य पर आश्रित रहता है।

स्थूल से आन्तरिक सूक्ष्म की ओर धावित होने का यह क्रम वैचित्र्य और अनेकता से एकता की ओर धावित होने का क्रम बन जाता है। जगत् के नाना रूप रंगों के बीच अनेकता में भी एकता की खोज करने वाला मन बुद्धि और हृदय में से कभी एक का और कभी दूसरे का सहारा लेता हुआ मार्ग ढूँढने लगता है। बुद्धि की प्रेरणा उसे ज्ञान के क्षेत्र में घुमाती है और हृदय की प्रेरणा उसकी रागात्मकता को उकसा कर जगा देती है और व्यक्ति कलाकार के रूप में मनचाहे माध्यम के सहारे दृश्य जगत् के साथ-साथ अन्तर्जगत् के दृश्य भी उपस्थित करने लगता है। वह बाहरी रूपाकारों में आन्तरिक प्रफुल्लता का रंग भरने लगता है। इसी दशा में प्राय जगत्

मन का बाल या कशोर औत्सुक्यपूर्ण कुतूहल किसी अदृश्य सत्ता के प्रति निष्ठावान बन जाता है, जिसके परिणामस्वरूप जगत का सारा प्रसार ही कलाकार को उस सत्ता से परिचालित-सा प्रतीत होने लगता है और उसकी निष्ठा जगत के सारे रूपों के प्रति एक विशेष रागात्मक सम्बन्ध जोड़ देती है। इसका एक सीधा परिणाम यह होता है कि कलाकार की आंखों के सामने से सुरूप और कुरूप का भेद हट जाता है और उसे सारी प्रकृति ही सुन्दर जान पड़ने लगती है। वह दोनों रूपों को उपस्थित करता चलता है और सब रूपों में एक ही सत्ता का आभास पाकर उसका चित्त सबके प्रति मुग्धता और आह्लाद से भर जाता है। इस रूप में वह सौन्दर्य के माध्यम से आनन्द की सम्प्राप्ति तो करता ही है, अखण्ड एकता के सत्य को भी साथ ही ग्रहण करता चलता है। रहस्यवाद और सर्वचेतनावाद की भूमिका यही है।

अनुभूति की इस स्थिति को कलाकार में दो दिशाएं सम्भव हैं जिनके द्वारा वह इस अनुभूति को अभिव्यक्ति देता या दे सकता है। एक वह सर्वत्र एक ही सत्ता का दर्शन या अनुभव करता हुआ केवल उस असीम और अनन्त की कल्पना में भी लीन रह सकता है और दूसरे जगत् के नाना रूपों में उसी की छवि का प्रसार देखकर व्यावहारिक धरातल पर मनुष्य की एकता और जीवन की अखण्डता का बोध कराने में प्रवृत्त हो सकता है। ऐसा कलाकार जीवन के नाना रूपों के चित्रण के माध्यम से उस विराट शक्ति की ही सूचना देता है किन्तु पहले प्रकार के कलाकार के सदृश आत्मनिष्ठ या अन्तर्मुख न होकर वह समाजनिष्ठ और बहिर्मुख हो जाता है। पहला कलाकार महादेवी के समान होता है और दूसरा तुलसीदास के।

जो कलाकार सौन्दर्य के इस राग-द्वेषात्मक, सुख दुःखात्मक रूप का सामंजस्य करके उसको ग्रहण नहीं कर पाते वे अन्तर्वृत्तियों के सहज उन्मीलन जनित सौन्दर्य के स्थान पर वस्तु के बाहरी आकार प्रकार में ही उसकी खोज करते भटकते हैं और रागात्मकता की अपेक्षा शब्दों की आभूषावृत्ति को प्रश्रय देते और कला को कला के लिए स्वीकार करते हैं।

महादेवी जी कला का लक्ष्य कला नहीं मानतीं। कला व काव्य का भी लक्ष्य है अखण्ड सत्य की प्राप्ति। यह प्राप्ति जीवन से दूर रहकर नहीं अपितु उसी के बीच से रास्ता निकाल कर ही हो पाती है और इस प्राप्ति में सौन्दर्य एक माध्यम बन जाता है। इस अखण्ड सत्य तक सौन्दर्य के माध्यम से पहुँचते हुए कलाकार और गृहीता को आनन्द का अनुभव होता रहता है। अतः सौन्दर्य जहाँ जीवन की अखण्डता और एकता का प्रतिष्ठाता है वहाँ आनन्द का प्रसारकर्ता भी है। इस सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए, इसीलिए महादेवी जी ने कहा है "कला का सत्य जीवन की परिधि में सौन्दर्य के माध्यम द्वारा व्यक्त अखण्ड सत्य है।"[1] अथवा "सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और

१ दीपशिखा, भूमिका, पृष्ठ ६

दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त, इसी से साधन के परिचय-स्निग्ध खण्ड रूप से साध्य की विस्मयभरी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर उठाता हुआ चलता है।"[1]

जीवन की परिधि और अनेकता में एकता' की चर्चा इसलिए आवश्यक हुई कि केवल व्यक्ति-सापेक्ष से सौन्दर्य का विचार करें तो इस भेद से व्यक्ति-व्यक्ति के बीच इतना अधिक रुचि-वैविध्य दिखाई देगा कि न तो सौन्दर्य का ही कोई एक रूप निश्चित किया जा सकेगा, न ही सामंजस्य का। इस वैविध्य से कारण उपस्थित अव्यवस्था से बचने का एकमात्र रास्ता है सम्पूर्ण जीवन का स्वीकार करना। वस्तुतः कलागत सौन्दर्य जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है, केवल बाह्य रूपरेखा पर नहीं।" जगत् की क्षुद्रतम वस्तु भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और प्राणि-जगत् की आवेगात्मक गतिशीलता से लेकर अन्तर्जगत् की रहस्यमयी विविधता तक सब स्थितियाँ सौन्दर्य के अन्तर्गत गृहीत होती हैं। यहाँ तक कि "छोटा, बड़ा, लघु, गुरु, सुन्दर, विरूप, आकर्षक, भयानक कुछ भी कला-जगत् से बहिष्कृत नहीं किया जाता।"[2]

कला-जगत में सुन्दर और विरूप दोनों का एक साथ स्थान है। "व्यष्टि और समष्टि में समान रूप से व्याप्त जीवन के हर्ष शोक, आशा निराशा, सुख-दुःख आदि की सख्यातीत विविधता को स्वीकृति देने ही के लिए कला-सृजन होता है।" किन्तु संसार में सुन्दर और विरूप जीवन सापेक्षता में घट या बढ़कर भी दिखाई दे सकते हैं। 'संसार में प्रत्येक सुन्दर वस्तु उसी सीमा तक सुन्दर है जिस सीमा तक वह जीवन की विविधता के साथ सामंजस्य की स्थिति बनाये हुए है और प्रत्येक विरूप वस्तु उसी अंश तक विरूप है जिस अंश तक वह जीवन व्यापी सामंजस्य को छिन्न भिन्न करती है।"[3] किन्तु सुन्दर की हमारे जीवन में जैसी स्वाभाविक स्थिति है वैसी विरूप की नहीं है। सौन्दर्य से हमारा परिचय अविभक्ति का है और विरूप से औपचारिक। दोनों एक ही सामंजस्य की ओर इंगित करते हुए भी परस्पर भिन्न हैं। "सौन्दर्य अपने समर्थन के लिए जिस सामंजस्य की ओर इंगित करता है, विरूपता भी अपने विरोध के लिए उसी की ओर संकेत करती है, पर दोनों के संकेत में अन्तर है। प्रत्येक सौन्दर्य खण्ड अखण्ड सौन्दर्य से जुड़ा है और इस तरह हमारे हृदयगत सौन्दर्य-बोध से भी जुड़ा है पर विरूप, व्यापक सामंजस्य का विरोधी होने के कारण हमारे भीतर कोई स्वभावगत स्थिति नहीं रखता। सौन्दर्य से हमारा वह परिचय है जो अनन्त जलराशि में एक लहर का दूसरी लहर से होता है, पर विरूपता से हमारा

१ दीपशिखा, भूमिका, पृष्ठ १
२ दीपशिखा भूमिका, पृष्ठ ६
३ वही, पृष्ठ ७
४ वही, पृष्ठ १८
५ वही, पृष्ठ २०

वैसा ही मिलन है जैसा पानी मे फेंके हुए पत्थर और उससे उठी लहर मे सहज है ।"[१] इतना ही नही सौंदय की चिर नवीनता उसे काव्य के लिए ग्राह्य बना देती है और विरूपता साधारण होकर उस सीमा मे स्थान नही पाती । "सौंदय चिर परिचय मे भी नवीन है पर विरूपता अति परिचय मे नितात साधारण बन जाती है। इसी से सौंदय की रहस्यानुभूति ही अतहीन काव्य-कक्ष मे नये परिच्छेद जोडती रहती है ।"[२]

सौन्दय की अनुभूति एक प्रकार स रहस्यानुभूति ही है । बाह्य जगत ही नही, अ तजगत म होने वाले व्यापार भी हमारे लिए कम महत्त्वपूण नही हाते । स्थूल और सूक्ष्म के सामजस्य मे ही जीवन है, केवल स्थूल या केवल सूक्ष्म की अपनी चाहे जसी स्थिति हो, जीवन के लिए उनका महत्त्व नही है । कम का जितना महत्त्व है, उसस कम भाव का नहीं है। "हमारे जीवन मे सूक्ष्म और स्थूल की जसी समन्वयात्मक स्थिति है वही कला को, केवल स्थूल या केवल सूक्ष्म मे निर्वासित न होने देगी। जब हम एक व्यक्ति के काय को स्वीकार करेंगे तब उसकी पट भूमिका पर बने हुए वायवी स्वप्न, सूक्ष्म आदश, रहस्यमयी भावना आदि का भी मूल्य आकना आवश्यक हो जायगा ।"[३] अन्तजगत् की यह स्थिति रहस्यानुभूति म आनन्द की प्रतिष्ठा करती है अत सौन्दर्यानुभूति को रहस्यानुभूति मान लेने पर उसम आनन्द को स्वीकार करना सहज हो जाता है। इसी से महादेवी जी का कथन है "व्यापक अर्थ में तो यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक सौंदय या प्रत्येक सामजस्य की अनुभूति भी रहस्यानुभूति है। यदि एक सौंदय ख ड या सामजस्य-खण्ड हमारे सामन किसी व्यापक सौंदय या अखण्ड सामजस्य का द्वार नहीं खोल देता तो हमारे अन्तजगत् का उल्लास से आदोलित हो उठना सम्भव नहीं। इतना ही नहीं, किसी कम के सौंदय और सामजस्य की अनुभूति भी रहस्यात्मक हो सकती है, इसी से मनुष्य ऐसे कर्मों को आलोक-स्तम्भ बना-बनाकर जीवन-पथ मे स्थापित करता रहा है ।"[४]

सौंदर्यानुभूति से अलौकिक रहस्यानुभूति तक का यह यात्रा पथ जीवन की विविधता को उसके सत्य एव अखण्ड रूप मे ग्रहण करने के कारण ही आनन्दमय बन जाता ह । बुद्धि जिस रहस्य को ज्ञेय के रूप मे ग्रहण करती है, हृदय का व्यापार उसे ही प्रेय बनाकर उपस्थित करता रहता ह । प्रेय का यह व्यापार चाहे कितना ही अलौकिक क्यो न हो, कला के क्षेत्र में लौकिक भूमि पर ही सचरण करता ह । रागात्मकता माधुय भाव का पल्ला पकडकर ही आगे बढती है । रहस्य की इस भूमि पर अन्तजगत् की अनुभूति भी बाह्य जगत् के समान ही सहज हो उठती है । दूसरे शब्दो

१ २ वही पृष्ठ २८
३ दीपशिखा, भूमिका, पृष्ठ ६
४ वही, पृष्ठ २७ २८

में अखण्ड चेतन से तादात्म्य का रूप केवल बौद्धिक भी हो सकता है, पर रहस्यानुभूति में बुद्धि का ज्ञेय ही हृदय का प्रेय हो जाता है। इस प्रकार रहस्यवादी का आत्मसमर्पण बुद्धि की सूक्ष्म धारणा से सौन्दर्य की प्रत्यक्ष विविधता तक फैल जाने की क्षमता रखता है, अतः उसमें सत् और चित् की एकता में आनन्द सहज संभव रहेगा।'[1] रहस्यद्रष्टा जब खण्डरूपों से चलकर अखण्ड और अरूप चेतन तक पहुँचता है तब उसके लिए अपने अन्तर्जगत् के समय की अनुभूति भी सहज हो जाती है और बाह्य जगत की सीमा की भी। अपनी व्यष्टि अपूर्णता का समष्टि पूर्णता में मिला देने की इच्छा उसे पूर्ण आत्मदान की प्रेरणा देती है। यदि तादात्म्य के साथ माधुर्य भाव न होता तो यह ज्ञाता और ज्ञेय की एकता बन जाता, भावभूमि पर आधार आधेय की एकता नहीं।'[2]

सौन्दर्य और रहस्यानुभूति सम्बन्धी इन मान्यताओं के विस्तृत स्पष्टीकरण की यहाँ आवश्यकता इसलिए हुई कि महादेवी के काव्य के सम्बन्ध में विचार की सही दिशा अपनाई जा सके। महादेवी जी की इन मान्यताओं के अनुरूप ही उनका काव्य भी है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने मान्यताओं का व्यावहारिक रूप देने के लिए ही काव्य की रचना की है। इसके विपरीत शायद यह कहना ठीक होगा कि अनुभूति के बल पर उपस्थित काव्य को जब चिन्तन का सहारा मिला तब उन्होंने अपनी भूमिकाओं में उस अनुभूत सत्य को ही वाणी देने का प्रयास किया है।

महादेवी जी के काव्य में अपने ढंग की सुख-दुखात्मक विविधता भी है और अखण्ड सत्य की अनुभूति भी, उनमें सौन्दर्य के प्रति औत्सुक्यपूर्ण जिज्ञासा भी है और माधुर्यपूर्ण तरल भावुकता भी, सान्द्र अनुभूति को उपस्थित करने की शक्ति भी है और चित्रमय अंकन की सहज कलाकारिता भी। फिर भी, महादेवी जी के काव्य की प्रसार भूमि यद्यपि जीवन और जगत् भले ही हो तथापि जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण जितना आन्तरिक अनुभूतिपरक है उतना बाह्य अनुभवपरक नहीं। पहले ही कहा जा चुका है कि इस दृष्टि से महादेवी तुलसीदास जी से भिन्न स्थिति रखती हैं। जीवन और परिस्थितियों का सामाजिक सन्दर्भ में जैसा रूप अंकित होना चाहिए या हो सकता है, महादेवी जी या तो उससे परिचित होकर भी उससे अपरिचित ही बना रहना चाहती हैं, या उसे पहचानती ही नहीं हैं। अतः उनके काव्य में अनुभूति की गीतात्मक तन्मयता तो है किन्तु विराट सामाजिकता नहीं है। सुख दुःख से उनका परिचय है अवश्य, किन्तु उसके विविध रूपों के उद्घाटन में, अनेक घटनाओं के बीच उसके प्रकाशन में, उनकी वृत्ति नहीं रमती। *परिणामतः उनका काव्य बाह्य प्रकृति से ही अभिव्यक्ति का सन्तोष ग्रहण करता है।* उसमें भी केवल प्रातः सन्ध्या और रात्रि के चित्र ही उन्हें रुचिकर प्रतीत होते हैं,

१ देखिए, वही पृष्ठ २६
२ देखिए, वही पृष्ठ ३१

ऋतुओं में वसंत और वर्षा ही उन्हें विशेष उल्लेखनीय ज्ञात होती हैं। मानवीय रूपों में नारी-रूप ही उन्हें मोहता है।

'नीहार' से 'दीपशिखा' तक के पूरे पाँच चरणों में महादेवी सहज औत्सुक्य के रहस्य से ऊपर उठती हुई अन्ततः ऐसे स्थल पर पहुँच गई हैं जहाँ वह दृढ़ता के साथ कह पाती हैं -'हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन' अथवा अश्रु-हास की समान महत्ता स्वीकार करती हैं

एक ही उर मे पले, पथ एक-से दोनों चले हैं।
पलक पुलिनों पर, अधर-उपकूल पर दोनों खिले हैं।
एक ही झंकार मे युग अश्रु, हास घुला चुकी हूँ।

और दुःख आविल, सुख से पंकिल' जीवन को वह भली भाँति समझ चुकी हैं किन्तु नीहार' और 'रश्मि' मे गूँजने वाला उनका उल्लास आज भी पूर्णतया खोया नहीं है। रश्मि' मे महादेवी ने जिस 'कनक-से दिन, मोती-सी रात, सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात' को देखकर जग म चित्राधार की ओर जिज्ञासु भाव से देखा था, उसका आकर्षण नष्ट नहीं हुआ है केवल आन्तरिक अनुभूति म अपेक्षाकृत अधिक स्थैर्य के लक्षण प्रकट हो आये हैं। जीवन बोध की 'कण-कण को जान लेने की जितनी तीव्र गन्ध 'दीपशिखा' में है, उतनी ही उससे पूर्व की कृतियों म प्रकृति बोध की मादकता भी है। न दीपशिखा' म प्रकृति बोध समाप्त हुआ है, न उससे पूर्व की कृतियों मे जीवन-बोध। फिर भी महादेवी की रचनाओं का मूल सौन्दर्याधार तो प्रकृति ही है—बाह्य प्रकृति। प्रकृति का चित्रण करते हुए महादेवी वर्ण, ध्वनि, गन्ध, स्पर्श और रस आदि के ऐसे सूक्ष्म ऐन्द्रियबोध जागृत करती हैं कि पाठक का संवेदनापूर्ण हृदय कहीं भी उल्लास शिथिल नहीं होता। सौन्दर्य के इतने भिन्नवर्णी चित्र महादेवी ने आँके हैं कि यहाँ सबका उल्लेख नहीं किया जा सकता। कुछ दो-चार चित्र भी सामने रखे जा सकें तो बहुत हैं।

महादेवी ने मुख्यतः उषा, सन्ध्या और रात्रि के ही चित्र अंकित किये हैं। किन्तु इन चित्रों मे भिन्नता इतनी है कि कोई भी एक-दूसरे से मिलता-जुलता नहीं है, अतः आकर्षण मे दूसरे से कम नहीं है। उषा के पाँच भिन्न चित्र देखें। 'रश्मि' की पहली कविता चुभते ही तेरा अरुण बान' 'नीरजा' म 'मत अरुण घूँघट खोल री', 'सान्ध्यगीत' मे 'ओ अरुण वसना' तथा 'आज सुनहली बेला' और 'दीपशिखा' की 'सजल है कितना सवेरा' कविताओं मे पहली में प्रातःकालीन स्वर्णवर्णी सुषमा जागरण की गति भंगिमा और वातावरण की मादकता का दृश्य अंकित है तो दूसरी म तारक-कुसुम चुनने वाली सलज्ज नवोढ़ा का सौन्दर्य उभर रहा है। सलज्ज अरुण वर्णा उषा, अम्बर के तारक कुसुम नभ की हाट म सजे रजनी-रूपी नायिका के मोती का रूप और नव इन्द्रधनुषी मेघ-लहरियों मे बिछलती इठलाती यौवनमत्त उषा का मूर्ति

मत, मानवीकृत रूप उसकी ललित चेष्टाओं के माध्यम से बड़ी सहृदयता और सावधानी से अंकित किया गया है। जो अरुण वसना में नव वधू का रूप सामने आता है तो 'आज सुनहली वेला' में भावी परिवर्तन के संकेतों से विह्वल चित्त की वर्तमान सौंदर्य को पकड़ लेने की ललक है और 'सजल है कितना सवेरा' में रात्रि के घन कुहासे को चीर कर उपस्थित होनेवाली उल्लसित उषा का स्वागत है। लेकिन ये सब चित्र केवल उषा के ही नहीं हैं, निशा की सापेक्षता में उषा के चित्र हैं अतः पट परिवर्तन का सा परिणामकारक मोह-जाल फैलाते हैं।

उषा के समान ही संध्या के भी कई चित्र हैं 'रश्मि' में संध्या का आगमन *'अथक सुषमा का सृजन विनाश' का सूचक बनता है प्रातःकाल से सांध्यकाल तक* बदलते आकाशी रंग रूपों पर रात्रि का अंधकार घिर आता है तो कहे बिना नहीं रहा जाता—

गुलालों से रवि का पथ लीप,
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती संध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्ण पराग,
उसे तम की बढ़ एक झकोर,
उड़ा कर ले जाती किस ओर ?
अथक सुषमा का सृजन विनाश,
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?

सांध्यगीत' की संध्या भी अपने रूपाकर्षण में मोहक है। यह संध्या फूली सजीली' में पुन

आज सुनहली रेणु मली सस्मित गोधूली ने।
रजनीगंधा आज रही है नयनों में सोना।
हुई विद्रुम, वेला नीली।

का रोमांचक चित्र है और अंत में पूर्वकथित सिद्धान्त भी 'सृष्टि भरन पर गर्वीली' शब्दों में दुहरा दिया गया है, किन्तु 'दीपशिखा' में 'गोधूली अब दीप जला ले' कविता में केवल सांध्य-सौंदर्य के बीच उभरती रजनी का स्वागत ही है परिवर्तन का संकेत देकर किसी सिद्धांत से उसका सिरा जोड़ने का प्रयत्न नहीं है। सांध्य रंगों को देखकर महादेवी इतना ही कहती हैं—

कुमकुम से सीमंत सजीला, केशर का आलेपन पीला।
किरणों की अंजन रेखा, फीके नयनों में आज लगा ले।

अथवा यह कि

किरण-माल पर घन के शतदल,
कलरव-लहर विहग-बुदबुद चल।
क्षितिज सिंधु को चली चपल,
आभा सिर अपना उर उमगा ले।

उषा-वर्णन की भाँति न तो सन्ध्या-वर्णन की बहुलता ही है और न वैसी विविधता ही, किन्तु रजनी के कई रूप महादेवी जी की कविताओं में अवश्य मिलते हैं। महादेवी जी 'प्रिय, सान्ध्य गगन मेरा जीवन' कहती अवश्य हैं किन्तु सन्ध्या के उतने चित्र नहीं उरेहतीं। सबसे अधिक उनका मन रमा है रात्रि वर्णन में। रात्रि के प्रति उनका आकर्षण 'नीहार' और 'रश्मि' में पुलक भरा है, 'नीरजा' में आवेगमय और 'सान्ध्यगीत' तथा दीपशिखा में निर्वाणोन्मुख। 'नीहार' की निम्नांकित पंक्तियाँ सम्पूर्ण कविता के हृत विषादमय वातावरण में मृदुल संवेदन और अंतर्भावों को ही जागृत नहीं करती, बल्कि पाठक को मिलन के मादक व्यापार में विभोर भी करती हैं। शब्दों का ऐसा अर्थमय प्रयोग कम ही देखने को मिला करता है—

रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे वैभव पर, जब रोती थी उजियाली॥
शशि को छूने मचली सी, लहरों का कर-कर चुम्बन।
बेसुध तम की छाया का, तटिनी करती आलिंगन।

सौन्दर्य की अखण्ड प्रतिमा की तरह रजनी महादेवी जी के भावार्चन का लक्ष्य बनती रही है। वसन्त ने शरीर और प्रकृति को जिस नवीन चेतना की गाँठ खोलकर अकस्मात् हो हृत निर्भर बना दिया है उसी ने रजनी रानी के अंगों को भी सहेज दिया है। शरद-ज्योत्स्ना में नहाई हुई रजनी नहीं वसन्त रजनी ही महादेवी जी का ध्यान आकर्षित करती है। उसकी रूपसज्जा के लिए उनका उपक्रम देखने योग्य है—पुलक हास संकोच और सिहरन का ऐसा क्रम है कि प्रिया का प्रिय से मिलन के पूर्व से लेकर उसके अन्त तक का चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है। प्रकृति पर नारी भाव का आरोप तो महादेवी जी ने बार बार किया है किन्तु 'धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी' कविता में प्रसाधन सौन्दर्य और आन्तरिक उल्लास का जैसा चित्र अंकित किया है वह स्थायी प्रभाव डालता है। यदि इस कविता में नवोढा का लजीला सजीलापन है तो 'नीरजा' की ही दूसरी कविता 'रूपसि तेरा घन केश पाश' में सद्यःस्नाता का उद्दीपक सौन्दर्य अंकित है। उच्छ्वसित वक्ष मलयज बयार बन जाने वाली निश्वास स्निग्ध लटें और पास ही कहीं कूजने वाली मयूरी—सारा दृश्य ही ऐसा है कि अनजाने ही मन छूने के लिए बेकल हो उठे, लेकिन यह बेकली रूप के लुटेरे की बेकली नहीं है, उदास जग शिशु की माँ के आँचल में मुँह छिपा लेने की बेकली है। प्यार का ऐसा रूप शीलता का ऐसा स्पर्श भी कितना सुन्दर

मत, मानवीकृत रूप उसकी ललित चेष्टाओं के माध्यम से बड़ी सहृदयता और सावधानी से अंकित किया गया है। ओ अरुण वसना म नव वधू का रूप सामने आता है तो जाज सुनहली वेला म भावी परिवतन के सकेतों से विह्वल चित्त को वतमान सौंदय को पकड लेने की ललक है और सजल है कितना सवेरा म रात्रि के घन कुहासे को चीर कर उपस्थित होनेवाली उल्लसित उषा का स्वागत है। लेकिन ये सब चित्र केवल उषा के ही नहीं हैं, निशा की सापेक्षता मे उषा के चित्र हैं, अत पट परिवतन का मा परिणामकारक मोह-जाल फलाते हैं।

उषा के समान ही सध्या के भी कई चित्र हैं 'रश्मि' म सध्या का आगमन 'अथक सुषमा का सृजन विनाश' का सूचक बनता है, प्रात काल से सायकाल तक बदलते आकाशी रग रूपों पर रात्रि का अधकार घिर आता है तो कहे बिना नहीं रहा जाता—

गुलालों से रवि का पथ लीप,
जला पश्चिम मे पहला दीप,
विहसती सध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वण पराग,
उसे तम की बढ एक झकोर,
उडा कर ले जाती किस ओर ?
अथक सुषमा का सजन विनाश,
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?

सान्ध्यगीत' की सध्या भी अपने रूपाकषण मे मोहक है। 'यह सध्या फूली सजीली' म पुन

आज सुनहली रेणु मली सस्मित गोधूली ने।
रजनीगधा आज रही है नयनों म सोना।
हुई विद्रुम, वेला नीली।

का रोमाचक चित्र है और अत म पूवकथित सिद्धान्त भी 'सष्टि भरन पर गर्वीली' शब्दों मे दुहरा दिया गया है किन्तु 'दीपशिखा मे गोधूली अब दीप जला ले' कविता म केवल सान्ध्य-सौंदय के बीच उभरती रजनी का स्वागत ही है परिवतन का संकेत देकर किसी सिद्धान्त से उसका सिरा जोडने का प्रयत्न नहीं है। सान्ध्य रगों को देखकर महादेवी इतना ही कहती हैं—

कुमकुम से सीमन्त सजीला, केसर का आलेपन पीला।
किरणों की अजन रेखा, फीके नयनों मे आज लगा ले।

अथवा यह कि

किरण-नाल पर घन के शतदल,
कलरव-लहर विहग-बुदबुद चल।
क्षितिज सिंधु को चली चपल,
आभा सिर अपना उर उमगा ले।

उषा-वर्णन की भाँति न तो सन्ध्या-वर्णन की बहुलता ही है और न वैसी विविधता ही, किन्तु रजनी के कई रूप महादेवी जी की कविताओं में अवश्य मिलते हैं। महादेवी जी 'प्रिय, सान्ध्य गगन मेरा जीवन' कहती अवश्य हैं किन्तु सन्ध्या के उतने चित्र नहीं उरेहतीं। सबसे अधिक उनका मन रमा है रात्रि वर्णन में। रात्रि के प्रति उनका आकर्षण 'नीहार' और 'रश्मि' में पुलक भरा है, 'नीरजा' में आवेशमय और 'सान्ध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' में निर्वाणोन्मुख। 'नीहार' की निम्नांकित पंक्तियाँ सम्पूर्ण कविता के हर्ष विषादमय वातावरण में मृदुल संवेदन और अन्तर्भावों को ही जागृत नहीं करतीं, बल्कि पाठक को मिलन के मादक व्यापार में विभोर भी करती हैं। शब्दों का ऐसा अर्थमय प्रयोग कम ही देखने को मिला करता है—

रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे वैभव पर, जब रोती थी उजियाली॥
शशि को छूने मचली सी, लहरों का कर-कर चुम्बन।
बेसुध तम की छाया का, तटिनी करती आलिंगन।

सौन्दर्य की अखण्ड प्रतिमा की तरह रजनी महादेवी जी के भावार्चन का लक्ष्य बनती रही है। वसन्त ने शरीर और प्रकृति को जिस नवीन चेतना की गाँठ खोलकर अकस्मात ही हर्ष निर्भर बना दिया है उसी ने रजनी रानी के अंगों को भी सहेज दिया है। शरद-ज्योत्स्ना में नहाई हुई रजनी नहीं वसन्त रजनी ही महादेवी जी का ध्यान आकर्षित करती है। उसकी रूपसज्जा के लिए उनका उपक्रम देखने योग्य है—पुलक, हास संकोच और सिहरन का ऐसा क्रम है कि प्रिया का प्रिय से मिलन के पूर्व से लेकर उसके अन्त तक का चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है। प्रकृति पर नारी भाव का आरोप तो महादेवी जी ने बार बार किया है किन्तु 'धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी' कविता में प्रसाधन सौन्दर्य और आन्तरिक उल्लास का जैसा चित्र अंकित किया है वह स्थायी प्रभाव डालता है। यदि इस कविता में नवोढ़ा का लजीला सजीलापन है तो 'नीरजा' की ही दूसरी कविता 'रूपसि तेरा घन केश पाश' में सद्यःस्नाता का उद्दीपक सौन्दर्य अंकित है। उच्छ्वसित वक्ष मलयज बयार बन जाने वाली निश्वास स्निग्ध लटें और पास ही कहीं कूजने वाली मयूरी—सारा दृश्य ही ऐसा है कि अनजाने ही मन छूने के लिए बेकल हो उठे, लेकिन यह बेकली रूप के लुटेरे की बेकली नहीं है, उन्मत्त जग शिशु की माँ के आँचल में मुँह छिपा लेने की बेकली है। प्यार का ऐसा रूप शीलता का ऐसा स्पर्श भी कितना सुखद

होता है कितना सुन्दर। इन्हीं कविताओं की तुलना मे 'नीरजा' की ही 'ओ विभावरी' कविता रखकर देखें, कितनी सीधी और कसी सकेतात्मक है। 'सान्ध्यगीत' की 'जाग जाग सुकेशिनी री' मे महादेवी का स्वर बदल गया है। उल्लास और आवेग की तीव्रता से स्थिरता आने लगी है। एक अलस सा भाव, तन्द्रिलता सी और किसी का पथ देखती प्रेमिका की भावन्त मयता सी ही इस कविता मे व्याप्त दीखती है। और, 'दीपशिखा' की 'सपने जगाती आ' शीषक कविता म उपस्थित रजनी सासारिक सुख-दुख के सदभ मे केवल मदुल लेप के लिए उपयोगी बन गई है।

उषा सन्ध्या और रजनी के रूप चित्र तो केवल उदाहरण के लिए ले लिये गए। वस्तुत महादेवी जी की कविताओं का सौन्दय ही इस बात म है कि उनकी किसी भी रचना से प्रकृति और मानव भाव को अलग अलग करना सरल नही है। प्राकतिक दश्यो ने उनकी कल्पना को छेडकर जगा दिया है, उनकी रागात्मकता को रहस्य का पथ प्रदर्शित किया है। प्रकति के साथ भाव-तरग के मिश्रण के कारण ही उन्हें तारिकाएँ चकित सी अनजान-सी' जान पडती है और एक कुतूहल जाग उठता है कि 'दूर के सगीत सा वह कौन है ?' महादेवी जी के सामने कभी प्रकति बालिका बनकर उपस्थित नही होती, सदव वर वेशिनी ही बनकर आती है। उन्हे 'अवनि अम्बर की रूपहली सीप म तरल मोती सा जलधि ही काँपता' नही दिखाई दता अपितु वारिद मे विद्युत् की मुस्कान भी दिखाई देती है सितमेव दीपको से जुगनू और फनमय मुक्तावली से तारका को देखकर उनका उल्लास कई गुना हो आता है। वह मधुमास और नीर भरी बदली भी बनती हैं तो भी उनके उल्लास मे कोई न्यूनता नही आती। उन्हे तो यही लगता है—

आज मधुर विषाद की घिर करण आई यामिनी।
बरस सुधि के इन्दु से, छिटकी पुलक की चादनी।

'दीपशिखा मे अवश्य उन्हें उस प्रिय की समीपता और अपनी निर्वाणो न्मुखता का ऐसा ज्ञान हो आया है कि उन्हें कहना पडा—

थम गया मदिर विलास, सुख का वह दीप्त हास,
टूटे सब वलय हार, व्यस्त चीर अलक-पाश,
बिंध गया अजान आज किसका मृदु-कठिन तीर ?

किन्तु प्राकतिक सौन्दय के प्रति उनका आकषण रहस्यवाद की ऊचाइयों म बदला-सा भले ही लगता हो लुप्त नही हुआ है। जो बात महादेवी पहले चित्रो के माध्यम से कहती थीं उसे दीपशिखा' मे वह प्रतीको और विरोधाभासो के माध्यम से कहती रही हैं। अन्तर इतना ही है कि जो महादेवी किसी समय अल्हड बनी कभी निर्विरोध कहती थीं— मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला-सा है', वह

अब इस अवस्था को पार करके स्वयं धैर्य की ऐसी भूमि पर पहुँच चुकी हैं जहाँ वह कहती हैं —

आज तार मिला चुकी हू ।
सुमन मे सकेत लिपि, चचल विहग स्वर-ग्राम जिसके
वात उठता, किरण के निर्भर झुके, लय भार जिसके,
यह अनामा, रागिनी अब साँस मे ठहरा चुकी हू ।
सिन्धु चलता मेघ पर रुकता तडित का कण्ठ गीला ।
कटकित सुख से धरा, जिसकी व्यथा से व्योम नीला,
एक स्वर मे विश्व की दोहरी कथा कहला चुकी हू ।

किन्तु, प्रकृति का उनका साथ आज भी छूटा नही है। अब वह प्रकृति की छवि के चित्र नही आँकती, मानव की छवि म ही प्रकृति का रूप अकित करती हैं फिर चाहे वह करुण रूप ही क्यो न हो। करुण को भी इस प्रकार की अभिरामता दे देना भी इसीलिए सम्भव हुआ है कि वह सुख दुख के सामजस्य मे ही विश्वास रखती हैं। अत कहती हैं—

तरल मोती से नयन भरे ।
मानस से ले उठे स्नेह घन,
कसक विद्युत पुलकों के हिमकण,
सुधि-स्वाती की छाँह पलक की सीपी में उतरे ।

वस्तुत महादेवी जी की समस्त सौन्दय निधि उसी एक की आराधना में अर्पित है हृदय के समस्त भाव उसी को समर्पित हैं । और, जो उसे समर्पित है वह सुन्दर ही हो सकता है, या सुन्दर ही बनाकर दिया जा सकता है। अतएव महादेवी जी की उक्तिया में अनुभूति न। भेद चाहे जसा हो, सौन्दय मे अन्तर कभी नहीं आता। उसी के ऐश्वय से प्रकृति भी ऐश्वयमयी ही दीखती है अतएव नीलम के बादल, प्रवाल-सी उषा, मोती-सी रातें मोती-से तारे मोती सी आँसू की बूँदें सोने के दिन और सन्ध्या मे स्वण-पराग ही उन्हें दिखाई देता है बादलों में बिजली नीलम के मन्दिर मे हीरक प्रतिमा बन जाती है, मेघ-चूनर स्वण-कुकुम मे बसाकर रँगी जाती ह और निशि वासर कनक और नीलम के यानों पर दौडते जान पडते हैं। प्रकृति के ये रग कहीं उनकी कविता मे रगीनी, कोमलता स्फूर्ति और आह्लाद के चित्र अकित करते हैं कहीं सौन्दय की क्षणिकता का परिचय देते हैं। इतना ही नहीं, महादेवी जी की प्रकृति यदि उल्लास से गुदगुदाती है तो विरह के क्षणों में कम्प, रोमांच आदि सात्विकों की अभिव्यक्ति का सहारा भी बन जाती है। देह पर प्रकृति का आरोप करते हुए महादेवी जी उन स्थितियों का भी सुघर चित्र

अंकित करने मे अत्यन्त कुशलता प्रदर्शित करती हैं। सुकुमारता में ये चित्र अनूठे हैं और अनूठेपन मे ही सु दरता का अधिवास है।

महादेवी जी की सौन्दर्यानुभूति के सम्ब ध म यहाँ भाषागत सौन्दय का विचार करना उचित न होगा। उसके साथ याय करने के लिए पृथक लेख की आवश्यक्ता है, अतएव उनके द्वारा यक्त किये गए सौ दय-सम्ब धी विचारो के स दभ तक ही इस लेख की सीमा मानना उचित है।



३

महादेवी वर्मा की काव्य-भाषा सम्बन्धी मान्यताएँ

छायावाद के समर्थकों म कवयित्री महादेवी वर्मा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। गीतों के माध्यम से इस काव्य धारा को समृद्ध बनाने म उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। अपने समकालीन कवि विचारकों की भाँति उन्होने भी काव्य रचना के साथ साथ काव्य सजन के सिद्धान्तो की पर्याप्त चर्चा की है। उनका यह सिद्धान्त निरूपण अधिकतर छायावाद के अन्तरग से सम्बद्ध रहा है। काव्य शिल्प के सयोजक तत्वों पर भी उन्होने विचार किया है किन्तु परिणाम की दृष्टि से इस दिशा में उनकी प्रत्यक्ष उक्तियों की सख्या सीमित ही कही जाएगी। इन मान्यताओ के अध्ययन के लिए उनके निबध सकलनो 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' तथा 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' का अध्ययन विशेष उपादेय है। 'रश्मि' 'सान्ध्यगीत', 'दीपशिखा', 'आधुनिक कवि (भाग एक)' आदि काव्य-सकलनो की भूमिकाओ म भी इस दिशा मे पर्याप्त सकेत किये गये हैं।

काव्य भाषा के सम्बन्ध मे महादेवी जी की मान्यताओ का विवेचन करते समय हम उन पर भाव-पक्ष एव कला-पक्ष की सापेक्षिक महत्ता भाषा का स्वरूप, लोक भाषा का महत्व, वाग्विस्तार का अनौचित्य, भाषा की चित्रात्मकता, नवीन शब्द प्रयोग, भाषा माधुर्य, लक्षणा व्यजना की महत्व-स्वीकृति आदि विभिन्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत विचार करेंगे।

भाव-पक्ष एव कला पक्ष की सापेक्षिक महत्ता भाव पक्ष एव कला पक्ष काव्य शरीर के दो महत्वपूर्ण अग हैं। उत्कृष्ट काव्य मे इनमें से किसी की भी अवहेलना नहीं की जा सकती। फिर भी, इसम सन्देह नहीं कि सापेक्षिक महत्त्व की दृष्टि से भावपक्ष ही प्रबल है। छायावादी और प्रयोगवादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करते समय महादेवी जी ने इस तथ्य को इस प्रकार वाणी प्रदान की है—"साधारणत कवि की प्रथम रचना में छन्द, भाषा आदि की त्रुटियाँ रहने पर भी ऐसा भावातिरेक मिलता है, जो अन्य प्रौढ रचनाओं मे सुलभ नहीं। छायायुग के कवियों ने अपनी किशोरावस्था मे जो काव्य-सृजन किया है वह भावाधिक्य के कारण शुद्ध काव्य की दृष्टि से विरोधियों की कसौटी पर भी खरा उतरता है। पर भाव और सवेदनीयता की न्यूनता के कारण नवीन रचनाएँ इतनी अशक्त हैं कि उनके समर्थक नवीनता की

दोहाई देकर निष्पक्ष कसौटी से भी उन्हें बचाने का प्रयत्न करते हैं।"[1]

इस उक्ति से स्पष्ट है कि यदि कवि की रचना म भावो का प्रबल आवेग है तो कला की दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट न होने पर भी ऐसी कृति की उपेक्षा नहीं की जा सकती। छायावाद की प्रारम्भिक रचनाएँ सूक्ष्म अनुभूतियो से समृद्ध होने के कारण ही सहसा तिरस्कृत नही की जा सकी। इसके विपरीत आज का प्रयोगशील कवि प्राय अनुभूति की अपेक्षा उसकी विशिष्ट अभिव्यक्ति (!) पर अधिक बल दे रहा है—और सम्भवत इसी कारण काव्य जगत् म उसका उचित स्वागत नहीं हो पा रहा।

अनुभूति की प्रबलता के कारण कविता म एक प्रकार का स्वाभाविक ओज और आकषण उत्पन्न हो जाता है। जिस प्रकार सत्य का प्रतिपादन करने वाले की वाणी मे निर्भीकता और व्यक्तित्व मे सहज सौन्दय रहता है, उसी प्रकार अनुभूति सम्पन्न काव्य की प्रतिपादन शली भी सहज सरल होती है। उसम शब्दाडम्बर या कृत्रिम आलकारिकता के लिए कोई स्थान नही होता। निगुण भक्ति और सगुण भक्ति काय मे स्वानुभूति की प्रधानता की चर्चा करते हुए उन्होने यह मत व्यक्त किया है—"सब प्रकार की अलकारिकता से शून्य सरल लोक-गीतों मे जो अन्तरतम तक प्रवेश कर जाने वाली भाव-तीव्रता है, वह भी स्वानुभूतिमयी ही मिलेगी।"[2]

भाव पक्ष के साथ साथ महादेवी जी ने कला-पक्ष को भी पर्याप्त महत्त्व दिया है। रीतिकालीन काय के कला वभव पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है—"रीति-काल की सौ दय भावना स्थूल और यथाथ एकागी था, परन्तु उक्तियो मे चमत्कार की विविधता, अलकारो मे कल्पना की रगीनी और भाषा मे मधुरता का ऐश्वय इतना अधिक रहा कि उसकी सकीणता की ओर किसी की दृष्टि का पहुचना कठिन था।"[3]

इस उक्ति मे महादेवी जी ने अप्रत्यक्षत दो बातो की ओर सकेत किया है—(१) उक्ति चमत्कार मे भाव को छिपा लेना गुण नही है। (२) उक्ति वक्रता, अल कार-वभव, भाषा माधुय आदि का य के ऐसे गुण हैं जो प्रमाता को आकर्षित करने के अचूक साधन माने जा सकते हैं। रीतिकालीन काव्य म जीवन मूल्यो की दृष्टि से उदात्त न रहने पर भी उस काल के कवियों म कला के प्रति असाधारण आसक्ति थी। वाग्वदग्ध्य अलकार वभव और शब्द माधुय उनकी कविता के ऐसे गुण रहे हैं जिन्होने सहृदय को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया।

---

१ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृष्ठ २११
२ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ ८५
३ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ ६४

प्रस्तुत स्थल पर यह ज्ञातव्य है कि यदि कवि भाव शैथिल्य को छिपाने के लिए कला का आश्रय लेगा तो उसकी यह प्रवृत्ति स्वस्थ दृष्टिकोण की परिचायक नही होगी। आलोच्य कवयित्री ने भी रीतिकालीन काव्य के प्रसग मे कला की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए अप्रत्यक्षत इसी ओर सकेत किया है कि उन कवियो ने प्रमाता की सवेदना को भाव की अपेक्षा कला के माध्यम से जगाना चाहा है किन्तु यह विधिवत माग नही है। कला की उपयोगिता तभी है जब उससे स्वस्थ भावनाओ का अलकरण हो अन्यथा वह काव्य क लिए मात्र अभिशाप बन कर रह जाएगी।

कला की उपयोगिता पर विचार करते हुए महादेवी जी ने उसकी एक अन्य विशेषता की ओर भी संकेत किया है। उनके अनुसार कला मे इतनी शक्ति-सामथ्य है कि वह घृणित व कुत्सित अथवा सकीण विचारो को भी दोष मुक्त कर देती है। यथार्थवादी कलाकार कलात्मक अभिव्यक्ति का आश्रय लेकर घृणित यथार्थ के प्रति भी सहृदय की सवेदनशीलता को जाग्रत कर सकता है, किन्तु कला की उपेक्षा करके वह अपने उद्देश्य म असफल ही रहेगा—"काव्य मे अपनी प्रतिष्ठा के लिए इसे (यथार्थवाद) कला की रूपरेखा मे बधना ही पडेगा। कला के उस सहज, सरल और स्वाभाविक सौन्दय के प्रति उसकी सतक विरक्ति उचित नहीं, जो जीवन के घणित कुत्सित रूप के प्रति भी हमारी ममता को जगा सकता है।"[1]

कला की महत्ता के प्रति व्यक्त की गई इस विचारधारा के सम्बन्ध मे दो मत नही हो सकते। कला एक प्रकार से सौन्दय का ही दूसरा नाम है और सौन्दय के प्रति अनुरक्त होना कौन नही चाहेगा। इसी कारण जब कटु से कटु यथार्थ को भी कला का आश्रय लेकर प्रस्तुत किया जाएगा तो प्रमाता ऐसे साहित्य का अध्ययन अवश्य करेगा अन्यथा अनपढ अभिव्यक्ति देखकर वह उससे विमुख हो सकता है।

महादेवी जी द्वारा भावपक्ष एव कलापक्ष के महत्त्व के सम्बन्ध में कही गई विभिन्न उक्तियां का विवेचन करने के अनन्तर हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उन्होने काव्य रचना म इन दोनो का महत्त्वपूर्ण स्थान माना है। इनम से किसी एक की उपेक्षा उन्हें मान्य नही। वदिक साहित्य के प्रशस्ति गान के समय उन्होने अपनी कतिपय उक्तियो म इन दोनो के समन्वय की आवश्यकता को व्यजित भी किया है। यथा—

(अ) ऐसे धर्म-ग्रन्थो की सख्या अधिक है जो अपने कथ्य की ममस्पर्शी सामान्यता, शैली की मधुर स्पष्टता और भाषा के सहज सात्विक प्रवाह के कारण साहित्य की कोटि मे स्थिति रखते हैं।"[2]

---

१ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ १६६
२ सप्तपर्णा अपनी बात, पृष्ठ १३

करने वाले शब्दों का प्रयोग करके अनावश्यक विस्तार से बच सकेगा।

इस उक्ति में महादेवी जी ने अप्रत्यक्षत तीन बातों की ओर संकेत किया है—भाषा की सांकेतिकता, सामासिकता और शब्दगत औचित्य। भाषा की इन्हीं तीन विशेषताओं के आधार पर गिने-चुने शब्दों में भावाभिव्यक्ति की जा सकती है। यदि सांकेतिकता के स्थान पर अभिधा का आश्रय, सामासिकता की अपेक्षा कथन की व्यास शैली और शब्दगत औचित्य की अवहेलना करके बिना सोचे समझे अनुपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया जाएगा तो काव्य भाषा सुगठित नहीं रह पाएगी। अत यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कवयित्री को भाषा के इन तीन गुणों के प्रति कवि को सजग रहने का परामर्श देना अभीष्ट रहा है।

तुलनात्मक दृष्टि से यह अवेक्षणीय है कि वाग्विस्तार के अनौचित्य के प्रति व्यक्त की गई महादेवी जी की उपर्युक्त मान्यता ग्रीक के प्रमुख काव्य चिन्तक लाजाइनस की विचार धारा से साम्य रखती है। लाजाइनस ने भी वाग्विस्तार को काव्य की गरिमा और औदात्य को बाधित करने वाला तत्त्व मान कर कवि को अस्वस्थ प्रवृत्ति से बचने का परामर्श दिया था।[1]

भाषा की चित्रात्मकता—काव्य भाषा के विषय में कविवर पन्त के समान महादेवी जी ने भी यह प्रतिपादित किया है कि उसमें चित्रात्मकता का गुण श्रेयस्कर है। इस सम्बन्ध में उनका प्रत्यक्ष मत तो अनुपलब्ध है किन्तु निम्नस्थ उक्तियों से इस कथन की पुष्टि अवश्य होती है—

(अ) "कलाओं में चित्र ही काव्य का अधिक विश्वस्त सहयोगी होने की क्षमता रखता है।"[2]

(आ) "कुछ अजन्ता के चित्रों पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से, चित्रों में यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष यह तो मैं नहीं बता सकती, पर इस चित्र मूर्ति-सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार से नहीं दबा डाला है, ऐसा मेरा विश्वास है।"[3]

इनमें से प्रथम उक्ति में चित्र को काव्य का विश्वस्त सहयोगी मान कर उन्होंने इस ओर संकेत किया है कि भाव प्रेषण के लिए काव्य में चित्रात्मकता का अवलम्बन लेना चाहिए। इसी प्रकार दूसरी उक्ति में चित्र शैली को अपने काव्य की विशेषता बता कर उन्होंने प्रकारान्तर से कवि-कर्म के लिए इसे आवश्यक बताया है।

---

१ देखिये काव्य में उदात्त तत्त्व भूमिका पृष्ठ ११ २०
२ दीपशिखा चिन्तन के कुछ क्षण पृष्ठ ६३
३ दीपशिखा, चिन्तन के कुछ क्षण पृष्ठ ६४

वस्तुत महादेवी जी स्वय एक कुशल चित्रकर्त्री हैं। उन्होने रग और रेखाओ की सहायता से अनेक भावो को चित्र क रूप म प्रस्तुत किया है। दीपशिखा' के प्रत्येक गीत के आधार पर एक स्वत त्र चित्र का निर्माण उनकी अदभुत सामथ्य का परिचायक है। अत चित्रकला मे विशेष निपुण होने के कारण उन्होने काव्य-कला और चित्र-कला म विरोध नही माना।[1] काव्य मे चित्र कला के उपयोग से प्रमाता के सम्मुख भावो का साकार रूप प्रस्तुत हो जाता है जिससे प्रभावाभिव्यक्ति म सहायता मिलती है। अत इसका आश्रय लेना उचित ही है।

नवीन शब्द प्रयोग तथा भाषा माधुय महादेवी जी ने कवि को साहित्य-जगत म प्रचलित शब्दो का प्रयोग करने के साथ-साथ नवीन शब्दो का व्यवहार करने का परामश भी दिया है। किन्तु, ऐसा करते समय वे कवि स यह आशा करती हैं कि शब्द प्रयोग अनगढ न हो और साथ ही उसम माधुय का ध्यान रखा गया हो। निम्नाकित उक्तिया इसी तथ्य की परिचायक हैं—

(अ) 'काव्य की भाषा बदलना सहज नहीं होता और वह भी ऐसे समय जब पूवगामी भाषा अपने माधुय मे अजेय हो, क्योकि एक तो नवीन अनगढ़ शब्दो मे काव्य की उत्कृष्टता की रक्षा कठिन हो जाती है, दूसरे, उत्कृष्टता के अभाव मे प्राचीन का अभ्यस्त युग उसके प्रति विरक्त होने लगता है।"[2]

(आ)"छायावाद ने नये छन्द बन्धो मे सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खडीबोली की सात्विक कठोरता नहीं सह सकता था। अत कवि ने कुशल स्वणकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वण और अथ की दृष्टि से नाप-तौल और काट छाट कर तथा कुछ नये गढ़ कर अपनी सूक्ष्म भावनाओ को कोमलतम कलेवर दिया।"[3]

उपयुक्त उद्धरणों मे से प्रथम उक्ति ब्रजभाषा-काव्य को लक्षित करके लिखी गई है। माधुय की आत्यन्तिक स्थिति के कारण ब्रजभाषा की अनायास उपेक्षा नही की जा सकती। इसी कारण कवयित्री ने अप्रत्यक्ष सकेत किया है कि यदि ब्रजभाषा के स्थान पर खडीबोली की नवीन शब्दावली की प्रतिष्ठा करनी है तो वह माधुय सयुत होनी चाहिए। माधुय के बल पर ही एक भाषा के स्थान पर दूसरी भाषा की प्रतिष्ठा की जा सकती है। दूसरी उक्ति मे भी कवयित्री ने छायावाद की भाषा की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए साकेतिक रूप से यह व्यक्त किया है कि—(१) शब्द

१ आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी इन दोनों में परस्पर सबध का उल्लेख किया है। देखिए— चित्रकला और कविता का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों में एक प्रकार का अनोखा सादृश्य है। कविता भी एक प्रकार का चित्र है।" —कविता कलाप भूमिका पृष्ठ १

२ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ ६२ ६३

३ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ ६८ ६६

माधुर्य की रक्षा करना एक प्रमुख कवि कर्म है। (२) कवि को ध्वनि की दृष्टि से शब्दों की अर्थ-व्यंजना को समृद्ध करने का प्रयास करना चाहिए।

वस्तुतः छायावादी काव्य में सूक्ष्म अनुभूतियों और कोमल भावों को व्यक्त करने के लिए ऐसी शब्दावली की आवश्यकता थी जो स्वयं भी मसृण हो। अतः इन कवियों ने पूर्ववर्ती काव्य की शब्द सम्पदा में वर्ण अथवा ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तन करके उनका प्रयोग किया तथा कतिपय नवीन शब्दों का निर्माण करके सफल अभिव्यंजना के लिए उनकी सहायता भी ली। कवयित्री महादेवी वर्मा भी छायावाद की प्रकाश-स्तम्भ रही हैं। अतः उन्होंने भी नये शब्द गढ़ कर इस दिशा में अपनी व्यावहारिक स्वीकृति दी है। तात्पर्य यह है कि सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टि से आलोच्य कवयित्री का यह मत है कि कवि अर्थ संगति के आधार पर माधुर्यपूर्ण नवीन शब्दों का निर्माण करने में स्वच्छन्द है।

लक्षणा-व्यंजना की महत्त्व-स्वीकृति आलोच्य कवयित्री ने काव्य में अभिधा अथवा लक्षणा के प्रयोग के सम्बन्ध में पृथक् विचार नहीं किया है किन्तु उनकी निम्नस्थ उक्तियों से इतना संकेत अवश्य मिलता है कि वे लक्षणा-व्यंजना का समर्थन करती हैं—

(अ) "इस प्रकार की अभिव्यक्तियों में भाव रूप चाहता है, अतः शब्दों का कुछ संकेतमयी हो जाना सहज सम्भव है।"[1]

(आ) "भाषा संस्कृति का लेखा जोखा रखती है, अतः वह भी अनेक संकेतों और व्यंजनाओं में ऐश्वर्यवती है।"[2]

वस्तुतः काव्य में लक्षणा-व्यंजना का आश्रय लेना आवश्यक भी है। शब्दों के अभिधेय अर्थ के आधार पर उदात्त काव्य की रचना नहीं की जा सकती। अरस्तू ने भी काव्य-कला में औदात्य का समावेश करने के लिए अतिव्यवहृत शब्दों के चयन का पर्याप्त न मानकर उनमें गरिमा की स्थिति पर बल दिया है।[3] प्रकार भेद से हम कह सकते हैं कि उन्होंने अभिधा के साथ साथ लक्षणा और व्यंजना को आवश्यक माना है। व्यावहारिक दृष्टि से भी महादेवी जी के काव्य की यह अन्यतम विशेषता है। उसमें अभिधा का तिरस्कार नहीं है किन्तु उनका बल लाक्षणिक भंगिमाओं पर ही रहा है। छायावाद के अन्य कवियों की भी यही विशेषता रही है। इस सम्बन्ध में श्री राममूर्ति त्रिपाठी का यह निष्कर्ष नितान्त उपयुक्त है— 'आभ्यन्तर प्रभाव साम्य के

१ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ ८५
२ वही, पृष्ठ १०२
३ देखिए 'अरस्तू का काव्यशास्त्र', अनुवाद भाग पृष्ठ ५७-५८

आधार पर लाक्षणिक एव व्यजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ एव प्रचुर विकास यावादी काव्य शली की असली विशेषता है।"[1]

उपसहार

निष्कष रूप म यह कहा जा सकता है कि महादेवी जी काव्य मे भाव-पक्ष को यक महत्त्व देने पर भी कला के प्रति उपेक्षा नही दिखाती। उनके मत म सफल य वही है जिसमे इन दोना का समन्वय हो। काव्य की भाषा को कृत्रिम बनाने के म में भी वे नहीं हैं। यद्यपि उन्होने साहित्यिक और व्यावहारिक भाषा के अन्तर का विवेचन किया है, तथापि प्रायोगिक दृष्टि से लोक गीतो की भाषा-शैली को ग्रहण के उन्होने काव्य भाषा म स्वाभाविकता की रक्षा का समथन किया है। चित्रात्मक षा तथा शब्द माधुय को वे प्रभावाभिव्यक्ति के लिए आवश्यक मानती हैं। वाग्विस्तार अपेक्षा उन्हे लक्षणा-व्यजना की सहायता से साकेतिकता का विधान करना मान्य ा है।

महादवी जी की काव्य भाषा सम्बन्धी मान्यताओ का निरूपण करने के न्तर यह स्थिर करना आवश्यक है कि इस दिशा मे उनकी देन का क्या महत्त्व है? तुत इस सम्बन्ध म उन्होंने जो कुछ कहा है उसमे प्राय परम्परा का अनुसरण ही ा है। इयत्ता की दृष्टि से भी उनकी उपलब्धि अधिक समृद्ध नही कही जा सकती। साद', 'पन्त' एव 'निराला' की तुलना मे उनका विवेचन अत्यन्त सीमित रहा है। म्भवत इसका सबसे प्रमुख कारण यह है कि उनकी दृष्टि छायावादी काव्य के शिल्प अपेक्षा विचार पक्ष के उदघाटन की ओर अधिक रही है। फिर भी, काव्य भाषा सम्बन्ध म उन्होने न्यूनाधिक रूप मे जो विचार व्यक्त किए हैं उनका निजी महत्त्व है ही।

महादेवी जी के विवेचन का एक प्रमुख अभाव यह है कि उनकी अधिकाश ान्यताएँ प्रत्यक्ष उक्तियो के रूप मे कथित न होकर साकेतिक रूप मे ही ग्रहण की ा सकती हैं। काव्य की किसी विशिष्ट धारा या ग्रन्थ की समीक्षा करते समय उसके म्बन्ध मे उन्होने जो विचार व्यक्त किए हैं वही उनकी काव्य मान्यताओ का दिशा र्देश करते हैं। किन्तु, यह उल्लेख्य है कि साकेतिक होने पर भी इन मान्यताओ की ष्ठभूमि मे कवयित्री का गहन चिन्तन मनन रहा है। इसी कारण उनका विवेचन ामयिक न होकर शाश्वत बन गया है। डॉ० नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध म उचित ही

[1] व्यजना और नवीन कविता, पृष्ठ १६७

लिखा है—"महादेवी के ये निबन्ध काव्य के शाश्वत सिद्धान्तों के अमर आख्यान हैं। आज साहित्यिक मूल्यों के बवण्डर में भटका हुआ जिज्ञासु इन्हें आलोक स्तम्भ मान कर बहुत कुछ स्थिरता पा सकता है। अतएव साहित्य का विद्यार्थी उनकी विवेचना का आप्त-वचन के समान ही आदर करेगा।"[1]

---

१ महादेवी वर्मा (स०—शचीरानी गुर्टू) पृष्ठ १०६

डॉ० परशुराम शुक्ल

४

महादेवी वर्मा का जीवन-दर्शन

महादेवी वर्मा आधुनिक काव्य की एकांत साधिका हैं। उन्हें बहुमुखी प्रतिभा की साकारता भी कहा जा सकता है। संगीत, काव्य और चित्रकला की त्रिवेणी का उनके व्यक्तित्व में संगम हुआ है। उन्होंने अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया है। वेद, उपनिषद और बौद्ध साहित्य का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है। महादेवी जी के जीवन-दर्शन में उनके इस अध्ययन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। उनके जीवन दर्शन का अध्ययन रहस्यवाद वेदनावाद, सेवाभाव, सर्वात्मभाव और नारी-भावना शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

महादेवी का रहस्यवाद

वर्तमान रहस्यवादी काव्य के सम्बन्ध में प्रसाद जी ने लिखा है —"साहित्य में विश्व सुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य लहरी के 'शरीर त्व शम्भो' का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का इदम से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।"[1] अपरोक्ष की अनुभूति और समरसता महादेवी वर्मा के रहस्यवाद में भी है। इस विषय में 'सांध्यगीत' की भूमिका में उन्होंने लिखा है "पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे ही हृदय में खिला हो, परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक अव्यक्त वेदना भी थी। फिर वह सुख-दुःख मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अब अन्त में न जाने कैसे मेरे मन ने उस बाहर भीतर में एक सामंजस्य-सा ढूंढ लिया है जिसने सुख-दुःख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।"[2]

---

१ काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ ३६

२ सांध्यगीत (भूमिका), पृष्ठ ५

समस्त सृष्टि में असीम सत्ता की छाया देख कर कवयित्री में जिज्ञासा का भाव जाग्रत होता है और वह प्रश्न करने लगती है कि तारा में हँसता हुआ, विद्युत में चमकता हुआ और ओस में रोता हुआ वह कौन है—

> अवनि अम्बर की रुपहली सीप में,
> तरल मोती सा जलधि जब कांपता,
> तैरते घन मृदुल हिम के पुंज-से
> ज्योत्स्ना के रजत पारावार में।
> सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
> नींद के उच्छवास सा वह कौन है।[1]

इस जिज्ञासा भाव से कवयित्री को यह निश्चय हो जाता है कि जिस अनन्त सत्ता की प्रतीति उसे प्रकृति में सर्वत्र हो रही है वही सत्ता कवयित्री की चेतना को आकर्षित किये हुए है—

> निशा को धो देता राकेश
> चांदनी में जब अलकें खोल
> कली से कहता था मधुमास,
> बता दो मधु मदिरा का मोल।
> भटक जाता था पागल वात
> धूल में तुहिन कणों के हार,
> सिखाने जीवन का संगीत,
> तभी तुम आये थे इस पार।
>
> \+ \+ \+
>
> गये तब से कितने युग बीत,
> हुए कितने दीपक निर्वाण
> नहीं पर मैंने पाया सीख,
> तुम्हारा सा मनमोहन गान।[2]

१ रश्मि, पृष्ठ १७
२ नीहार, पृष्ठ ११२

ससीम जब अपने असीम आराध्य की झलक पा लेता है तो उससे मिलने के लिए विकल हो उठता है। असीम से मिलन की रहस्यवादी भावनाभिव्यक्ति में महादेवी लौकिक प्रतीकों की योजना का आवश्यक मानती हैं।[1] प्रेम और करुणामय दिव्य व्यक्तित्व पर महादेवी जी की आस्था है। इस रहस्यवाद को सगुण साकार रूप कहा जाता है। कवयित्री के ही शब्दों में उनकी सगुण साकार रहस्य भावना का मूल यह है—"जब प्रकृति की अनेक रूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा। परन्तु इस सम्बन्ध में मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-जनित आत्म विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा साधन बना जिसे रहस्यमय रूप देने के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।"[2] महादेवी जी के काव्य में ऐसे मधुरतम दिव्य व्यक्तित्व के प्रति आत्मनिवेदन है।

महादेवी जी की रहस्यात्मक विरहानुभूति अपनी कसक में किसी को अलभित मधुरता भरता हुआ पाती है। परिणामस्वरूप कवयित्री अपने जीवन को विरह का जलजात मानने लगती है—

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात,
जीवन विरह का जलजात।[3]

रहस्य भावना की तीव्रता में विरहानुभूति अपनी चरमता की स्थिति में प्रिय के नाम स्मरण में ही सन्तुष्ट हो लेती है —

१ जायसी की परोक्षानुभूति चाहे जितनी एकान्तिक रही हो परन्तु उनकी मिलन विरह की मधुर और मर्मस्पर्शिनी अभिव्यंजना किसी लोकोत्तर लोक से रूपक लाई थी? हम चाहे आध्यात्मिक संकेतों से अपरिचित हों परन्तु उनकी लौकिक कला रूप सप्राणता से हमारा पूर्ण परिचय है। कबीर की एकान्तिक रहस्यानुभूति के सम्बन्ध में भी यही सत्य है।
—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य (गंगाप्रसाद पाण्डेय), पृष्ठ १०६।

२ सान्ध्यगीत (भूमिका), पृष्ठ ८ ६

३ नीरजा, पृष्ठ १८

प्राण पिक प्रिय नाम रे कह।
मैं मिटी निस्सीम प्रिय मे,
वह गया बँध लघु हृदय मे,
अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह।
+ + +
चल क्षणो का क्षणिक संचय,
बालुका से बिन्दु परिचय,
कह न जीवन तू इसे
प्रिय का निठुर उपहास रे कह।[1]

आत्मा और परमात्मा अथवा ससीम और असीम का मधुर सम्बन्ध लौकिक प्रणय-सम्बन्धो की अपेक्षा अधिक व्यापक और उदात्त होता है। लौकिक प्रणय सम्बन्ध मे भी चिर विरह अन्तराल के पश्चात् अकस्मात् मिलन हो तो तीव्र विरहानुभूति की स्थिति मे प्रणयी को तत्काल पहचान लेना सहज नही होता। आध्यात्मिक प्रणयानुभूति मे ऐसी स्थिति और भी स्वाभाविक हो जाती है—

पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नहीं।
+ + + +
इन श्वासो को इतिहास आँकते युग बीते,
रोमो मे भर भर पुलक लौटते पल रीते,
यह ढुलक रही है याद, नयन से पानी नहीं।
मैं प्रिय पहचानी नहीं।
अलि कुहरा-सा नभ, विश्व मिटे बुदबुद जल-सा,
यह दुख का राज्य अनन्त, रहेगा निश्चल-सा,
हूँ प्रिय की अमर सुहागिनी, पथ की निशानी नहीं।
मैं प्रिय पहचानी नहीं।[2]

इस प्रकार प्रिय के लौट जाने का *आभास कवयित्री को उन अनन्त तारकों* को देखकर होता है जो प्रिय के पद चिह्न के समान बिखरे हैं। विरहाकुल हृदय प्रिय से निवेदन करता है कि वह एक बार फिर आए। किन्तु प्रिय ऐसा अलबेला है कि ऐसे ही निठुर खेल में वह विरहिणी आत्मा को बहलाता-सा है—

क्या यह निमम खेल सजनि, उसने मुझ से खेला-सा है।
मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला-सा है।[3]

१ नीरजा पृष्ठ ११ १००
२ नीरजा पृष्ठ ११ ३६
३ नीरजा पृष्ठ ५१

रहस्यवाद मे द्वैत भावना की अपेक्षा रहती है। द्वैत म ही विरह और मिलन की स्थितियो की नियोजना हो सकती ह। महादवी जी के रहस्यवाद म भी द्वत भावना अर्न्तहित ह। द्वैतभाव को रहस्य भावना के लिय आवश्यक मानते हुए उन्होने लिखा है, "रहस्य भावना के लिये द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वत का आभास भी क्योकि एक के अभाव मे विरह की अनुभूति असम्भव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा आधार खो देती है।"[1] महादवी वर्मा क विरह-गीतो म द्वैत की भावना स्पष्ट होती है और जिन गीतो मे कवयित्री की आत्मा परमात्मा से मिली ह उनम अद्वैत भावना का आभास है। 'अद्वत का आभास' कहने मे महादेवी जी ने पर्याप्त सतकता से काम लिया है। यदि 'अद्वैत की स्थिति अथवा अद्वैत की भावना वे लिखती तो उसका अथ होता कि आत्मा को परमात्मा म ही विलीन हो जाना है। किन्तु रहस्यवाद मे आत्मा के परमात्मा मे विलीन होने को कोई स्वीकृति नही दी जाती। आत्मा का जब परमात्मा से तादात्म्य हो जायेगा तो आत्मा को असीम सत्ता की शक्ति और निज का अनुभव कसे हो सकेगा ? अद्वैत के आभास मे तो आत्मा की स्वतत्र स्थिति रहेगी और ऐसी दशा मे वह असीम क सम्मिलन का लोकोत्तर आनन्द अनुभव कर सकेगी। इसीलिये महादेवी जी ने अद्वत का आभास ही रहस्य भावना के लिये अपेक्षित माना है।

महादेवी की रहस्य भावना म 'अमरों के उस लोक' को कोई स्थान नही जिसमे फूल मुस्काते ही हैं, मुरझाते नही, जिसम तारा-दीप कभी बुझत नहीं, जिसम मेघमाला कभी रीती नही होती, जिसम मधुमास अनन्त काल व्यापी होता है, जिसम आँख कभी रोती नही, प्राण सिसकते नही और जिसम मिटने का' स्वाद नही होता ऐसा स्वग-लोक तो वही चाहेगा जो परमात्मा से तादात्म्य का आकाक्षी हो। रहस्यवादी तादात्म्य नही चाहता—मोक्ष नही चाहता। वह तो केवल अपने अनन्त प्रिय का सान्निध्य चाहता है। इसीलिये महादेवी अपने मिटने के अधिकार को सुरक्षित रखना चाहती हैं—

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार।[2]

असीम की ससीम अभिव्यक्ति असीम मे मिलकर उसके अमरत्व को प्राप्त करने की इच्छुक नही है। ससीम को अपनी आराधना और अनुभूति म इतना विश्वास

१ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य (गगाप्रसाद पाण्डेय), पृष्ठ १२३ १२४
२ नीहार, पृष्ठ ६

है कि उसकी रक्षा के लिये असीम अपने अमरत्व को भूल कर ससीम के 'मिटने के खेल' स्वीकार करेगा —

जब असीम स हो जायगा, मेरी लघु सीमा का मल,
देखोगे तुम देव, अमरता खलगी मिटने का खल।[1]

और, यदि तार्किक मन कहेगा कि ऐसा मिलन तो एक सपना ही कहा जायेगा तो महादेवी की रहस्य भावना का यह उत्तर है—

कसे कहती हो सपना है, अलि, उस मूक मिलन की बात,
भरे हुए अब तक फूलो मे, मरे आसू उनके हास।[2]

महादेवी का विश्वास ह कि असीम के प्रति ससीम का सम्पूण समपण ही मिलन की स्थिति को उत्पन्न कर सकता ह। लौकिक प्रम की ही भांति आध्यात्मिक प्रणयानुभूति म मिलन की स्थिति समपण पर आश्रित होती ह। 'दीपशिखा' की भूमिका म महादेवी ने लिखा ह रहस्योपासक का आत्म-समपण हृदय की ऐसी आवश्यकता है जिसमे हृदय की सीमा एक असीमता मे अपनी ही अभिव्यक्ति चाहती है, और हृदय के अनेक रागात्मक सम्बन्धो म माधुयभावमूलक प्रम ही उस सामञ्जस्य तक पहुच सकता है, जो सब रेखाओ मे रग भर सके, सब रूपों को सजीवता द सके और आत्मनिवेदक को इष्ट के साथ समता के धरातल पर खडा कर सके। भक्त और उसके इष्ट के बीच मे वरदान की स्थिति सम्भव है जो इष्ट नहीं इष्ट का अनुग्रहदान कहा जा सकता है। माधुयभावमूलक प्रम मे आधार और आधय का तादात्म्य अपेक्षित है और यह तादात्म्य उपासक ही सहज कर सकता है, उपास्य नहीं। इसी से तन्मय रहस्योपासक के लिए आदान सम्भव नहीं, पर प्रदान या आत्मदान उसका स्वभावगत धम है।'[3] महादेवी जी के का य म आत्मदान की यह उत्कट भावना ह—

(१) विसजन ही है कर्णधार
वही पहुचा देगा उस पार।

(२) लुटा अपना सीमित ऐश्वय,
मिला है यह वराग्य अनत।

(३) पाने म तुमको खोऊ,
खोने मे समझू पाना।

(४) तू जल जल जितना होता क्षय,
यह समीप आता छलनामय,

१ नीहार पृष्ठ ६
२ वही पृष्ठ ४
३ दीपशिखा (भूमिका) पृष्ठ २९ ३०

मधुर मिलन मे मिट जाना तू,
उसकी उज्ज्वल स्मित म घुल खिल।

रहस्योपासक का आत्म समपण ही उसकी एसी तन्मयता का अभिव्यक्त करता है जिसमे सष्टि क कण-कण म और उसक प्रत्यक व्यापार म उस अपने असीम प्रिय की झलक मिलन लगता है। उत्कट भाव त मयता की स्थिति म रहस्योपासक का आना निराना, सुख दुख हास रुदन आदि के द्व द्व म एकता का अनुभव होने लगता है। महादेवी के काव्य म यहा समरसता का भाव विद्यमान है —

सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी।
प्रिय के अनत अनुराग भरी।
किसको त्यागू किसको मागू,
है एक मुझे मधुमय विषमय,
मेरे पद छूत ही होते
काट कलियाँ, प्रस्तर रसमय।[1]

महादवी जी का विश्वास है कि आत्म समपण की स्थिति मे असीम प्रियतम क प्रति पूजा अचन क किसी वाह्याडम्बर की आवश्यकता नही रह जाती—

क्या पूजन क्या अचन रे ?
उस असीम का सुदर मदिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनदन रे।
× × × ×
धूप बने उडते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पदन रे।
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नतन रे।

महादेवी जी न अपने रहस्यवाद म पराविद्या की आध्यात्मिकता वेदान्त के अद्वत का आभास, लौकिक प्रम की तीव्रता और कबीर क रहस्यवाद की दाम्पत्य भावना का समन्वय कर अपने असीम प्रियतम क प्रति जो सम्बन्ध स्थापित किया वह हृदय और मस्तिष्क दोनों को सन्तुष्ट कर सका। उनके ही शब्दों को उधार लें तो "आज गीत मे हम जिसे रहस्यवाद के रूप मे ग्रहण कर रहे है यह इन सबकी विशेष ताओं से मुक्त होने पर भी उन सबस भिन्न है। उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के साकेतिक दाम्पत्यभाव-सूत्र मे बाध कर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम

१ सान्ध्यगीत पृष्ठ ८५
२ नीरजा, पृष्ठ १०७

के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।"[1] आज के गीति-काव्य म अभिव्यक्त रहस्यवाद के सम्बन्ध म महादेवी जी का यह कथन उनके गीतो पर ही सर्वाधिक चरितार्थ होता है।

वेदनावाद—

अपने दु खवाद के विषय म महादेवी जी न लिखा है अपने दु खवाद के विषय म भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पडता है। सुख और दु ख के धूपछाही डोरो स बुन हुए जीवन म मुझे केवल दु ख ही गिनते रहना क्यो इतना प्रिय है, यह बहुत लोगो के आश्चर्य का कारण है। इस क्यो' का उत्तर भी मेरे लिये किसी समस्या के सुलझा डालने स कम नही है। ससार जिसे दु ख और अभाव के नाम स जानता है वह मेरे पास नही है। जीवन म मुझ बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा मे सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर पार्थिव दु ख की छाया नही पड सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया ह कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है। इसके अतिरिक्त बचपन स ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी ससार को दु खात्मक समझने वाली फिलॉसफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।"[2] इस कथन म कवयित्री के दु खवादी दृष्टिकोण का केवल एक कारण मिलता ह, वह ह बौद्ध-दर्शन का प्रभाव। किन्तु अपने पारिवारिक और भौतिक जीवन म सवसुख प्राप्त होन पर भी महादेवी का दृष्टिकोण वेदनावादी है, इसके मूल म भी कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए। महादेवी जी करुणा की मार्मिकता इसका कारण मानती हैं। उनका कथन ह "हमारे असख्य सुख हमे चाहे मनुष्यता की पहली सीढी तक भी न पहुचा सकें, किन्तु हमारा एक बूद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उवर बनाये विना नही गिर सकता।"[3] दु ख की करुण मार्मिकता और बौद्ध दशन के अतिरिक्त कवयित्री के वेदनाभाव का एक अन्य कारण उनकी रहस्य भावना भी ह। रहस्य भावना की विरहानुभूति वास्तव म प्रियतम से न मिल सकने की वेदनानुभूति है।

महादेवी का वेदनाभाव आध्यात्मिक भी है और लौकिक भी। अपने चारो ओर के समाज म पीडित और शोकग्रस्त मनुष्यो के प्रति दया और सहानुभूति मे उनके वेदनावाद का लौकिक पक्ष स्पष्ट हुआ है। कवयित्री का इस प्रकार का वेदना भाव उनके शब्द चित्रो में अभिव्यक्त हुआ ह। काव्य म भी जब वे फूलो के मुरझाने

१ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य (गगाप्रसाद पाण्डेय), पृष्ठ १०६
२ रश्मि (भूमिका) पृष्ठ ५
३ वही, पृष्ठ ६

और झड़ने में यह देखती हैं कि जिस जगत को खिले हुए फूल ने गंध और शोभा दी, वह जगत् फूल के झड़न पर तनिक भी शोक नहीं करता तब उनकी वेदना भावना को लौकिक ही कहा जाएगा।

कर दिया मधु और सौरभ,
दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है,
तेरे लिए दानी सुमन।
मत व्यथित हो फूल,
किसको सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सबको बनाया—
है यहाँ करतार ने।
विश्व में हे फूल ! तू
सबके हृदय भाता रहा।
दान कर सर्वस्व फिर भी—
हाय हर्षाता रहा।
जब न तेरी ही दशा पर,
दुख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन।
हम-से मनुज निःसार को ॥[1]

किन्तु महादेवी जी के वेदनाभाव में आध्यात्मिकता ही अधिक है। लौकिक अथवा भौतिक पीड़ा में कचोट होती है और उससे मुक्ति पाने की उत्कट अभिलाषा होती है। महादेवी के काव्य में वेदना मुक्ति की कोई आकांक्षा नहीं और न कचोट-विह्वलता ही है। रहस्योपासना ने कवयित्री के जीवन को विरह का जलजात बना दिया है। अपने सूनेपन (विरहावस्था) की मतवाली रानी प्राणों के दीप जला कर दीवाली मनाती रहती है। अपने प्राणों के दीपक से कवयित्री असीम प्रियतम द्वारा प्रदत्त पीड़ा के राज्य को प्रकाशित करती रहती है। यह पीड़ा का राज्य महादेवी जी को अत्यन्त प्रिय है। पीड़ा और उनका जीवन परस्पर पूरक बन गये हैं। अपनी पीड़ा के प्रति कवयित्री में गर्व की भावना है —

मेरी लघुता पर आती, जिस दिव्य लोक को व्रीडा,
उसके प्राणों से पूछो, वे पाल सकेंगे पीड़ा ?

---

१ नीहार, पृष्ठ ३५-३६

उनसे कैसे छोटा है, मेरा यह भिक्षुक जीवन ?
उनमें अनन्त करुणा है, इसमें असीम सूनापन ॥[१]

अपने असीम सूनेपन पर महादेवी को जितना अभिमान है उतना ही विश्वास भी है। असीम प्रियतम की विरह वेदना में उन्हें यह विश्वास हो गया है कि उस प्रियतम की सच्ची पहचान पीड़ा के ही माध्यम से हो सकती है—

(१) शून्य से टकराकर सुकुमार
करेगी पीड़ा हाहाकार,
बिखरकर कन कन में हो व्याप्त
मेघ बन छा लेगी संसार।
+ + +
प्रतीक्षा में मतवाले नैन,
उड़ेंगे जब सौरभ के साथ,
हृदय होगा नीरव आह्वान,
मिलोगे क्या तब हे अज्ञात ॥[२]

(२) लघु प्राणों के कोने में
खोई असीम पीड़ा देखा,
आओ हे निस्सीम, आज
इस रजकण की महिमा देखो ॥[३]

(३) तुम दुख बन इस पथ से आना ॥

(४) प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती ॥[४]

(५) दौड़ती क्यों प्रति शिरायें प्यास विद्युत सी तरल बन,
क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन ?
किस लिए हर साँस तम में सजल दीपक राग गाती ?
जो न प्रिय पहचान पाती ॥[५]

---

१ नीहार पृष्ठ २१
२ नीहार पृष्ठ ३२ ३३
३ रश्मि, पृष्ठ ६३
४ नीरजा पृष्ठ १०१
५ सान्ध्यगीत, पृष्ठ १६
६ दीपशिखा पृष्ठ ६४

वेदना कवयित्री के प्रियतम के मिलन का माध्यम ही नही रहती, प्रत्युत अपने रसात्मक प्रवेग म वह प्रियतम सी बन जाती है। इसीलिए सब कछ प्राप्त हो जाने पर भी महादेवी अपनी पीडा को नही खोना चाहती। उनकी दृष्टि म समस्त भौतिक व आध्यात्मिक उपलब्धियां वदना के समक्ष हीन है—

चाहे जजर तारो मे अपना मानस उलझा दो,
इन पलको के प्याला मे सुख का आसव छलका दो।
मेरे बिखरे प्राणा मे, सारी करुणा ढुलका दो,
मेरी छोटी सीमा मे अपना अस्तित्व मिटा दो।
पर शेप नहीं होगी यह, मेरे प्राणो की क्रीडा,
तुमको पीडा मे ढूढा, तुममें ढूढूगी पीडा। ।[1]

महादेवी का विश्वास ह कि वेदना मनुष्य के सवेदनशील हृदय को ससार से सम्बद्ध कर देती ह और जीवन को करुणा उवर बना कर सार्थकता प्रदान करती ह। अपने जीवन प्याले को पीडा सम्पूरित रखना उन्हें अत्यत प्रिय है। पीडा की चरमता म महादेवी को सुखानुभव होता ह। जब वेदना इतनी असीम हो जाये कि उसके अनुभव म सहनशीलता और कचोट अन्तर्धान हो जाय तब वेदना व्रती का उद्देश्य सिद्ध होता ह—

चिर ध्येय यही जलने का
ठडी विभूति बन जाना,
है पीडा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना।[2]

बाह्य जीवन के स्थूल धरातल पर अवस्थित वेदना की विषय भूमि पर महादेवी की काव्य-चेतना नही रमती। इस प्रकार की वेदना बाह्य सामञ्जस्य तो खोजती है किन्तु आतरिक सामञ्जस्य की लक्ष्य प्राप्ति पर उसकी कोई दृष्टि नहीं होती। परिणामत ऐसी वेदना समरसता और प्रभाव उत्पन्न करने म अक्षम रहती ह। महादेवी वेदना को दूसरे के निकट सवेदनीय बनाने के लिये आ तरिक सामञ्जस्य अत्यत आवश्यक मानती हैं। 'दीपशिखा' की भूमिका में उन्होंने लिखा ह 'आँखो से दूर बाहर गाने वाले की करुण रागिनी हममे प्रतिध्वनित होकर एक अयक्त वेदना जगा सकती है परन्तु प्रत्यक्ष ठिठुरते हुये नग्न भिखारी का दुख तब तक हमारा न हो सकेगा

---

१ नीहार पृष्ठ ३८
२ रश्मि पृष्ठ १२

जब तक हमारा उससे वास्तविक तादात्म्य न हो जावे। व्यावहारिक जीवन में भी हमारे भौतिक अभाव उन्हीं को अधिक स्पर्श करते हैं जो हमारे निकट होते हैं जो दूरत्व के कारण ऐसे तादात्म्य की शक्ति नहीं रखता उसके निकट हमारी पार्थिव असुविधाओं का विशेष मूल्य नहीं।"[1] आंतरिक सामञ्जस्य किस प्रकार पीड़ा को सबल और प्रभविष्णु बना देता है, इस सम्बन्ध में कवयित्री का तर्क है—"लक्ष्यत एक होने पर भी अन्तर्जगत के नियम को भौतिक जगत नहीं स्वीकार करता। उसमें हमें अपनी गहराई में दूसरों को खोजना पड़ता है और इसमें दूसरों की अनेकता में अपने आपको खो देना। दूसरे की आँखें भर लाने के लिये हमें अपने आँसुओं में डूब जाने की आवश्यकता रहती है परन्तु दूसरे के डबडबाए हुए नेत्रों की भाषा समझने के लिए हमें अपने सुख की स्थिति को दूसरे के दुख में डुबा देना होगा। जब एक व्यक्ति दूसरे के दुख में अपने दुख को मिलाकर बोलता है तब उसके कण्ठ में दो का बल होगा। जब तीसरा उन दोनों के दुख में अपना दुख मिलाकर बोलता है तब उसके कण्ठ में तीन का बल होगा। और इसी क्रम से जो असंख्य व्यक्तियों के दुख में अपना दुख खोकर बोलता है उसके कण्ठ में असीम बल रहना अनिवार्य है।"[2]

इस प्रकार महादेवी वर्मा आंतरिक सामञ्जस्य के द्वारा व्यक्तिगत वेदना को समष्टि की व्यापकता से सम्बद्ध करने में ही उसकी सार्थकता मानती हैं। वेदना उन्हें अपने जीवन में सर्वाधिक प्रिय है। व्यक्तिगत पीड़ा और समष्टिगत संवेदना दोनों का उनके वेदनावाद में स्थान है। पीड़ा जीवन में ऐसी घुल मिल जाये कि उसका अनुभव कष्टकर नहीं—प्रत्युत सुखद होने लगे तभी महादेवी उसे वास्तविक पीड़ा की संज्ञा देंगी। वे वेदना को जीवन का मर्म समझने के लिये एकमात्र उपयुक्त माध्यम मानती हैं। ससीम हृदय में असीम जगत की वेदना को प्रतिष्ठित करने से जीवन सार्थकता और अमरत्व का वरण करता है। तृप्ति वेदना को तिरोहित करने वाली होती है। इसीलिये महादेवी को तृप्ति का एक कण भी स्वीकार्य नहीं है। अतृप्ति अभाव विकलता और कामना को वे अपने जीवन से कभी खोना नहीं चाहतीं। पीड़ा उनके लिये जीवन का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। वे अपने 'वन्दनावार' को निराशा और निष्क्रियता में पर्यवसित नहीं होने देना चाहतीं। 'नीर भरी दुख की बदली' बरस कर जीवन को अंकुरित ही करती है और दीपशिखा अपनी जलन से जीवन को प्रकाशित और प्रियतम का पथ आलोकित करती है।

सेवाभाव—

राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन, बौद्धदर्शन का अध्ययन वेदनावादी जीवन

---

१ दीपशिखा (भूमिका), पृष्ठ ५५-५६
२ वहीं पृष्ठ ५६

दर्शन और जीवन के सूनेपन ने महादेवी को सेवा के व्यापक क्षेत्र की व्यवस्था सौंपी है। सन १९४२ में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाले सेनानियों के परिवारों की देखभाल उनके भोजन वस्त्र और चिकित्सा आदि की व्यवस्था में महादेवी जी गाँव गाँव पैदल घूमी हैं। इसी प्रकार बंगाल के भीषण अकाल के समय भी उन्होंने 'बंगदर्शन' नामक पुस्तक का सम्पादन कर उसकी बिक्री की समस्त धन राशि अकाल पीडितों के सहायता-कोष में दी थी। नोआखाली के दंगों से पीडित व्यक्तियों की सहायता के लिए उन्होंने हिन्दी के लेखकों से धन एकत्रित किया और उसे लेखक निधि के नाम से वहाँ भेजा। इस प्रकार जब जब देश पर किसी संकट ने अपनी वीरानी छाया छोड़नी चाही है तब तब महादेवी जी का परदुःखकातर हृदय सेवा के सम्बल से उसका प्रतिकार करता रहा है।

निर्धनता और अशिक्षा हमारे देश की ऐसी भयंकर समस्याएँ हैं जो अन्य अनेक सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करती हैं। इन समस्याओं का समाधान ही देश को विकास के मार्ग पर ला सकेगा। अशिक्षा को दूर करने के लिये राजकीय स्तर पर अनेक प्रयत्न हो रहे हैं अनेक समाजसेवी संस्थायें भी इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। किन्तु बिना किसी राजकीय सहयोग और बिना किसी संस्था के माध्यम के महादेवी वर्मा ने जो प्रयत्न शिक्षा प्रसार के लिये किये हैं वे महत्त्वपूर्ण भी हैं और अनुकरणीय भी। प्रति रविवार को वे प्रयाग के आस पास के गाँवों में जाकर साधन हीन बालकों को शिक्षा देने का कार्य वर्षों तक करती रहीं। महादेवी के व्यक्तिगत प्रयत्नों से प्रयाग के निकटस्थ ग्रामीणों को शिक्षा का प्रसाद प्राप्त हो सका है। वैसा लाभ उन शिक्षा प्रसार सम्बन्धी राजकीय योजनाओं से नहीं हो सका जिन पर भारी धन राशि व्यय की जाती है और जिन योजनाओं में प्रदर्शन अधिक किया जाता है, काम बहुत कम। अपनी विचित्र पाठशाला के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"कह नहीं सकती कब और कैसे मुझे उन बालकों को कुछ सिखाने का ध्यान आया। पर जब बिना कार्यकारिणी के निर्वाचन के, बिना पदाधिकारियों के चुनाव के बिना भवन के बिना चन्दे की अपील के और सारांश यह कि बिना किसी चिरपरिचित समारोह के मेरे विद्यार्थी पीपल के पेड़ की घनी छाया में मेरे चारों ओर एकत्र हो गये तब मैं बड़ी कठिनाई से गुरु के उपयुक्त गम्भीरता का भार वहन कर सकी।"[1] अपनी इसी रविवासरीय पाठशाला के माध्यम से महादेवी जी गाँवों की दरिद्रता के निकट परिचय में आई और उनमें यह विचार जाग्रत हुआ कि ग्रामीणों की निर्धनता को दूर किये बिना उन्हें सफाई आदि के उपदेश देना सेवा भावना का अविवेकपूर्ण

१ अतीत के चलचित्र, पृष्ठ ७१ (चतुर्थ संस्करण)

प्रदान है।[1]

अपने चारों ओर के समाज में दुःख दैन्य अभाव और जीवन की जर्जरावस्था देखकर महादेवी जी के रहस्योपासक मन में दुविधा जाग्रत होने लगती है। वे सोचने लगती हैं कि उनका प्राथमिक कर्त्तव्य अपने चारों ओर के जर्जर जीवन की सेवा करना है अथवा रहस्योपासना ही उनका कर्त्तव्य है। अपने असीम प्रियतम की यौवन सुषमा और अम्लान हँसी में कवयित्री को जो आकर्षण मिलता है जीवन के क्रन्दन में कर्त्तव्य की प्रेरणा उससे किसी भी प्रकार कम नहीं है—

देखूँ सूखी कलियाँ या,
प्यास सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा,
या जर्जर जीवन देखूँ।

+ + + +

सौरभ पी पी कर बहता,
देखूँ यह मन्द समीरण,
दुख की घूँटें पीतीं या,
ठण्डी साँसों को देखूँ।

+ + + +

कलियों की घनजालों में,
छिपती देखूँ लतिकायें,

---

१ मुझे आज भी वह दिन नहीं भूलता जब मैंने बिना कपड़ों का प्रबन्ध किये हुए ही उन बेचारों को सफाई का महत्व समझाते समझाते थका डालने की मूर्खता की। दूसरे इतवार को सब जैसे के तैसे ही सामने थे—केवल कुछ गंगा जी में मुँह इस तरह धो आये थे कि मैल अनेक रेखाओं में विभक्त हो गया था, कुछ ने हाथ पाँव ऐसे घिस लिये थे कि शेष मलिन शरीर के साथ वे अलग जोड़े हुए से लगते थे और कुछ 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' की कहावत चरितार्थ करने के लिए मैले कुरते घर ही छोड़कर ऐसे अस्थि-पंजरमय रूप में आ उपस्थित हुए थे जिसमें उनके प्राण 'रहने का आश्चर्य है, गये अचम्भा कौन' की घोषणा करते जान पड़ते थे। + + + माँ को मजदूरी के पैसे मिले नहीं और दुकानदार ने नाज लेकर साबुन दिया नहीं। कल रात को माँ को पैसे मिले और आज सवेरे वह सब काम छोड़कर पहले साबुन लेने गई। अभी सोती है क्योंकि ऐसा कपड़े धो रहा है क्योंकि गुरु साहब ने कहा था कि नहा धोकर साफ कपड़े पहन कर आना और अभागे के पास कपड़े ही क्या थे। किसी दयावती का दिया हुआ एक पुराना कुरता जिसकी एक आस्तीन आधी थी और एक अंगोछा जैसा फटा हुआ टुकड़ा। —अतीत के चलचित्र (पृ ७०

या दुर्दिन के हाथो मे,
लज्जा की करुणा देखू ।
बहलाऊ नव किसलय के
झूले मे अलि शिशु तेरे,
पाषाणो मे मसले या
फूलो से शव देखू ।
+ + + +
मृदु रजत रश्मियाँ देखू
उलझी निद्रा—पखों मे,
या निर्निमेष पलको मे
चिन्ता का अभिनय देखू ।
तुझ मे अम्लान हँसी है
इसमे अजस्र आँसू-जल,
तेरा वभव देखू या
जीवन का क्रदन देखू ।[1]

दीन दुखियो की सहायता के लिये महादेवी जी सदव तत्पर रहती हैं । अशिक्षिताओ को शिक्षा देना, रोगी ग्रामीणो और निधनो की चिकित्सा की व्यवस्था करना और आर्थिक सकट से सत्रस्त लोगो की आर्थिक सहायता करना महादेवी जी ने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया है । अशिक्षितो रोगियो और निधनो की सेवा व्रत के मूल मे भी महादेवी जी की बौद्ध-दशन सम्बन्धी आस्था है । इस सम्बन्ध में डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है— बुद्ध के प्रभावो से उनका जीवन ही बदल गया । उन्होंने निश्चय किया कि वे विवाहित जीवन नही बितायेंगी और बौद्ध भिक्षुणी हो कर रहेगी। घर वाले इस बात पर राजी न थे । उन्होंने अधिक विरोध न करके अपना अध्ययन चालू रखा । अन्त मे प्रयाग यूनिवर्सिटी से सस्कृत म एम० ए० पास करने के बाद आपने अपने भिक्षुणी होने के स्वप्न को सेवा द्वारा पूरा करना चाहा ।"[2] महादेवी की सेवा भावना का पूण परिचय उनकी गद्य रचनाओ के ही माध्यम से होता है । 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखायें', और 'शृखला की कड़ियाँ' उनके समाज-सेवा सम्बन्धी प्रयत्नो और विचारो के प्रकाशित स्वरूप हैं ।

विधवाओ, उपेक्षिताओ, अवैध सन्तान वाली माताओ, निधनों, रोगियो असहायो अशिक्षितो के प्रति महादेवी जी के हृदय म जो करुणा, सहानुभूति और सेवा

१ रश्मि पृष्ठ ४१, ४२, ४३
२ महादेवी काव्यकला और जीवन-दशन (शचीरानी गुर्टू द्वारा सम्पादित) पृष्ठ १०४

भावना है, यही वृत्ति सकट ग्रस्त साहित्यकारो के प्रति भी है। सकट-ग्रस्त साहित्य कारो की सहायता के लिए उन्होने प्रयाग म 'साहित्यकार ससद' की स्थापना की है। इस प्रकार महादेवी जी की सेवा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। वास्तविकता तो यह है कि वे मूलत समाज सेविका ही हैं। कविता लिखना उनके जीवन का उद्देश्य नही कदाचित मजबूरी है। सम्भवत इसीलिए अपनी सारी कविताओ की रचना उन्होने अवकाश के ही क्षणो म की है काम के समय नही। कविता लिखते समय भी यदि कोई पीडित व्यक्ति उनका साहाय्य प्राप्त करने के लिए उनके पास पहुँचा है तो उन्होने कविता रचना अधूरी छोडकर ही अपने कर्तव्य पथ को श्रेष्ठ मान कर पहले उसकी सहायता की है। इसी प्रकार के एक सस्मरण मे उन्होने लिखा है पश्चिम के रगो का उत्सव देखते-देखते जसे ही मुह फेरा कि नौकर सामने आ खडा हुआ। पता चला, अपना नाम न बताने वाले एक वद्ध सज्जन मुझसे मिलने की प्रतीक्षा मे बहुत देर से बाहर खडे हैं। उनसे सवेरे आने के लिए कहना अरण्य रोदन ही हो गया है। मेरी कविता की पहिली पक्ति ही लिखी गई थी, अत मन खिसिया सा आया। मेरे काम स अधिक महत्त्वपूण कौनसा काम हो सकता है, जिसके लिए असमय म उपस्थित होकर उन्हाने मेरी कविता को प्राण प्रतिष्ठा से पहले ही खण्डित मूर्ति के समान बना दिया। 'मैं कवि हू'' मे जब मेरे मन का सम्पूण अभिमान पु जीभूत हाने लगा तब यदि विवेक का पर मनुष्य नही मे छिपा व्यग बहुत गहरा न चुभ जाता तो कदाचित मैं न उठती।''[१] महादेवी जी का मनुष्यत्व इसी भाँति उनके कवि पर विजय पाता रहा है।

सेवा-व्रती स्वभावत सर्वात्मवादी हो जाता है। महादेवी की सेवा भावना ने भी उन्ह सर्वात्मवादी बना दिया है। मनुष्य समाज के कष्टो को देखकर वे जितनी विचलित हो जाती हैं मनुष्येतर प्राणियो के कष्ट को देखकर भी उतनी ही द्रवित हो उठती हैं। श्री शिवचन्द्र नागर ने अपने सस्मरण म लिखा है ''मुझे याद है एक बार जब मेरे एक साथी महोदय ने एक कालीन पर चढ़े आते हुए चीटे को अगुली से दूर फेंक दिया तो वे उसके मर जाने के डर से घबरा उठी और दूसरी बार जब एक बार उनकी बिल्ली सुनयना ने इनकी आँखो के सामने एक जानवर की हत्या कर डाली तो इनकी आखो मे आँसू झलक आये और कहने लगी कि 'अब इस बिल्ली को अपने यहा नहीं रखूँगी।' तब मे पता नहा सुनयना कहाँ चली गई, मैंने उसे नही देखा। महादेवी जी की इस अतिशय करुणा भावना ने ऐसे पवित्र वातावरण की सृष्टि की है कि उनके द्वारा पाले गए विरोधी प्रकृति के प्राणी भी पारस्परिक वर भावना भूल कर हिल मिल कर रहते हैं। किसी का किसी भी प्रकार की पीडा को दूर करने के लिए वे सदव उद्यत रहती हैं। पीडित, प्रताडित और अभावग्रस्त लोगो के लिए

१ अतीत के चलचित्र (चतुथ संस्करण) पृष्ठ ६०

उनके द्वारा सदैव खुले रहते हैं।"[1]

महादेवी जी का सन्देश भी है कि जिस प्रकार एक छोटा सा सुमन झर कर भी सारे वातावरण को सुरभित कर देता है जिस प्रकार लघु दीपक अपने ज्वाला मय जीवन को ससार का तिमिर नष्ट करने के लिए समर्पित कर देता है, जिस प्रकार अस्तोन्मुख दिन ढलते ढलते भी समस्त गगन मण्डल को रग रजित कर देता है, उसी प्रकार अपने क्षण भगुर जीवन को समाज सेवा के लिए समर्पित कर देना चाहिए—

मेरे हसते अधर नहीं, जग—
की आँसू—लडियाँ देखो।
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाई कलिया देखो।

हस देता नव इन्द्रधनुष की स्मित मे घन मिटता मिटता,
रग जाता है विश्व राग से निष्फल दिन ढलता-ढलता,
कर जाता ससार सुरभिमय एक सुमन झरता झरता,
भर जाता आलोक तिमिर मे लघु दीपक बुझता-बुझता,

मिटने वालों की हे निष्ठुर,
बेसुध रगरलियाँ देखो,
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाई कलिया देखो॥[2]

नारी भावना—महादेवी जी की कविता आत्मकेन्द्रित ही अधिक है। उनकी कविता म अभिशप्त सामाजिक जीवन का आत्मकेन्द्रिक निरूपण हुआ है। पीडित जन-समाज के जीवन को वाणी देने का काय महादेवी ने गद्य के माध्यम से किया है। युग युग से नर के अत्याचार से पीडित नारी के प्रति आधुनिक कवियो का दृष्टिकोण सहानुभूतिपूण और मानवतावादी रहा है। महादेवी जी के नारी विषयक दृष्टिकोण म अधिक सवेदनशीलता है। आधुनिक भारत की एक श्रेष्ठ नारी होने के साथ ही वे पुरुष के सभी प्रकार के अत्याचारो से पीडित नारियो की सहायिका रही हैं और नारी जीवन की समस्याओ स इस प्रकार उनका प्रत्यक्ष परिचय हुआ है।

कवियो विचारको और सुधारको का नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण उदार मानवता वादी और सहानुभूतिपूण होने पर भी भारतीय समाज के व्यावहारिक जीवन मे कोई अन्तर नही दिखाई देता। पुरानी दृष्टि, दूषित समाज-व्यवस्था के नियम अब भी प्रचलित हैं और व्यवहार मे आज भी नारी को पुरुष मनोरजन की ही वस्तु मानकर चलता है। अधिकार की शक्ति और करुणा के सम्बल से जसी वह पहले

१ महादेवी काव्य कला और जीवनदशन (शचीरानी गुटू द्वारा सम्पादित) पृष्ठ २१
२ नीरजा, पृष्ठ ३७ ३८

वंचित थी, वैसी ही अब भी है। महादेवी के ही शब्दों में कहें तो "इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिये रंगबिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार यह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु पक्षियों के समान ही यह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है। हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय गुलाब सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिये। उस समय उस असमय प्रौढ़ हुई दुर्बल सन्तानों की रोगिणी पीली माता में कौन सी विवशता, कौन सी रुला देने वाली करुणा न मिले।"[1] पिता और पति की सम्पत्ति में नारी का कोई अधिकार नहीं स्वीकार किया जाता है। कानून भी इस सम्बन्ध में नारी की कोई विशेष सहायता नहीं करता। इस प्रकार महादेवी जी का निष्कर्ष है कि जिस प्रकार समाज नारी की उपेक्षा करता है उसी प्रकार सरकार भी उसके प्रति उदासीन रहती है, 'कानून हमारे स्वत्वों की रक्षा का कारण न बन कर चीनियों के काठ के जूते की तरह हमारे ही जीवन के आवश्यक तथा जन्मसिद्ध अधिकारों को संकुचित बनाता जा रहा है। सम्पत्ति के स्वामित्व से वंचित असंख्य स्त्रियों के सुनहले भविष्यमय जीवन कीटाणुओं से भी तुच्छ माने जाते देख कौन सहृदय रो न देगा? चरम दुरवस्था के सजीव निदर्शन हमारे यहाँ के सम्पन्न पुरुषों की विधवाओं और पतक धन के रहते हुए भी दरिद्र पुत्रियों के जीवन हैं। स्त्री पुरुष के वैभव की प्रदर्शनी मात्र समझी जाती है और बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों से उठाकर फेंक दिए जाते हैं, उसी प्रकार एक पुरुष के न होने पर न स्त्री के जीवन का कोई उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृह में उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल सकता है। जब जला सकते थे तब इच्छा या अनिच्छा से जीवित ही भस्म करके स्वर्ग में पति के विनोदार्थ भेज देते थे परन्तु अब उसे मृत पति का ऐसा जीवित स्मारक बन कर जीना पड़ता है जिसके सम्मुख श्रद्धा से नत मस्तक होना तो दूर रहा, कोई उसे मलिन करने की इच्छा भी रोकना नहीं चाहता।"[2] यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की सरकार ने इस प्रकार के कानून बनाए हैं जिनके अनुसार नारी अपने पिता और पति दोनों की सम्पत्ति प्राप्त करने की अधिकारिणी घोषित की गई है, किन्तु व्यवहार में वैसा कुछ भी नहीं है।

पुरुष के द्वारा शासित समाज में नारी की स्थिति सर्वत्र समान है। पति के घर में उसकी उपेक्षा है और पिता के घर में उसका कोई अधिकार नहीं माना जाता। पुरुष की इच्छा और अभिरुचि के समान यदि कोई स्त्री नहीं हुई तो पुरुष के घर में उसका कोई स्थान नहीं रह जाता है। पुरुष को यह सुविधा होनी है कि वह उसके

१ शृंखला की कड़ियाँ पृष्ठ १०२
२ शृंखला की कड़ियाँ पृष्ठ १६ १७

स्थान पर दूसरी स्त्री से अपना घर सजा ले। समाज की इस दूषित व्यवस्था पर महादेवी जी ने क्षोभ व्यक्त किया है "हिंदू नारी का घर और समाज इन्हीं दो से विशेष सम्पर्क रहता है। परन्तु इन दोनों ही स्थानों में उसकी स्थिति कितनी करुण है, इसके विचार मात्र से ही किसी सहृदय का हृदय काँपे बिना नहीं रहता। अपने पितगृह में उसे वैसा ही स्थान मिलता है जैसा किसी दूकान में उस वस्तु को प्राप्त होता है जिसके रखने और बेचने दोनों ही में दुकानदार को हानि की सम्भावना रहती है। जिस घर में उसके जीवन को ढल कर बनना पड़ता है उसके चरित्र को एक विशेष रूप रेखा धारण करनी पड़ती है जिस पर वह अपने शैशव का सारा स्नेह ढुलका कर भी तृप्त नहीं होती, उसी घर में वह भिक्षुक के अतिरिक्त कुछ नहीं है। दुख के समय अपने आहत हृदय और शिथिल शरीर को लेकर वह उसमें विश्राम नहीं पाती? भूल के समय वह अपना लज्जित मुख उसके स्नेहाचल में नहीं छिपा सकती ऐसी है उसकी वह अभागी जन्मभूमि जो जीवित रहने के अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं देती। पति गृह जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकार में उससे कुछ अधिक परन्तु सहानुभूति में उससे बहुत कम है इसमें सन्देह नहीं। यहाँ उसकी स्थिति पल भर भी आशंका से रहित रही। यदि वह विद्वान पति की इच्छानुकूल विदुषी नहीं है तो उसका स्थान दूसरी को दिया जा सकता है। यदि वह सौन्दर्योपासक पति की कल्पना के अनुरूप अप्सरी नहीं है तो उसे अपना स्थान रिक्त कर देने का आदेश दिया जा सकता है। यदि वह पति की कामना का विचार करके सन्तान या पुत्रों की सेवा नहीं कर सकती, यदि वह रुग्ण है या दोषों का नितान्त अभाव होने पर वह पति की अप्रसन्नता की दोषी है तो भी उसे घर में दासत्व मात्र स्वीकार करना पड़ेगा।"[१] नारी की इस दयनीय स्थिति का मूल कारण उसकी आर्थिक पराधीनता है। हमारे सामाजिक जीवन में नारी को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है अथवा यो कहें कि नारी को आर्थिक स्वतन्त्रता की सामाजिक स्वीकृति नहीं है। जो महिलायें आर्थिक प्रयत्न करती हैं वे या तो समाज के उच्च वर्ग की सदस्या होती हैं अथवा विधवा, परित्यक्ता आदि करुण विशेषण देकर समाज उन्हें आर्थिक प्रयत्न करने की दयामय अनुमति दे देता है। किन्तु सामान्य भारतीय नारी को आर्थिक प्रयत्न करने का सामाजिक स्वीकृति नहीं है। उसके आर्थिक प्रयास को गर्व और उल्लेख का विषय न मानकर हीनत्व और अपमान का विषय माना जाता है। परिणाम यह है कि नारी अपने जीवन की आवश्यकता की पूर्ति के लिये पुरुष की आश्रित रहती है और उसके सभी प्रकार के अत्याचारों को सहन कर घुटती घुलती रहती है।

महादेवी वर्मा नारी-समस्या पर जब विचार करती हैं तो वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि यदि नारी आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त कर ले तो उसके जीवन की

---

१ शृंखला की कड़ियाँ पृष्ठ ३६ ४०।

अनेक समस्यायें तिरोहित हो जायेंगी। विवाह को भी वे नारी की आर्थिक समस्याओं का समाधान नही मानती। उनके मत से विवाह तो साहचय की इच्छा की पूर्ति का प्रतीक है। अत विवाह को नारी की आर्थिक कठिनाइयो का समाधान मानकर उसकी आर्थिक स्वाधीनता के विचार के प्रति उदासीन हो जाना उचित नही। 'शृखला की कड़ियाँ' नामक पुस्तक म उन्होंने इस विषय मे लिखा है—"अनेक व्यक्तियो का विचार है कि यदि कन्याओ को स्वावलम्बिनी बना देंगे तो वे विवाह ही न करेंगी, जिससे दुराचार भी बढ़ेगा और गहस्थ धम म भी अराजकता उत्पन्न हो जायगी। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि स्वाभाविक रूप से विवाह मे किसी व्यक्ति के साहचय की इच्छा प्रधान होनी चाहिये, आर्थिक कठिनाइयो की विवशता नही।'[1] किन्तु पुरुष, जो समाज की व्यवस्था का सूत्रधार है नारी के आर्थिक परावलम्बन को दूर कर उसे समान स्थिति म नही देखना चाहता। महादेवी का कथन है कि 'समाज ने स्त्री के सम्बन्ध मे अथ का ऐसा विषम विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वग से लेकर सम्पन्न वग की स्त्रियो तक की स्थिति दयनीय ही कही जाने योग्य है। वह केवल उत्तराधिकार से ही वंचित नही है परन्तु अथ के सम्बन्ध मे सभी क्षेत्रो मे एक प्रकार की विवशता के बन्धन म बँधी हुई है। कही पुरुष ने न्याय का सहारा लेकर और कही अपने स्वामित्व की शक्ति से लाभ उठा कर उसे इतना अधिक परावलम्बी बना दिया है कि वह उसकी सहायता के बिना ससार पथ मे एक पग भी आगे नही बढ़ सकती।'[2]

नारी जीवन की समस्त समस्याओ पर महादेवी जी ने विचार किया है। वेश्या और मदय प्रसूता विधवा यह नारी के दो ऐसे रूप हैं जो सवदा तिरस्कृत और कलंकित माने जाते हैं। वेश्या जीवन पर विचार करते हुए महादेवी ने लिखा है—'यदि स्त्री की ओर से देखा जाये तो निश्चय ही देखने वाला काँप उठेगा। उसके हृदय म प्यास है परन्तु उसे भाग्य ने मृग मरीचिका मे निर्वासित कर दिया है। उसे जीवन भर आदि से अन्त तक सौन्दय की हाट लगानी पड़ी, अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओ को कुचलकर आत्म समपण की सारी इच्छाओ का गला घोट कर रूप का क्रय विक्रय करना पडा—और परिणाम मे उसके हाथ आया निराश हलाश एकाकी अन्त। जीवन की एक विशेष अवस्था तक ससार उसे चाटुकारी से मुग्ध करता रहता है झूठी प्रशसा की मदिरा से उन्मत्त करता रहता है उसके सौन्दय दीप पर शलभ सा मण्डराता रहता है पर तु उस मादकता के अन्त म उस बाट के उतर जाने पर उसकी ओर कोई सहानुभूति भरे नेत्र भी नही उठाता। उस समय उसका तिरस्कृत स्त्रीत्व, लोलुपो के द्वारा प्रशसित रूप वभव का भग्नावशेष क्या उसके हृदय को किसी प्रकार की सान्त्वना भी द सकता है? जिन परिस्थितियो ने गह जीवन से

१ शृखला की कड़ियाँ पृष्ठ १०२
२ वही,

उसका बहिष्कार किया, जिन व्यक्तियों ने उसके काले भविष्य को सुनहले स्वप्नों से ढाका, जिन पुरुषों ने उसके नूपुरों की रुन-झुन के साथ अपने हृदय के स्वर मिलाये और जिस समाज ने उसे इस प्रकार हाट लगाने के लिये विवश तथा उत्साहित किया, वे क्या कभी उसके एकाकी अन्त का भार कम करने लौट सके।"[1] वेश्या-नारी के प्रति यह सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण सभी का नहीं है। महादेवी जी वेश्याओं को सहानुभूति देकर ही अपनी इति कर्त्तव्यता नहीं मानती। उनका विचार है कि नारी के इस रूप के साथ न्यायसंगत व्यवहार होना चाहिए। जिस पुरुषवर्ग ने अपनी उद्दाम वासना की तृप्ति के लिये वेश्या को जन्म दिया वास्तव में वेश्या जीवन के समस्त दोषों का उत्तरदायित्व उस पुरुष वर्ग का ही है। किन्तु यही पुरुष-समाज इतना कठोर और बर्बर जैसा हो गया है कि वेश्याओं को नागरिक अधिकारों से ही वंचित नहीं करता प्रत्युत उनके हृदय को हृदय मानने में भी उसे संकोच होता है और उनके करुण जीवन को अपनी सहानुभूति देने में उसे हिचक होती है। महादेवी जी की मान्यता है कि नारी की आर्थिक पराधीनता ही वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देती है। अतः वेश्यावृत्ति के मूल में नारी की व्यक्तिगत दुर्बलता न होकर वह दोषपूर्ण समाज-व्यवस्था है जिसमें नारी की आर्थिक पंगुता का विधान किया जाता है।

पुरुष की चिरंतन वासना ज्वाला में अपने जीवन की आहुति देने वाली वेश्या के बलिदानी जीवन का पुरुष को स्मारक बनाना चाहिये था, किन्तु पुरुष ने ऐसी कोई उदारता न दिखा कर वेश्या के प्रति कठोर और निंदात्मक व्यवहार करने में ही अपनी शालीनता समझी है। पतित कही जाने वाली नारी के प्रति पुरुष के अनुदार और अमानवीय व्यवहार से क्षुब्ध महादेवी वेश्या को सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का पात्र मानती हैं।[2]

---

१ शृंखला की कड़ियाँ पृष्ठ १११, ११२

२ इन स्त्रियों ने (जिन्हें गर्वित समाज पतित के नाम से सम्बोधित करता आ रहा है) पुरुष की वासना की वेदी पर कैसा घोरतम बलिदान दिया है, इस पर कभी किसी ने विचार नहीं किया। पुरुष की बर्बरता, रक्त लोलुपता पर बलि होने वाले युद्ध वीरों के चाहे स्मारक बनाये जावें पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्ण रखने के लिये प्रज्ज्वलित चिता पर क्षण भर में जल मिटने वाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सकें परन्तु पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हँसते-हँसते अपने जीवन को तिल तिल जलाने वाली इन रमणियों को मनुष्य जाति ने कभी दो बूँद आँसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा।

कभी कोई ऐसा इतिहासकार न हुआ, जो इन मूक प्राणियों की दुःखभरी जीवन-गाथा लिखता, जो इनके अँधेरे हृदय में इच्छाओं के उत्पन्न और नष्ट होने की करुण कहानी सुनाता जो इनके रोम रोम को जकड़ लेने वाली शृंखला की कड़ियाँ ढालने वालों के नाम गिनाता और जो इनके मधुर जीवन पात्र में तिक्त विष मिलाने वाले का पता देता।

शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ ११३, ११४

इसी प्रकार उन बाल विधवाओं और सामान्य विधवाओं की समस्या पर भी महादेवी ने विचार किया है जो छोटी सी भूल के कारण सभी प्रकार की लाछनाओं का लक्ष्य बना दी जाती हैं। गर्भवती विधवा के गर्भ की अवधता और अनतिरता का दोष दायित्व जितना विधवा की विवशता का होता है उससे कहीं अधिक दोष पुरुष की क्रूर वासना और अधिकार सबलता का होता है। किन्तु गर्भ धारण करने की सूचना पाकर ही पुरुष बेचारी विधवा को अपनी पत्नी बनाने की प्रतिज्ञा भूल जाता है और उसे असहायावस्था में छोड़कर उसकी पहुँच के बाहर हो जाता है और गर्भ का समस्त दोष विधवा के सिर पर मढ़ दिया जाता है। ऐसी सकटपूर्ण स्थिति में या तो विधवा को भ्रूण हत्या के पाप कृत्य का सहारा लेना पड़ता है या अपनी सन्तान को किसी अनाथालय की सीढ़ियों पर रख अपने हृदय पर पत्थर रखना पड़ता है।

एक सद्य प्रसूता विधवा की सहायतार्थ जब महादेवी जी गईं और उसे देखकर उनके मन और मस्तिष्क में जो प्रतिक्रिया हुई उसका चित्रण करते हुए महादेवी ने लिखा है— स्मरण नहीं आता वैसी करुणा मैंने कहीं और देखी है। खाट पर बिछी मैली दरी, सहस्रों सिकुड़न भरी मलिन चादर और तेल के कई धब्बे वाले तकिये के साथ मैंने जिस दयनीय मूर्ति से साक्षात् किया उसका ठीक चित्र दे सकना सम्भव नहीं है। वह १८ वर्ष से अधिक की नहीं जान पड़ती थी—दुर्बल और असहाय जैसी। सूखे ओठ काले, साँवले, पर रक्त हीनता से न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से पीले, मुख में आँखें ऐसे जल रही थीं जैसे तलहीन दीपक की बत्ती। और तब न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से मेरे मन का निष्क्रिय विषाद क्रोध के सहस्र स्फुलिंगों में बदलने लगा।

अपने अकाल वैधव्य के लिये वह दोषी नहीं ठहराई जा सकती उसे किसी ने धोखा दिया, इसका उत्तरदायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता पर उसकी आत्मा का जो अंश हृदय का जो खण्ड उसके समान है उसके जीवन मरण के लिए केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष यदि उसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार करता तो केवल इस मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को अपने बालक को अस्वीकार कर देगी? ससार में चाहे इसका कोई परिचयात्मक विशेषण न मिला हो, परन्तु अपने बालक के निकट तो यह गरिमामयी जननी की सज्ञा ही पाती रहेगी? इसी कर्तव्य को अस्वीकार करने का यह प्रबन्ध कर रही है। किसलिये? केवल इसलिये कि या तो उस वचक समाज में फिर लौट कर गगा-स्नान कर व्रत उपवास, पूजा पाठ आदि के द्वारा सती विधवा का स्वाँग भरती हुई और भूलों की सुविधा पा सके या किसी विधवा आश्रम में पशु के समान नीलाम पर चढ़ कर कभी नीची कभी ऊँची बोली पर बिके। अन्यथा एक एक बूँद विष पीकर धीरे-धीरे प्राण दे।"[1]

---

१ अतीत के चलचित्र (चतुर्थ सस्करण), पृष्ठ ६५ ६६

पुरुष शासित समाज मे नारी को अपनी दयनीय स्थिति से मुक्ति पाने के लिये विद्रोह करना होगा। महादेवी जी का विश्वास है कि यदि नारी रण चण्डी का रूप धारण कर ले तो उसके जीवन की सारी समस्यायें अविलम्ब सुलझ सकती हैं। अवैध सन्तानो की माताओं को उन्होंने ऐसा ही सन्देश दिया है 'यदि यह स्त्रियां अपने शिशु को गोद मे लेकर साहस से कह सकें कि बर्बरो तुमने हमारा नारीत्व पत्नीत्व सब ले लिया पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी तो इनकी समस्यायें तुरन्त सुलझ जावें। जो समाज इन्हे वारता, साहस और त्याग भरे मातृत्व के साथ नही स्वीकार कर सकता, क्या वह इनकी कायरता और दैन्यभरी मूर्ति को ऊँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर पूजेगा? युगो से पुरुष स्त्री को अपनी शक्ति के लिये नही, सहनशक्ति के लिये ही दण्ड देता आ रहा है।"[1]

पुरुष की वासना, अधिकार-लोलुपता और प्रवचनाओं से पीडित नारी के जीवन की समस्याओ पर दृष्टिपात करते समय महादेवी ने पुरुष की नारी के प्रति सकुचित और स्वार्थमय प्रवृत्ति की पर्याप्त भर्त्सना की है और नारी की आर्थिक स्वाधीनता, समान अधिकार आदि की स्वीकृति उसकी जीवन प्रगति के लिये आवश्यक मानी है। नारी के सम्बन्ध म महादेवी का दृष्टिकोण प्रगतिशील है और नारी के यथार्थ जीवन पर आधारित है।

नारी जीवन की विद्रूपताओ और विकृतियो को दूर करने के लिय महादेवी जी पुरुष की दया-दृष्टि की भीख नही मागना चाहती। उनका विश्वास है कि नारी का हित उसके अपने प्रयत्नो स ही हो सकेगा। नारी जीवन की समस्याओं पर विचार न्यस्त पुरुषो को भी उनकी सलाह है कि नारी के सक्रिय सहयोग के बिना वे अपने प्रयत्नो मे सफल नही हो सकेंगे क्योंकि अब नारी अपनी स्थिति और अपने अधिकारों के प्रति सजग और सावधान हो गई है। दीपशिखा' की भूमिका म महादेवी ने लिखा है, "जहाँ तक नारी की स्थिति का प्रश्न है वह आज इतनी सज्ञाहीन और पगु नही कि पुरुष अकेले ही उसके भविष्य और गति के सम्बन्ध म निश्चय कर ले। हमारे राष्ट्रीय जागरण म उसका सहयोग महत्त्वपूर्ण और बलिदान असख्य हैं। समाज म वह अपनी स्थिति के प्रति विशेष सजग और सतर्क हो चुकी है। साहित्य को कुछ ही वर्षों मे उसका सजीवता का जैसा परिचय मिल चुका है वह भी उपेक्षणीय नही। इसके अतिरिक्त इस सक्रान्तिकाल म सभी देशो की नारी अपने कठिन त्यागों स अर्जित गृह, सन्तान तथा जीवन को अरक्षित देखकर और पुरुष की स्वभावगत पुरानी बर्बरता का नया परिचय पाकर सम्पूर्ण शक्ति के साथ जाग उठी है। भारतीय नारी भी इसका अपवाद नही।"[2] क्योंकि 'हमारी दीर्घकालीन पराधीनता में भी नारी ने अपने

१ अतीत के चलचित्र (चतुर्थ सस्करण), पृष्ठ ६६
२ दीपशिखा (भूमिका), पृष्ठ ५०

स्वभावगत गुण कम खोये हैं, क्योंकि संघर्ष म सामने रहने के कारण पुरुष के लिये जितना आत्म-हनन और विवश समझौता अनिवार्य हो जाता है उतना नारी के लिये स्वाभाविक नही।"[1]

किन्तु आधुनिक प्रबुद्ध नारी की घर के प्रति उदासीनता की प्रवृत्ति को महादेवी जी अशोभनीय ही नही, घातक भी मानती हैं। वे चाहती हैं कि नारी का काय क्षेत्र घर और बाहर के दोनो सीमान्तो तक परिव्याप्त हो और नारी जसे घर के काम मे दक्ष हो वसे ही बाहर के काय म भी कुशल बने। केवल घर के भीतर रहकर घरेलू काय म ही व्यस्त नारी अपने आपको बंदिनी मानने लगती है और केवल बाहर के क्षेत्र म काय रत नारी म उच्छृखलता आ जाती है। आधुनिक 'सभ्य नारी' की घर से सम्बन्ध विच्छेद करने की प्रवृत्ति को महादेवी ध्वसात्मक प्रवृत्ति मानती हैं।

महादेवी वर्मा के नारी जीवन की समस्याओ सम्बन्धी समाधान और विचार नारी के यथाथ जीवन पर आधारित होने के कारण समाजवादी और प्रगतिशील हैं। उन्होने नारी समस्या के समाधान मे कहीं भी रूढ़ि के समक्ष समपण नही किया, 'जारज सन्तान' की माता को आश्रय देने म पतित कही जाने वाली माँ की पुत्री को स्नेह और सहायता देने मे तथा समाज की विकृतियो के लिये दम्भी और पाखण्डी पुरुषो की भत्सना करने म उन्होने कभी हिचक नही की। आभिजात्य वग की चिन्ता किये बिना और रूढियो से समझौता किये बिना उन्होने नारी जीवन सम्बन्धी अपने विचारो को निभयता से अभिव्यक्त किया और परित्यक्ता उपेक्षिता, सद्यप्रसूता विधवा आदि पीडित नारियो की सहायता करने म कभी सकोच नही किया।

---

१ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृष्ठ २४६

५

महादेवी की प्रेम-भावना

महादेवी वर्मा की प्रेम भावना को समझने के लिए उनके युग पर दृष्टिपात करना होगा। यह सवविदित है कि महादेवी वमा ने जिस युग मे आखें खोली वह व्यापक सामाजिक सुधार चेतना तथा राष्ट्रीय जागरण का समय था। हिदी साहित्य के क्षेत्र मे आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से एक नया सामाजिक बोध उत्पन्न हो चुका था, जिसका प्रभाव परवर्ती कवियो पर भी देखा जा सकता है। छायावादी कवियो म द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता क प्रति विद्रोह तथा वयक्तिकता का आग्रह परिलक्षित होता है तथापि उनमे उस नवीन सास्कृतिक चेतना एव नवीन सामाजिक बोध का अभाव नही मिलता जो उन्हें अपने पूववर्ती सास्कृतिक नेताओ से सस्कार रूप म मिला था। अधिकाश छायावादी कवियो मे प्रेम के उदात्तीकरण की प्रवत्ति पाई जाती है जिसका मुख्य कारण उक्त नवीन सामाजिक बोध है। द्विवेदीकाल मे प्रेम भावना का सामाजिक कल्याण से जैसा अटूट गठब धन हो गया था वह छायावादी काव्य मे नही हुआ। उसमें तो वयक्तिक प्रेमानुभूतियो का खुलकर वणन हुआ। फिर भी छायावादी कवि सामाजिक मर्यादा का उल्लघन नही करते और इसीलिए व्यक्तिगत प्रेमानुभूतियो को साकेतिक भाषा एव प्रतीकात्मक शैली म अभिव्यक्त करते हैं।

महादेवी वर्मा के काय म प्रेम के उदात्तीकरण की प्रवत्ति सवत्र विद्यमान है। उनकी प्रेम भावना एक स्थूल शारीरिक आकपण मात्र तक सीमित नही बल्कि उसमे आत्मा के अहम का विसजन एव समपण का उत्कष है। उनका प्रेमपात्र एक अनात अलौकिक प्राणी है, जो कभी कभी छायातन के रूप म प्रगट होता है—

"अज्ञात लोक से छिप छिप ज्यो उतर रश्मिया आतीं,
मधु पीकर प्यास बुझाने फूलो के उर खुलवातीं,
छिप आना तुम छायातन।"

—(आधुनिक कवि, भाग १)

उसी अलौकिक प्रेमपात्र के प्रति अनुराग एव आत्मसमपण ने महादेवी जी को एक रहस्यलोक म पहुँचा दिया। तभी तो उन्होने लिखा—

"चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम
काया छाया मे रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या।"

—(नीरजा)

उसी अलौकिक प्रेम पात्र के प्रति यह आत्मसमर्पण एक गीत म यो प्रगट हुआ है—

"जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मिति का प्रात,
जीवन विरह का जलजात।"

— (नीरजा)

(कवयित्री अपने जीवन को प्रियतम का लीलाकमल' समझती हैं !)

महादेवी जी के प्रेम वर्णन मे कही भी मांसलता का स्पर्श नही है और न वासना की गंध ही है क्योकि उनका प्रेम विशुद्ध आत्मा का संगीत है। उनके संयोग चित्रो मे भी इतनी सांकेतिकता एवं संश्लिष्टता है कि उन्हें एकदम मासल प्रेम चित्रो की श्रेणी मे नही रखा जा सकता। यद्यपि उनका मन वियोग शृंगार के वर्णन म अधिक रमा है पर यहाँ उनके संयोग चित्रो का उल्लेख इसलिए किया गया कि उनम 'मन का चोर' पकडे जाने की अधिक सभावना हो सकती है। सम्भव है कि कुछ आलोचक उनके मन का चोर पकडने म सफल हुए हो। डॉ० शम्भूनाथ पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'रहस्यवाद और हिन्दी कविता' म उनके दुःखवाद पर टिप्पणी करते हुए लिखा है— 'महादेवी का दुःखवाद संसार की क्षणिकता पर आधारित न होकर प्रणयजन्य वेदना पर आधारित है।" (प्रथम संस्करण, पृष्ठ २११) शायद डा० पाण्डेय यह भूल गए कि कोई भी साहित्यकार शून्य मे रचना नही करता और यदि वह करता है तो उसकी रचनाएं शून्य के समान होती हैं। फिर भी भावुक कवि भावना की सरणियो को पार करता हुआ स्थूल से ऊपर उठकर सूक्ष्म की ओर अग्रसर हो सकता है। महादेवी जी ने संयोग शृंगार के वर्णन मे भी प्रेम के उदात्तीकरण का परिचय दिया है। 'नीहार' में संकलित एक कविता का यह अंश देखिये—

'आज आए हो हे करुणेश !
इन्हें जो तुम देने वरदान
जलाकर मेरे सारे अंग
करो दो आँखों का निर्माण।"

यहाँ प्रेमभावना दशन लालसा म सिमट कर रह गई है। कभी कवयित्री स्वप्न मे मिलन की कल्पना करती हैं —

"तुम्हें बाँध पाती सपने मे,
तो चिर जीवन प्यास बुझा लेती उस छोटे क्षण अपने मे।"
—(नीरजा)

कभी उसे अनुभव होता है—

"वह सपना बन बन आता जागृति मे जाता लौट
मेरे श्रवण आज बठे हैं इन पलकों की ओट।"
—(नीरजा)

मिलन की सुखानुभूति का भी एक चित्र देख लीजिए, जिसम वासना का नाम तक नहीं है— फिर मिलन की आकांक्षा क्यों ?

"नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय, आज हो रही कसी उलझन,
रोम रोम मे होता री सखि ! एक नया उर का-सा स्पदन,
पुलकों से भर फूल बन गये,
जितने प्राणों के छाले हैं।"
—('आधुनिक कवि' भाग १)

काटूँ वियोग पल रोते, सयोग समय छिप जाऊँ' लिखने वाली कवयित्री की प्रणयभावना का अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

महादेवी वर्मा की प्रेम भावना रहस्यवाद की ओर उन्मुख है। वे शरीर के धरातल से ऊपर उठकर आध्यात्मिक साधना की सरणियों को पार कर उस अनन्त सत्ता म एकाकार हो जाना चाहती हैं जो धरती के कण-कण म व्याप्त है। रहस्यवाद किसी धार्मिक अनुष्ठान की विशिष्ट प्रणाली नही ह बल्कि वह आध्यामिक धरातल पर जीने और परम सत्ता से तादात्म्य स्थापित कर उसमे मिल जाने की अनुभूति का क्षेत्र है। यह अनुभूति अनन्त प्रेम और उसकी तीव्रता की अपेक्षा करती है ऐसा प्रेम जिसम 'स्व' एव पर का भेद मिट जाता है जो प्रकृति के कण कण मे अनन्त सत्ता का दशन करता है और जो स्वाथ की अपक्षा वलिदान को अधिक महत्त्व देता है। महादेवी जी के दुखवाद को बहुत से लोग गलत समझते हैं। वह उनकी व्यक्तिगत कुण्ठाओ का प्रतीक नही, क्योंकि कुण्ठाएँ अभाव म जन्म लेती हैं और स्वय महादेवी जी के अनुसार उनके जीवन मे किसी चीज़ का अभाव नही रहा। उनका दुखवाद उस आत्मिक वलिदान का प्रतीक है जिसका उत्स अनन्त प्रेम है। यही दुखवाद महादेवी जी के वियोग वणन मे देखा जा सकता है जिसको उन्होंने अधिक

महत्त्व दिया है। आत्म बलिदान के लिए व्याकुल उनकी विशुद्ध प्रेम भावना इसीलिए रहस्यवादोन्मुख दिखाई देती है। अपने प्रथम कविता संग्रह 'नीहार' में वे लिखती हैं —

> 'जब असीम से हो जायेगा मेरी लघु सीमा का मेल,
> देखोग तुम देव! अमरता खलेगी मिटने का खेल।"

सारे जगत में एक ही ब्रह्म व्याप्त है, सभी मानव प्रतिबिम्बों में वही समाया है, इस अद्वैत भावना को कवयित्री ने यों व्यक्त किया है —

> "विविध रंगों के मुकुर सँवार,
> जड़ा जिसने यह कारागार,
> बना क्या बन्दी वही अपार
> अखिल प्रतिबिम्बों का आधार?"
>
> —('रश्मि')

मेघों में बिजली की चमक और तारक बालाओं में उसी परम पुरुष की छवि विद्यमान है, जिसे महादेवी जी ने यों साकार किया है —

> "मेघों में विद्युत-सी छवि, उनकी बनकर मिट जाती,
> आँखों की चित्र पटी में जिसमें मैं आँक न पाऊँ।
> वे तारक-बालाओं की अपलक चितवन बन आते,
> जिसमें उनकी छाया भी मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ।
>
> —('रश्मि)

यह अकुलाहट प्रेम की तन्मयता की द्योतक है। यह कोई आरोपित वस्तु नहीं। प्रेम की व्यापकता की अनुभूति इस तन्मयता की पहली शर्त है और यही रहस्यवाद की भावभूमि तक पहुँचने का प्रथम सोपान। प्रेम की व्यापकता का एक चित्र देखिये —

> "सिहर सिहर उठता सरिता-उर,
> खुल खुल पड़ते सुमन सुधा भर,
> मचल-मचल आते पल फिर फिर,
> सुन प्रिय की पदचाप हो गई पुलकित यह अवनी।"
>
> —('नीरजा')

महादेवी की प्रेमभावना की तुलना प्रायः भक्त-कवयित्री मीरा की प्रेमभावना से की जाती है। किन्तु यह बात कुछ अंश तक ही सही हो सकती है। महादेवी में प्रेमाकुलता के साथ जो बौद्धिक दृष्टिकोण तथा राग विराग का जैसा अद्भुत सम्मिश्रण

मिलता है, वह मीरां की रचनाओ मे उपलब्ध नही। मीरा मे माधुर्य तथा प्रसाद गुण भरपूर है। यही कारण है कि उनके पद बहुत लोकप्रिय हैं। महादेवी म प्रेमजनित आकुलता, चिन्तन की प्रखरता, सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता का प्राधान्य है। उनकी रचनाएँ एक विशिष्ट समुदाय म ही लोकप्रिय हो सकती हैं। प्रेमजनित आकुलता मीरां मे भी पर्याप्त है, पर व अपने सांवलिया से मिलने के लिए तडपती हैं, और महादेवी अपने अज्ञात प्रियतम के वियोग मे ठडी विभूति' बन गई हैं। वे पीडा मे ही सुख का अनुभव करने लगती हैं और उस सुख को कभी खोना नहीं चाहती—

"पाने मे तुमको खोऊ, खोने मे समझू पाना,
यह चिर अतृप्ति हो जीवन, चिर तृष्णा हो मिट जाना।"

—('रश्मि')

इसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि मीरां साकार ईश्वर की उपासिका हैं और महादेवी का प्रेमाधार निराकार, अलौकिक एव अज्ञात है। इन सब बातो को समझे बिना महादेवी को आधुनिक काल की मीरां कह देना दोनो से अज्ञता प्रगट करना है। दोनो को 'पीडा की गायिका' कहा जाता है, लेकिन अपनी पीडा का गायन किस कवि ने नहीं किया ? दो साहित्यकारो की तुलना करना इतना सहज काम नहीं, जितना कुछ लोग समझते हैं। केवल एकांगी समानता के आधार पर कोई निर्णय देना उचित नही।

—०—

डॉ० कृष्णनन्दन 'पीयूष'

६

महादेवी के काव्य का मानसिक वातावरण

कविता कवि के जीवन की प्रतिमूर्ति यदि नहीं है तो प्रतिछाया तो अवश्य ही है, यह स्वीकार करना पड़ेगा। जीवन के भाव अभावों के घूर्णित चक्रों से जो धूल उड़ती है वही कवि की कविता की सुरभि बन जाती है। फिर भी यह स्थापित सत्य ही है कि रचना की सृजन प्रक्रिया के पीछे कवि या रचनाकार का परिवेश बहुत कुछ महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। परिवेश स्वय म का य का विषय नहीं है, पर जब वह काव्य साधना की पृष्ठभूमि मे सहयोगी होता है तब वह आवेष्ठन बनकर कवि को प्रेरित ही नहीं करता वरन् सृजनात्मक स्थिति तक उसे खींच ले जाता है। आवेष्ठन की स्थिति भी दो प्रकार की होती है और उसे हम वज्ञानिक निकष के आधार पर दो स्थितियो मे विभाजित कर सकते हैं—आ तरिक, बाह्य। कवि की सृजनात्मक क्षणो की सम्पूर्ण गायिकी का आधार आ तरिक स्थिति ही है। मैं यहाँ जान-बूझकर यह कहना चाहता हू कि बाह्य का प्रभाव जीवन को झकझोरता अवश्य है किन्तु जब तक वह बाह्य से आ तरिक स्थिति मे नहीं पहुचता वह आवेष्ठन की स्फुरित स्थिति का पर्याय नहीं बन पाता है। बाह्य जीवन की आपदायें, सघात विषमता की सत्रसतता से शरीर कराह उठता है, ऐसी स्थिति मे मनुष्य रो भी सकता है उसकी आँखो मे आँसू छलछला सकते हैं पर उसके सृजनात्मक क्षणो का स्फुरण सभव नहीं है। जब यही बाह्य' अनुभूतिज य होकर आ तरिक सवेदना के रूप म परिणत हो जाता है तो कवि का मानसिक तत्व स्फुरित होता है। उसकी बाह्य चीख ही आ तरिक मुखरता की ओर उ मुख होकर कविता के रूप म फूट पड़ती है। तब कवि बाहर से हसता होता है लेकिन उसके स्वरा के आरोह अवरोह की मूच्छनाओ से उसके मनसाव का यही वातावरण (आवष्ठन) काव्य के सृजन के लिए महत्त्वपूर्ण योग सिद्ध होता है। मेरे मन्तव्य का आशय यह है कि जीवन से कहीं अधिक महत्त्व कवि की कविता के लिए जीवन की अनुभूतियों का रागमयी होकर मानसिक स्तर म आवेष्ठन बन जाना है। जब तक क्षणो की अनुभूति क्षण की अनुभूति नहीं बन पाती तब तक वह सृजन की प्रक्रिया का स्वरूप नहीं ले पाती। इसी आवेष्ठन को कविता के मानसिक वातावरण से सम्बन्धित मान सकते हैं। किसी भी काव्य क मानसिक वातावरण की पृष्ठभूमि को समझने के पूव रचना के सृजन की इस सपन्ति प्रक्रिया को भी जानना अत्य त आवश्यक है।

महादेवी की कविता के मानसिक वातावरण जैसे विषय पर जिस आवेष्ठन को मैं विवेच्य मानता हूँ उसे भी दो वर्गों मे विभाजित करना होगा। प्रथम वग तो उस बाह्य आवेष्ठन का है जिसमे कवयित्री का बचपन से लेकर आज तक का वह जीवन है जो का य का उपजीव्य रहा है। दूसरे वग मे वे आन्तरिक अनुभूतिया हैं जो बाह्य की स्थिति से अ तमु ख होकर आ तरिक आवेष्ठन की स्थिति म आ गयी हैं। मानसिक वातावरण के लिए उपयु क्त दोनो वर्गों की सामग्रियो का विवेचन अपेक्षित है। यद्यपि कवि के मानसिक वातावरण पर विवेचन करते समय जो आधारभूत सामग्री प्राप्त होती है वह उसकी रचना ही है, फिर भी समीक्षक को साधारण नही करना होता है जब वह रचनाओ के आधार पर ही रचनाकार के मानसिक तत्त्व की विवेचना करता है, सृजनात्मक आवेष्ठनो के मूल उत्स की मीमासा प्रस्तुत करता है। गोमुखी से चलकर गगा की धारा के सागर मिलन की कथा को समझना साधारण काय ही है किन्तु सागर से चलकर गगा के उदगम की प्राप्ति करना साधारण यात्रियो के लिए शक्य नहीं है। यदि कवि का परिवेश अत्याधुनिक होकर विविध हो तो यह कठिनाई और भी अधिक बढ जाती है। महादेवी की कविता इस अथ मे एक विराटता और वविध्य से युक्त तो ह ही, साथ ही आवरण से मडित भी है। फलत उन रचनाओ के आधार पर जो समीक्षक को उत्स को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना पडता है, वह दुर्बल ही लगता है। फिर भी सत्यता की सीमा और दायित्व की मर्यादा को समझते हुए यहाँ मैं उनकी कविता के मानसिक वातावरण का आकलन करना चाहूगा।

महादेवी का जीवन साधारण मनुष्य के राग विराग दु ख दद और भाव अभावो का जीवन है। एक अथ म महादेवी उन लोगो के बीच रही हैं जिन्होंने पूँजी के रूप म वेदना और आसू को प्राप्त किया है और दूसरो को जो दिया है वह गरल न होकर अमृत रहा है आँसू न होकर हँसी रही है—हँसी न कहकर यदि उसे अटटहास कहें तो ज्यादा उपयुक्त रहेगा। महादेवी के इस अटटहास में जो उन्मुक्तता है वही उनके असीम बधन की कडी है। उनके बाह्य जीवन की जो आद्रता है वही उनके जीवन की विषादमयी स्थितिया की परिचायिका है। उनके द्वारा खींची गई तूलिका की सुदशन रेखाओं और कविता में उपस्थित चित्रों मे अभिव्यक्ति का अभाव है वही उनके जीवन की अपूण आकांक्षाओ की मार्मिक विवृत्ति का निदशन है। 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक की महादेवी की काव्य-यात्रा सागर मिलन को जाती हुई गोमुखी से निकली हुई उस गगा की यात्रा है जो बीच मे ही विषम जीवन की सत्रस्तता में उलझ गई है। महादेवी का जीवन जिस करुणा की बोधता प्राप्त कराकर बीच मे ही उलझ गया है वही उनके वा यगत जीवन की विषमता का केन्द्र बिन्दु है। महादेवी की वयक्तिक आत्म-पीडा, घुटन, हाहाकार ही उनकी कविता में उच्छवास के रूप में

परिवर्तित हो गया है। महादेवी ने अपनी कविताओं की आत्मानात्मक जो स्थापनाएँ काव्य के विषय में दी हैं वे स्वयं उनकी कविता पर बहुत अंशों में सिद्ध होती हैं।[1] साधारणतया यह देखा जाता है कि मनुष्य की हीनता, अभाव और आत्म-असन्तोष की घुटन से छटपटाकर ही कविता का जन्म होता है। यदि विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य सर्जकों के व्यक्तिगत जीवन को आलोकित किया जाये तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि उनमें कहीं न कहीं अभाव अवश्य था जिसको भरने के लिए उन्होंने अपनी रचनाओं का सृजन किया है। निराशा या प्रारब्ध के वात्याचक्रों में उड़ता हुआ सूखे पत्ते-सा जीवन ही काव्य के जन्म का कारण है। महादेवी के जीवन की अपूर्णता और स्त्रियोचित जीवन की काव्य भावना ने उन्हें जहाँ ठोकर देकर वाणी से सोमिल बना दिया है वहाँ उनकी बौद्धिकता संस्कार और अधीत ज्ञान के समुच्चय ने उन्हें दार्शनिकता का आवरण दे दिया है। किन्तु महादेवी की कविताओं के पीछे जो उनका मानसिक वातावरण दिखाई पड़ता है उसका सम्बन्ध किसी अतीन्द्रिय जीवन की रहस्यमयता से न जोड़कर जीवन की उन रागात्मक मनोभावों की विफलता के साथ जोड़ा जाना चाहिए जो ऐसे काव्य के जन्म के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। भारतवर्ष जैसे देश में काव्य में वैद्यक विज्ञान ज्योतिष, तन्त्र और रहस्य का जहाँ विधान किया गया है यह बात भी अब सिद्ध हो चुकी है कि शुद्ध वर्णनिक धार्मिक कविताओं के बीच भी रहस्य की भावना का आरोपण किये बिना किसी को कवि नहीं माना जा सकता है। महादेवी की कविता पर रहस्यमयता का आरोप किया ही जाएगा। पर मेरा सदा से यह विनम्र निवेदन रहा है कि यदि महादेवी की कविताओं के पीछे के मनस्तत्त्व का ईमानदारी से विश्लेषण किया जाय तो यह सत्य प्रमाणित होगा कि महादेवी की कविता लौकिक ऐषणा की आपूर्ति की रचनाएँ हैं, जिसका सम्बन्ध जीवन की भौतिक समस्याओं से ही है। जो भाव छायावादोत्तर कवियों में बच्चन अंचल नरेन्द्र एवं दिनकर की कुछ रचनाओं में मिलता है, प्यार की कुछ वैसी ही तड़प असमर्थता के कुछ वैसे ही आँसू महादेवी में भी हैं। किन्तु महादेवी ने स्वयं अपनी कविताओं पर नारीयोचित मर्यादा के फलस्वरूप जो स्थापनाएँ लाद दी हैं उससे उनके काव्य का रस प्रमाणक होकर भी आश्वस्य नहीं हो पाया है। रहस्यवादी रचनाओं एवं छायावादी वैयक्तिक भावना से संपुष्ट रचनाओं में अंतर भी थोड़ा ही है। दोनों में औत्सुक्य, कौतूहल एवं अप्राप्य के प्रति शंका की भावना है,

---

१ कविता हमारे व्यष्टि सीमित जीवन को समष्टि व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही व्यापक सत्य को अपनी परिधि में बाँधती है। साहित्य के अन्य अंग भी ऐसा करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु उनमें सामंजस्य को खोज लेने के कारण ही कविता उन ललित कलाओं में उत्कृष्टतम स्थान पा सकती है जो गति की विभिन्नता, स्वरों की अनेकरूपता या रेखाओं की विषमता के सामंजस्य पर स्थित है। —(महादेवी आधुनिक कवि पृष्ठ ५)।

दोनों को प्रकटित करने की शब्दावली एक ही है फलतः यह भ्रम दूर तक फला है कि छायावाद की सम्पूर्ण रचना रहस्यवाद की रचना है। छायावाद के सभी समय कवियों के बीच रहस्य और छाया का कुछ इस प्रकार से सम्मिलन हुआ है कि दोनों को तिलतंडुल न्याय से अलग करना कठिन है। इस बीच निराला ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनमें जो है वह स्पष्टता के साथ आया है, कहीं छल नहीं है रूपान्तर नहीं है। किन्तु छायावादी कवियों में रहस्य और छाया के बीच गत्यावरोध पार्थक्य, अभाव को जन्म देने वालों में महादेवी अग्रणी रही हैं। इनकी कविताओं में वैयक्तिकता ने रहस्यमयी बनकर अपना कार्य किया है। वस्तुतः इस भावना के पीछे परम्परा की शृंखला में जकड़ी हुई नारी की वह वयक्तिक सीमा है जो उसे अस्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए बाध्य करती है। महादेवी की सम्पूर्ण कविता की पृष्ठभूमि उनकी नारीयोचित महत्त्वाकांक्षा की पराजित भावना का उच्छ्वास है जो करुणा विगलित स्वरों में 'प्रेम की पीर' की साधना बन गया है रहस्य और प्रेम भारतीय चिंतन के दो ध्रुव हैं जिनसे सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय का साहित्य परिचालित रहा है। भारतीय मत में प्रेम को 'रहस्य' का पर्याय भी माना गया है। फल यह हुआ है कि सम्पूर्ण कृष्णभक्ति और रामभक्ति का काव्य एक स्तर पर लौकिक काव्य की झाँकी प्रस्तुत करता रहा है पर दूसरी ओर आध्यात्मिकता का नारा भी देता दिखाई पड़ता है। रीति-कवियों में भी यही चातुरी मिलती है। महादेवी ने इसी परम्परा में अपनी कविताओं को स्थापित कर दिया है। वयक्तिक अभावों, मिलन, प्रेम, विरह, अभिसार, मान प्रहेला, विलोक, प्रकथ का उदाहरण महादेवी की कविता में बड़ी ही चातुरी से प्रकट किया गया है। यदि समीक्षक महादेवी की वैयक्तिकता के आधार पर इन रचनाओं की समीक्षा करना चाहे तो वह बड़ी स्पष्टता के साथ उस मानसिक वातावरण के घुमड़न की नीली वेदना की छायी हुई बदली का अंदाज कर सकता है जो आध्यात्मिक बदली के रूप में चित्रित की गई है। ऐसी स्थिति में 'मैं नीर भरी दुख की बदली' जैसे गीतों में पीड़ा की जो निर्द्वन्द्वता है एक आत्मबोध की तड़प है वह स्पष्ट दिखाई देती है। मात्र दृष्टि के परिवर्तन की अपेक्षा है, फिर तो—

विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

में कवयित्री की आत्मा स्पष्ट दिखाई पड़ जायेगी। इसमें मीरा की दार्शनिकता और कबीर के 'साधो, गगन घटा घहरानी' के निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप निर्धारण की अपेक्षा भी नहीं रहेगी। ऊपर की पंक्तियों की सहजता और अनुभूति की ईमानदारी ही उसकी महत्ता को स्थापित करने के लिए पर्याप्त है—उन्हें बिना किसी दार्शनिक आवरण के

भी महत्त्वपूर्ण माना जायेगा, इसमें आपत्ति नहीं है। एक दूसरे उदाहरण से मेरे मन्तव्य की पुष्टि की जा सकती है।

महादेवी का एक गीत है :—

कौन तुम मेरे हृदय म ?
कौन मेरी कसकता मे मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनो मे घुमड घिर भरता अपरिचित ?
स्वण स्वप्नों का चितेरा, नींद के सूने निलय मे।
कौन तुम मेरे हृदय मे ?

इस सम्पूर्ण गीत मे जो परिचित को जानकर भी नहीं जानने का उपक्रम है, वह मात्र चेष्टा है। इसे मधुरता की पृष्ठभूमि मे नोंकझोंक वक्रता, भंगिमा का चातुर्य निवेदित किया जाता है। सम्पूर्ण कविता का मानसिक वातावरण वही है जो ऐसी प्रेम सम्बन्धी कविताओं का होना चाहिए—किन्तु इस पर रहस्य का जो आरोप किया जाता है उसका एकमात्र कारण प्रश्नवाचक वह चिह्न है जो सवत्र दिखाई देता है। महादेवी की अधिकांश कविताओं मे उनका प्रश्नवाचक चिह्न (?) या डॅश (—) उनकी भावना की संवेदना को नष्ट करके कौतुक रचन मे समर्थ होता है। महादेवी ने चातुर्य से अपने वैयक्तिक रागात्मक भावों पर दिव्यता का आरोप कर दिया है। ऐसी कविताओं की व्याख्या करते समय उसके अर्थ की सहजता और सृजनात्मक क्षणों के पीछे के वातावरण को ध्यान में रखना चाहिये। ऐसी स्थिति में मानसिक वातावरण के रूप में महादेवी की इन कविताओं के लिए उनके जीवन का नैराश्य ही विशेष सहायक हुआ है, करुणा तो बाहर की थोपी हुई चीज है। भले ही कवयित्री इसे स्वीकार करने में असमर्थ हो।[1]

किसी कवि की कविता के मानसिक वातावरण को विश्लेषित करने के लिए एक बात की अपेक्षा और होती है वह है कविता के सृजन के पीछे की मनोविकास प्रक्रिया। वस्तुतः कवि जीवन के जिस आवेष्ठन से ध्वनि प्राप्त करता है उसे वह उसी क्षण उसी प्रकार व्यक्त करना नहीं चाहता। यदि वह ऐसा चाहे तब भी उसे उसी रूप में व्यक्त कर कवित्व की सार्थकता को प्राप्त नहीं कर पायेगा। कालान्तर में जब यही ध्वनि मानसिक स्तर में जाकर गूंज सी रह जाती है तो एक दिन अप्रत्याशित रूप में वह जानता है कि उसकी इच्छित भावना हा उपस्थित हो गई है। काव्य सृजन की प्रक्रिया के बीच मानसिक रूप से यह संयोजन की वृत्ति रहती ही है जो विगत

१ जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण में निराशा का कुहरा है या व्यथा की आर्द्रता यह दूसरे बता सकेंगे, परन्तु हृदय में तो मैं ध्यान निराशा का कोई स्पर्श नहीं पाती, केवल एक गम्भीर करुणा की छाया ही देखती हूं। —महादेवी आधुनिक कवि पृष्ठ ३२

के चित्रो को वतमान में अन्विति प्रदान करने का प्रयत्न करती है। महादेवी की कविता में जा निराशा, कुहरा और जीवन की बीती बदली की छटा दिखाई पडती है उसका कारण वाह्य रूप में जहाँ जीवन का असन्तोष और अपूण आकाक्षाओ का विलयन है वहा आतरिक रूप में जीवन की समस्त स्थूल घटनाओ ने सूक्ष्म रूप धारण कर निराशा का स्वरूप प्राप्त कर लिया है। करुणा का आवेग ही बाह्य निराशा के घने अन्धकार के रूप में परिणत हो गया है, जिसे कवयित्री ने दशन का आवरण देकर जटिल बनाने का अथक प्रयत्न किया है। महादेवी ने अपने मानसिक वातावरण को ईमानदारी के साथ रखा ता है पर उसको शब्दजाल के बीच इस प्रकार उलझा दिया है कि आवरण ही ज्यादा महत्त्वपूण बन गया है। महादेवी की इन पक्तियो मे स्वय इस सत्य की स्वीकारोक्ति मिलती है —

छाह को उसकी सजनि, नव आवरण अपना बनाकर।
धूलि मे निज अश्रु बोने मे, प्रहर सूने बिताकर।
प्रात मे हस छिप गई, ले छलकते दृग यामिनी मे।

यहाँ छाँह को आवरण बनाकर स्वत्व को छिपाने का जो सकेत मिलता है, यही स्थिति महादेवी के सम्पूण काव्य की ह। जो बाह्य रूप स दर्शित हुआ है वह आतरिक स्थिति का आवरण स्वरूप है—इसके भीतर जो तत्त्व छिपा हुआ है वही वास्तविक है।

स्त्रियोचित स्वभाव की दष्टि से भी महादेवी की कविता के मानसिक वातावरण की समीक्षा की जाती है। महादवो की कविता उस प्रकार की नारी की कविता है जिसके पास वियोग और आसू ही धन हो गया है। वह विप्रलम्भ से युक्त है उसम पीडा एव उच्छ्वास की सघनता है पर विनय का अभाव है। महादेवी की कविताओं मे मान' का चित्र सुन्दर रूप मे आया है पर यह मान पीडा से युक्त नही है वरन कही-कही अभिमान की कोटि म आ गया है। मनोविज्ञान की भाषा मे इसे Supper ego का रूप दिया जा सकता है जिसके कारण महादेवी स्वय को निवदित करना नहीं चाहती। मान ने उनके जीवन को झुकने नही दिया है। वे स्पष्ट रूप म कहती भी हैं—

मिलन-मन्दिर मे उठा हूँ,
जो सुमुख से सजल गुण्ठन।
मैं मिटूँ प्रिय मे मिटा ज्यो,
तप्त सिकता मे सलिल कण।
सजनि, मधुर निजत्व दे,
कसे मिलू अभिमानिनो मै॥

ऊपर की पक्तियो म जो 'निजत्व' है वही कवयित्री की मानसिक स्थिति का मेरुदण्ड है। महादवी इसी 'निजत्व' को बचाने के लिए अपने जीवन क आवरण

को हराना नहीं चाहती । गीति जीवन म प्रेम की जिस तटस्थ स्थिति का चित्र खिचा गया है – जिसम साक्षी और साक्षेप दोनों की स्थिति मानी गई है—कुछ वैसी ही भावना महादेवी के प्रेम म भी है । महादेवी की कविता म प्रेम की वह अनित्यता नहीं है जो चण्डीदास सूरदास विद्यापति जयदेव म मिलती है जिसम स्वत्व के एकाकार हो जाने की कल्पना है । महादेवी की भावना प्रेमी के प्रेम की अनित्यता की जगह विरह को स्वीकारने म भी अपनी सार्थकता प्राप्त करती है । वस्तुत यही महादेवी की मानसिक स्थिति भी है

> चिर ध्येय यही जलने का
> ठंडी विभूति बन जाना ।
> है पीडा की सीमा यह
> दुख का चिर सुख हो जाना ।

इस स्थिति म महादेवी 'दद का हद से गुजरना है दवा हो जाना' की उक्ति को चरितार्थ करती दिखाई पडती हैं ।

महादेवी की प्रत्येक ऐसी कविता जो दशन और अध्यात्म की स्थिति की रचना लगती है एसे ही मानसिक वातावरण की पृष्ठभूमि म जन्म लेती है कहीं कहीं तो सम्पूर्ण कविता म वयक्तिक पीडा की तडप मिलती है, भारतीय परित्यक्ता नारी के वियोग का ज्वाला धधकती दिखाई देती है जिसमे अंतिम क्षणो म उसी निष्ठुर कठोर प्रियतम के दशन की कामना है जिसने जीवन भर जलाया है । यथा—

> दीप-सी युग युग जलूँ, पर वह सुभग इतना बता दे ।
> फूँक से उसकी बुझूँ, तब क्षार ही मेरा पता दे ।

—कहकर महादेवी भारतीय सुहागिन नारी की आकांक्षा ही व्यक्त करती हैं । फूँक से उसकी बुझूँ' म मरणोपरा त सुहागिन नारी की पति द्वारा अंतिम संस्कार सम्पन्न किये जाने की भावना का निदशन उपस्थित किया गया है । महादेवी के द्वारा भारतीय नारी के शील और मर्यादा का यह अप्रतिम उदाहरण है । पर इसी कविता के अंत म ऊपर के सम्पूर्ण चित्र को अभिव्यक्ति को खडित कर दिव्यता का जो बोध कराया गया है वही मानसिक वातावरण की दृष्टि से महादेवी के मन की वह दुबलता है जो रंगे हाथों वयक्तिक प्रेम की गली मे पकड न जाये इसलिए अध्यात्म और दशन का वातावरण लेकर उपस्थित हो गयी है

> सजल सीमित पुतलियों पर, चित्र अमिट असीम-सा वह
> चाह एक अनन्त बसती—प्राण किन्तु ससीम सा यह,

या

> शून्य मेरा जन्म था, अवसान है मुझको सवेरा
> प्राण आकुल के लिए संगी मिला केवल अँधेरा ।

या

नाश भी हूँ, मैं अनन्त विकास का क्रम भी
त्याग का दिन भी, चरम आसक्ति का तम भी
तार भी, आघात भी, झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी।

—जैसी पंक्तियों में दर्शन का जो रंग दिखाई पड़ता है वह सब छलावा मात्र है—मृगतृष्णा की ऐसी रेखा है जिसकी ओर महादेवी जानबूझ कर आगे बढ़ना चाहती हैं। मानसिक वातावरण के रूप में यह 'मधुर विस्मृति' की स्थिति ही है—जिसे महादेवी दिव्यता (Inflation) के रूप में उपस्थित करना चाहती हैं।

महादेवी की कविताओं की परख करते हुए उपर्युक्त प्रणाली और दृष्टि बिन्दुओं को ध्यान में रखकर अपनी कसौटी निर्मित करनी होगी—तभी महादेवी की कविताओं के पीछे की मानसिक स्थिति का सम्यक चित्रण सम्भव है।

आवेष्ठन से प्राप्त वेदना को महादेवी ने आद्र बनाकर जो काव्य का शिल्प उपस्थित किया है उसका महत्व सम्पूर्ण हिन्दी कविता के बीच विशिष्ट है। वैयक्तिक प्रेम को इतने ऊँचे धरातल पर उपस्थित करने वाला दूसरा कोई कवि हिन्दी को नहीं मिला, इसमें सन्देह नहीं। महादेवी की कविता का मूल्यांकन प्रेम की कसौटी पर ही होना चाहिए यह विनम्र निवेदन है। शायद तभी महादेवी की कविताओं के साथ न्याय भी होगा जो अभी तक समुचित रूप में नहीं हो पाया है।

———

डॉ० मनोहरलाल गौड़

६

महादेवी के काव्य में वेदना का वैभव

रवि बाबू ने Personality नामक व्याख्यान संग्रह में एक स्थान पर लिखा है कि हमारी सबसे बड़ी आशा भी यह है कि संसार में दुःख का अस्तित्व है। बच्चे को माता में पूर्ण विश्वास रहता है, इसीलिए तो वह चिल्लाता है। यदि ऐसा न हो तो उसकी वाणी मूक हो जायेगी। इसी प्रकार मनुष्य की अपूर्णता का अर्थ ही यह है कि पूर्णता में उसकी श्रद्धा है। इस दुःख से प्रेरित होकर ही तो मनुष्य उपासना द्वारा अपने ही हृदय में प्रच्छन्न असीम परमात्मा के द्वार खटखटाता है जिससे उसकी गहन अन्तर्वृत्ति का उद्घाटन होता है और बिना तर्क वितर्क के वह आदर्श की सचाई में विश्वास करने लगता है।

बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्यों[1] में से दुःख को प्रथम आर्य सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार सांख्य दर्शन के चतुर्व्यूहात्मक मोक्ष शास्त्र[2] में भी हेय अर्थात् दुःख पहला व्यूह माना गया है।

एक दृष्टि से देखा जाय तो दुःख विभु का वरदान है, क्योंकि दुःख में चित्त की कठोरता दूर होती है अहं विगलित होता है, हृदय में करुणा जागृत होती है पाप से डर पैदा होता है और मनुष्य ईश्वरोन्मुख होने लगता है। कविकुलगुरु कालिदास के शब्दों में भली भाँति तपाये जाने पर लोहा भी मृदुता धारण कर लेता है, प्राणधारियों का तो कहना ही क्या है। —अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु। रहस्यवादी निर्गुण सन्तों तथा कवियों ने भी दुःख की महिमा का गान किया है। कबीर कहते हैं कि जब मैं सुख की खोज कर रहा था, तभी दुःख से मेरा साक्षात्कार हो गया। मैंने सुख से विदा लेते हुए कहा कि हे सुख! अब तुम अपने घर जाओ, अब तो हम जानें और हमारा दुःख!—

कबीर सुख को जाइ था, आगे आया दुक्ख।
जाहि सुक्ख घरि आपणें, हम जाणौं अरु दुक्ख॥

कबीर की दृष्टि में 'सुखिया संसार' तो खाने और सोने में मस्त रहता है, कबीर जैसा

१ चार आर्य सत्य—दुःख, दुःख हेतु, दुःख निरोध, दुःख निरोध गामिनी प्रतिपत्ति (मार्ग)।
२ सांख्य के चतुर्व्यूह —त्रिविध दुःख, हान (दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति, हेय हेतु (अविद्या), हानोपाय (तत्त्व ज्ञान)।

'दुखिया' ही जाग्रत रहता है और दुःख सहता है। सुख मे परमात्मा के दर्शन नही होते दुखी व्यक्ति ही अपने आँसुओ द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने म समर्थ होता है।[1]

जायसी भी दिव्य लोक की प्राप्ति म दुःख की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं—
"एहि रे पथ सो पहुचे, सहै जो दुःख वियोग।"

किन्तु मीरा की निम्नलिखित उक्ति का हम परमार्थता अथवा गम्भीरता के रूप म ग्रहण नही कर सकते।

"जो मैं ऐसा जानती, प्रीत करे दुःख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत करे ना कोय॥"

कोई भी सच्चा प्रेमी दुःख क भय स प्रेम करना नही छोडता।[2] कबीर के शब्दो मे वह भली भाँति जानता है कि प्रेम का घर खाला का घर' नहीं होता, इसम तो वही प्रवेश कर सकता है जो अपना सिर काट कर पृथ्वी पर रख देता है,[3] इस सम्बन्ध म टेनीसन की यह उक्ति सार्थक प्रतीत होती है जहाँ कहा गया है

It is better to have loved and los.
Than never to have loved at all

वस्तुत जैसा जायसी कहते हैं, दुःख म जो प्रेम का माधुर्य है उसी के कारण प्रेमी को सुख और विश्राम की प्राप्ति होती है—

"दुःख भीतर जो प्रेम मधु जामा।
सुख पाइअ गम होई विसरामा॥"

हिन्दी के छायावादी कवि भी दुःख के गौरव का गान करने मे किसी से पीछे नही रहे हैं।[4] श्री सुमित्रानन्दन पन्त दुःख के बिना सुख को निस्सार समझते हैं, बिना आँसू के जीवन उनकी दृष्टि मे भार है दुनिया मे दीनता और दुर्बलता के कारण ही क्षमा, दया और प्यार दिखलायी पडते हैं—

बिना दुःख के सुख है निःसार
बिना आसू के जीवन भार,
दीन दुर्बल है रे ससार
इसी से क्षमा, दया औ' प्यार।

---

१ सुखिया सब ससार है, खाये अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै॥

२ हँसि हँसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोई।
जो हाँसे ही हरि मिलै तो नहीं दुहागनि कोइ॥

३ कबिरा यहि घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतार भुँइ धरै, सो पैठे यहि माहिं॥

४ दुःख इस मानव आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन।
दुख के तम को खा खाकर भरती प्रकाश से वह मन॥ —(पन्त)

जो व्यक्ति सदा सुखी रहता है, वह दूसरों के दुखों की ओर कभी ध्यान नहीं देता। 'आँसू' के कवि के शब्दों में—

> वे सुख जो अपने सुख से,
> जिनको है सुप्त व्यथाएँ।
> अवकाश भला है उनको,
> सुनने को करुण कथाएँ?

प्रसिद्ध है कि कुन्ती ने जब वर माँगने के लिए कहा गया तो उसने भगवान् से दुख का ही वर माँगा था क्योंकि कबीर के शब्दों में दुख के समय ही मनुष्य भगवान् को याद करता है—

> सुख के माथे सिल पड़ो, नाम हृदय से जाय।
> बलिहारी वा दुख की, पल पल नाम रटाय।

यही कारण है कि साधक तथा भक्त दुःख को अभिशाप न समझ कर भगवान् का वरदान समझते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में चार प्रकार के भक्तों का उल्लेख हुआ है जिसमें 'आर्त' की गणना सर्वप्रथम की गई है—

> चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
> आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी भगवत्स्मरण में भले ही कुछ देर कर दें, किन्तु आर्त के लिए विलम्ब असह्य हो उठता है। जब गजेन्द्र के प्राण संकट में पड़ गए और ग्राह से अपने छुटकारे का कोई उपाय उसे न सूझा तो उसने भगवान की शरण लेते हुए कहा—

"भीत प्रपन्न परिपाति यन्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरण तमीमहि।"

अर्थात् (कालरूपी सर्प से) भयभीत तथा शरणागत की जो रक्षा करता है एवं जिसके भय से काल चारों ओर से भागा करता है, मैं उसी परमेश्वर की शरण लेता हूँ।

गजेन्द्र की पुकार पर जब भगवान् उसके स्थान पर पहुँचे तो गजेन्द्र ने कमल सहित सूँड को ऊपर उठाकर आर्त स्वर में पुकार कर कहा—

> "उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाहकृच्छ्रा,
> नारायणा खिलगुरो भगवन् नमस्ते।"

हे नारायण हे सकल जगत के गुरु भगवन्! आपको मेरा नमस्कार है। जब भगवान् ने उस पीड़ित गजराज को देखकर यह समझा कि गरुड़ यथासमय उस तक

नहीं पहुँच सकेगा तो गरुड से उतर कर वे तत्काल ही उसके पास पहुँचे और उसका उद्धार किया।

श्रीमद्भगवद्गीता जैसे विश्वविश्रुत ग्रन्थ का प्रारम्भ जो अर्जुन के विषाद से होता है वह सर्वथा उचित है, क्योंकि विषाद अथवा दुःख ही ऐसी तीव्रानुभूति है जिसके द्वारा आत्मजाग्रति तथा आत्मोपलब्धि होती है। गीता के प्रथम अध्याय को केवल अर्जुन विषाद न कहकर 'विषाद योग' की संज्ञा दी गई है। 'योग' शब्द के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए डा० राधाकृष्णन लिखते हैं 'अध्याय का अन्त निराशा और दुःख में होता है इसे भी योग कहा गया है, क्योंकि आत्मा का यह अन्धकार भी आध्यात्मिक जीवन की ओर प्रगति के लिए एक आवश्यक सोपान है। हममें से अधिकांश लोग प्रश्नों का सामना किये बिना ही सारा जीवन बिता देते हैं। कभी विरले संकट के क्षणों में ही जब हमारी महत्त्वाकांक्षाएँ ढेर हुई हमारे पैरों के पास पड़ी होती हैं जब हमें पश्चात्ताप तथा व्यथा के साथ अनुभव होता है कि हमने अपने जीवन की क्या दुर्दशा कर डाली है हम चिल्ला उठते हैं 'हम यहाँ किसलिए हैं ? और हमें यहाँ से कहाँ जाना है ? द्रौपदी चिल्ला उठती है न पति मेरे हैं न पुत्र, न सम्बन्धी न भाई न पिता मेरे हैं और हे कृष्ण तुम भी मेरे नहीं हो।'—

नव मे मपत संति, न पुत्रा न च बान्धवा।
न भ्रातरो न च पिता, नैव त्वं मधुसूदन॥

अर्जुन एक महान आत्मिक तनाव में से गुजर रहा है। जब वह अपने आपको सामाजिक दायित्वों से पृथक कर लेता है और पूछता है कि उसे समाज द्वारा उससे प्रत्याशित कर्त्तव्यों को क्यों पूरा करना चाहिए तो वह अपने सामाजिकीकृत आत्मा को पीछे कर देता है और अपने आपको व्यष्टि एकाकी और सबसे पृथक रूप में पूरी तरह अनुभव करता है। वह संसार के सम्मुख भयावनी अवस्था में पटक दिये गए एक अजनबी व्यक्ति के समान खड़ा होता है। यह नयी स्वतन्त्रता चिन्ता एकाकीपन, सन्देह और असुरक्षा की गम्भीर अनुभूति उत्पन्न कर देती है। यदि उसे सफलतापूर्वक काम करना हो तो उसे इन अनुभूतियों पर विजय पानी ही होगी।''[1]

वर्तमान हिन्दी कवियों में यदि दुःख को सर्वाधिक गौरव प्रदान किया है तो महादेवी वर्मा ने। दुःख को जीवन के काव्य के रूप में ग्रहण करती हुई वे लिखती हैं —'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख चाहे हमें मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी नहीं पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक उर्वर बनाए

१ श्री विराज द्वारा अनूदित।

बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुख को सब बाँट कर। विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार कि जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है कवि का मोक्ष है।"[1]

दुख वस्तुतः एक बड़ी तीव्र अनुभूति है, जो सचि बान्धव शब्दों में मनुष्य को आत्मोपलब्धि अथवा आत्म-सम्प्राप्ति की ओर ले जाती है। दुख यदि अप्रिय है तो साहित्य में उसे उपभोग्य क्यों ठहराया गया है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए गुरुदेव ने लिखा है कि दुख अप्रिय नहीं है इसका प्रमाण स्वयं साहित्य है। जो वस्तु हमारे मन पर जबदस्त छाप छोड़ जाती है, उसका प्रभाव भी बड़ा प्रबल होता है। जिस वस्तु का हम विशद रूप से अनुभव करते हैं, उसके द्वारा हम अपने आपको ही प्राप्त करते हैं। दुख एक ऐसी उत्कृष्ट अनुभूति है जो हमें सदा सचेत बनाये रखती है। इसलिए महादेवी के काव्य में यदि दुख का प्राधान्य हो तो कोई *आश्चर्य की बात नहीं। और फिर उन पर तो भगवान् बुद्ध के दुखवाद का बड़ा* प्रभाव है, जिसे वे इन शब्दों में स्वीकार कर चुकी हैं—'बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।'[2] किन्तु महादेवी का यह कथन कि जीवन में मुझे अतिशय प्यार-दुलार मिला जिसकी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप ही मेरा काव्य वेदनाबहुल हो गया, हिन्दी के अधिकांश आलोचकों को ग्राह्य नहीं हुआ। हिन्दी के सतर्क तथा समर्थ आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को भी महादेवी जी की वेदना के सम्बन्ध में यही कहना पड़ा "वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी-ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।"

कवयित्री की रचनाओं में वेदना और दुख के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं। 'विकसते मुर्झाने को फूल, उदित होता छिपने को चन्द' आदि द्वारा महादेवी ने जीवन की नश्वरता के चित्र भी खींचे हैं। निम्नलिखित मार्मिक पंक्तियाँ उदाहरण के लिए लीजिए—

मैं नीर भरी दुख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली।

किन्तु नश्वरता के चित्रण से ही उनके काव्य को निराशामूलक समझ लेने की

१ रश्मि' की भूमिका
२ 'रश्मि' की भूमिका

भ्राति नही होनी चाहिए जसा कि नीचे के पद्य से स्पष्ट है—

चिन्ता क्या है, हे निमम ! बुझ जाए दीपक मेरा ।
हो जायेगा तेरा ही, पीडा का राज्य अँधेरा !

स्वय कवयित्री क शब्दो मे 'जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण मे निराशा का कुहार है या व्यथा की आद्र ता, यह दूसरे ही बता सकेंगे, परन्तु हृदय मे आज निराशा का कोई स्पश नहीं पाती, केवल एक गम्भीर करुणा की छाया ही देखती हूँ ।" आस्था का धनी कोई भी रहस्यवादी कवि निराश नही होता । उसके अश्रुओ म निराशा का स्वर नहीं, आश्वासन का स्वर गूँजता है ।

भगवान जब किसी के हृदय का दिव्य ज्योति से आलोकित करना चाहता है, तो पहले उसे तमसाच्छन्न कर देता है । प्राकृतिक जगत म भी हम देखते हैं कि दुख की पिछली रजनी के बीच सुख का नवल प्रभात विकसित होना है पौ फटने से पहले नभ म घना अधकार छाया रहता है । महादेवी के करुणामय को भी तम के परदा म आना अच्छा लगता है—

करुणामय को भाता है तम के पर्दों मे आना,
हे नभ की दीपावलियो ! तुम पल भर को बुझ जाना ।

किन्तु कभी-कभी साधक को यह अनुभूति होती है कि उसके चारा ओर घोर तम छाया हुआ है, क्षितिज पर घनघोर घटाएँ घिर आयी हैं, प्रतिकूल वेग से ऐसी हवा चलने लगी है जिसमे पवतमूल ही हिले जाते हैं, सागर बारम्बार गरजने लगा है । ऐसी स्थिति मे, जब साहस का भी अन्त होने लगा है, उस पार कौन पहुँचा देगा ? ऐसे समय कोई कान मे आकर कह जाता है कि डूबकर ही पार हो जाओगे, विसजन ही कर्णाधार है और वही उस पार पहुँचा देगा । वस्तुत साधक जब तक अह का विसजन नही करता तब तक उसे दिव्य लोक की झाँकी नही दिखायी पडती । खुदी का 'विसजन किये बिना खुदा प्राप्त नही हो सकता । अह के विसजन की यह प्रेरणा तभी स्फुरित होती है जब साधक दुख के पारावार मे डूबने लगता है, जब उसका वह नक्षत्र प्रकाश भी बझने लगता है जिसम उसकी आशा चमकती है । आध्यात्मिक विकास के लिए दुख निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण सोपान है ।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो जो अपने साध्य पर पहुच चुका हो, जहा जीवन की विषम समस्याओ के साथ सघष करने के लिए कोई प्रेरणा अवशिष्ट न रह गयी हो, वहाँ जीवन बहुत ही नीरस हो जायेगा । यदि हम ज्ञान के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुके हो, तो फिर हम न किसी प्रकार के विचार विमश म लगेंगे, न किसी प्रकार के

अन्वेषण अथवा अनुसंधान म ही प्रवृत्त होंगे, विज्ञान का अन्त हो जायेगा, समस्त सृष्टि ही एक कहानी की आवृत्तिमात्र के अतिरिक्त और कुछ न रहेगी । धर्म और कला, जिनके प्रयोगात्मक अनुभवों से हम आनन्द की उपलब्धि होती है तब अर्थहीन व्यापार मात्र रह जायेंगे । प्रयत्न और प्रतीक्षा म जितना आनन्द है उतना उस वस्तु के मिल जाने पर नहीं । सम्भवत इसीलिए महादेवी जी मिलन की अपेक्षा विरह को अधिक महत्व देती हैं—

मिलन का मत नाम ले, मैं विरह मे चिर हूँ ।
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ ।

जीवन मे यदि विरह की ज्वाला बुझ गयी तो खाक के सिवाय और रह ही क्या जायेगा ?

सूर्यातप से तप-तप कर धरती शस्य श्यामल बनती है, आग मे जलने पर ही धूप म स गन्ध फूटती है, अभितप्त होने पर लोहा भी मृदुता धारण कर लेता है, कच्चा घट ललनाओ का शिरोधार्य नहीं बनता आग म पकाये जाने पर ही वह उपयोगी सिद्ध होता है, भस्म होने पर ही काष्ठ विभूति के रूप म मस्तक पर चढाया जाता है सिर काटने पर ही दीपरूप वर्तिका का प्रकाश वृद्धि को प्राप्त होता है, बडवानल मे जलने पर ही समुद्र अपनी मर्यादा की रक्षा कर पाता है दुख की ज्वाला म गलने पर ही मानव मन की निष्ठुरता दूर हो पाती है । इसीलिए महादेवी भी अपने जीवन दीपक को मधुर मधुर जलने के लिए कह रही हैं—

मधुर मधुर मेरे दीपक जल ।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल ।
प्रियतम का पथ आलोकित कर ।
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु मन,
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल ।

आसमान मे तारो के रूप मे असख्य स्नेहहीन दीपक जलते रहते हैं, बादल विद्युत से घिरा रहता है जलमय सागर का उर जलता रहता है तथा वसुधा के जड अन्तर मे भी तापो की हलचल बन्दी रहती है । वेदना के महत्व और उसकी व्यापकता का उद्घोष चराचर सृष्टि में सर्वत्र सुनायी पडता है । जिस लोक में वेदना नहीं, जिसमें अवसाद नहीं जिसमें ज्वाला नहीं जिसमें मिटने का स्वाद नहीं करुणा के उपहार के रूप में महादेवी जी उस अमरो के लोक को नहीं चाहती । उस लोक की अपेक्षा उन्हें यह मर्त्यलोक ही पसन्द है—

ऐसा तेरा लोक, वेदना नहीं, नहीं जिसमे अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं जिसने जाना मिटने का स्वाद ।
क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव, अरे, यह मेरा मिटने का अधिकार ।

रवि बाबू की एक कविता है, स्वग हयत विग' जिसम किसी मनुष्य क अनेक वर्षों तक स्वग मे रहने की कथा कही गइ है। पुण्य क्षीण होने पर जब वह व्यक्ति स्वग से मत्यलोक म जाने लगा तो किसी देवता ने उसकी विदाई के अवसर पर आसू नहीं बहाये क्योकि दवताओ की आँखो म कभी आँसू नही आते। विदा होते समय उसने कहा आज जब मैं स्वग से विदा हो रहा हूँ, किसी की आँखो मे आँसू नही देखता। हे पत्थर क देवताओ ! यह तुम्हारा स्वगलोक तुम्ह ही मुबारक हो ! जब मैं अपने मत्यलोक मे पहुँचूँगा और जब वात्सल्यम यी जननी, स्नहमयी बहिन, अभिन्न हृदय मित्र तथा हितषी बन्धु बान्धव सजल नत्रो से बाहु पसार कर मुझसे मिलेंगे, तो उनकी आद्रता मुझ भाव विह्वल किये बिना नही रहेगी। तुम्हारे इस स्वग से मेरा मत्यलोक हजार बार अच्छा है जहाँ न केवल हास है, बल्कि हास के साथ-साथ अश्रु भी है, जहां न केवल हष हुलास है, बल्कि आह्लाद के साथ साथ विषाद भी है।

इसी आशय की एक कविता अंग्रेजी के महाकवि ब्राउनिंग की भी है। सच कहा जाये तो वेदना और विषाद मे बडी शक्ति पायी जाती है। मनुष्य के बीच म जो खाई पड जाती है उसे पाट देने का पुनीत काय दुख द्वारा ही सम्पन्न होता है सुख तो इस प्रकार की खाई को और भी गहरा कर देता है। इस सम्बन्ध मे यीटस (yeats) की उक्ति ध्यातव्य है—'Tragedy must always be a drowning and breaking of the dykes that separate man from man and it is upon these dykes comedy keeps house"

साधना का दीपक जल जल कर जितना क्षीण होता रहता है आराध्य उतना ही निकट आता जाता है—

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय

वेदना के कारण मनुष्य यह इच्छा करने लगता है कि मुझे भल ही दुख मिलता रहे किन्तु ससार सुखी रहे। जगत को सुखी बनाने के लिए वह सहष आत्म बलिदान करता रहता है। महादेवी जी अपने आराध्यदेव को सम्बोधित करती हुई कहती हैं—

मेरे हसते अधर नहीं, जग की आँसू-लड़ियाँ देखो।
मेरे गाले पलक छुओ मत, मुर्झाई कलियाँ देखो।

बादल मिटता मिटता इ द्रधनुष के रूप म हँस देता है, दिन ढलता ढलता विश्व को राग से रंजित कर जाता है, झरता झरता पुष्प संसार को सुरभिमय कर जाता है बुझता बुझता लघु दीपक तिमिर म आलोक भर जाता है लघु बीज अपने को गलाकर असख्य बीजो को ज म देता है, पुराना पत्ता अपने को गिराकर नए पत्तो को विकसित करता है।

महादेवी की वेदना करुणा और आत्मदान से तरंगायित है। जसा पहले कहा जा चुका है उनकी वदना के मूल म निराशा नहीं, कि तु वह करुणा है जो दूसरो के शूलो को फूलो के रूप म परिवर्तित कर देती है जो दूसरा के सन्ताप को शीतल च दन का रूप देने के लिए आकुल-व्याकुल है। इस प्रकार की करुणा के आदर्श भगवान बुद्ध हैं जो वेसुध मानव को जगाने के लिए आज भी प्रेरणा का काम देते हैं। महादेवी के श दो म—

जाग बेसुध जाग।
अश्रु कण से उर सजाया त्याग हीरक हार
भीख दुख की मागते फिर जो गया प्रतिद्वार,
शूल जिसने फूल छू च दन किया सताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पदचाप,
करुणा के दुलारे जाग।

वह वदना ध य है जिसके कारण मनुष्य करुणा से द्रवित होकर आत्म बलिदान द्वारा दूसरो को सुखी देखना चाहता है वह वदना ध य है जिसके कारण वह संसृति के क्रन्दन को अपन जजर जीवन म भर लेना चाहता है[1] वह वदना ध य है जिसके कारण वह सौ सौ लघुतम ब धना म मुक्ति को बाध लेना चाहता है[2] जिसके कारण वह यह वरदान मागन लगता है कि सौ सौ ब धनो की कामना लेकर मुक्ति का आगमन हो[3] और निश्चय ही ध य है वह वदना की पराकाष्ठा जिसम साधक पीडा म ही परमेश्वर को ढूँढने लगता है और परमेश्वर मे भी पीडा ढूढने की अभिलाषा रखता है।[4]

—

१ भरती म ससृति का क्रन्दन हँस जजर जीवन अपने में।
२ प्रिय म लती बाध मुक्ति सौ सौ लघुतम ब धन अपने में।
३ आन वर दो मुक्ति आवे ब धनों की कामना ले।
४ तुमको पीड़ा में ढूढा, तुममें ढूँढूगी पीडा।

डॉ० रामप्रसाद मिश्र

७

महादेवी का विरह-वर्णन

मीरां के साथ-साथ हिन्दी-साहित्य की सवश्रेष्ठ कवयित्री महादेवी की प्रतिभा ने अपनी सहजात सजलता तथा मधुर वेदना से हिन्दी-काव्य के शत-शत श्रृंगार किए हैं। हरिऔध रत्नाकर, मैथिलीशरण, प्रसाद, निराला और पन्त के बाद आधुनिक काल के स्रष्टाओं मे उनका अमर स्थान बन चुका है। हिन्दी ही नही भारत की आधुनिक कवयित्रियों मे उनका स्थान अन्यतम है। तोरुदत्त की प्रतिभा असमय काल-कवलित हो गई, सरोजिनी नायडू की प्रतिभा पर राजनीति का प्रभाव पडता रहा, एक सीमा तक यही बात सुभद्राकुमारी चौहान के लिए भी कही जा सकती है अमृता प्रीतम की अनुभूति को पाश्चात्य साहित्य ने आवश्यकता से अधिक आक्रान्त कर दिया है। जो एकरस प्रवाह, तन्मयता, उदात्तता मौलिकता तथा तीव्रानुभूति महादेवी मे है वह तोरुदत्त, सरोजिनी, सुभद्राकुमारी तथा अमृता म नही है।

मीरां और महादेवी की तुलना भी प्राय होती रहती है। यह तुलना अनुचित नहीं कही जा सकती। दोनो कवयित्रियों मे अनेक समताएँ हैं। पर अनुभूति की तीव्र तम सत्यता—जो श्रेष्ठ काव्य की कदाचित सबस बडी कसौटी है—की दृष्टि से मीरां का स्थान महादेवी से श्रेष्ठ मानना ही पडता है। महादेवी की कला और चिन्तना मीरां मे नही है, पर कला और चिन्तना काव्य म अनुभूति के पश्चात् ही अपना स्थान रखती हैं। मीरां की वाणी का जो पावन, कल्याणकारी तथा व्यापक प्रभाव इस राष्ट्र की कोटि कोटि जनता पर शताब्दियों से पडता आ रहा है तथा जिसमे सतत् वृद्धि होती चली आ रही है, वह उन्हें हिन्दी ही नही, ससार की सबस अधिक लोकप्रिय कवयित्री बना चुका है। महादेवी केवल कवयित्री है, मीरां कवयित्री तथा महात्मा दोनों। हिन्दी के एक विख्यात आलोचक ने लिखा है कि महादेवी की मीरा से तुलना करना उन्हें पाँच सौ वर्ष पीछे ले जाना है। यह कथन महत्वपूण लगता है, पर है अधूरा। इसे पूर्ण इन शब्दों मे किया जा सकता है, "मीरां की महादेवी से तुलना करना उस महान मध्यकालीन नारी प्रतिभा को पाँच सो वर्ष आगे खीचने का प्रयास करना है।' पूर्ण हो जाने पर भी यह कथन तलस्पर्शी नही है। दोनो कवयित्रियों मे बहुत-कुछ तुलनीय है तथा दोनो ही महान् हैं। तुलसी और सूर की तरह मीरां और महादेवी का युग्म हमारे साहित्य का श्रृंगार है।

महादेवी के काव्य का प्रमुख विषय विरह है। इधर कुछ वर्षों से वे देश के कल्याणात्मक सत्ता के अनुरूप की ओर भी उन्मुख हैं, पर इस क्षेत्र में उन्हें महत्त्वपूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। यदि वे अनुवाद न करके छायानुवाद करतीं, देश की कल्याणमय अभिव्यक्तियों के आधार पर अपनी स्वतन्त्र रचनाएँ प्रस्तुत करतीं तो उन्हें अधिक सफलता मिल सकती थी। उनकी सृजनात्मक प्रतिभा अनुवाद के बहुत अनुकूल नहीं है। महादेवी की महत्ता में ऐसे अनुवाद कुछ जोड़ नहीं सके हैं। उनकी महिमा उनके कुछ मौलिक गीतों के कारण है जो नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत तथा दीपशिखा में संकलित हैं। उनकी महिमा का कारण उनका विरह-काव्य ही है। इस विरह काव्य पर रहस्य का आवरण डाल दिया गया है, पर यह आवरण अपने व्यक्तिगत एवं यथार्थ स्वरूप को छिपा नहीं पाया। हाँ, इस आवरण ने यथार्थ के रूप को उदात्त अवश्य कर दिया है।

महादेवी विरह की कवयित्री हैं। इस दृष्टि से समग्र हिन्दी-साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। जायसी, सूर, मैथिलीशरण और प्रसाद विरह के क्षेत्र में महान् हैं, पर वह केवल विरह के कवि नहीं हैं। मीरा और घनानन्द विरह के क्षेत्र में महान् हैं, पर उन्होंने भी भक्तिमय, प्रेममूलक एवं विरक्तिमूलक पद बड़ी तन्मयता से लिखे हैं। 'बच्चन' विरह के कवि हैं, पर उन्होंने भी हाला, गांधी और बंगाल के अकाल पर बहुत कुछ लिखा है, भले ही महत्त्व की दृष्टि से वह बहुत-कुछ न हो। 'हरिऔध' प्रमुखतः विरह के कवि रहे हैं, पर उनका ध्यान भी लोकसेवा, जातीयता, हिन्दू जाति इत्यादि की ओर गया है। महादेवी केवल विरह की कवयित्री हैं, उनके सृजन का प्रायः सब गुण और परिमाण की दृष्टि से विरहमय है। यों कवयित्री ने अनेक जिज्ञासामूलक रहस्यवादी गीत लिखे हैं, देश प्रेम इत्यादि पर भी एकाध बार दृष्टि फेरी है, पर ऐसे गीतों में उनकी आत्मा का पूर्ण उन्मेष प्रकट नहीं हो पाया। उनका विरह सूर, तुलसी, हरिऔध और मैथिलीशरण के विरह की तरह व्यापक क्षेत्र में नहीं फैला। मीरा के विरह से भी वह भिन्न है। मीरा के विरह के आलम्बन कृष्ण हैं जिनके विरह के गीत अनेक कवियों ने गाए हैं। उनके विरह में भक्ति भी घुली मिली है। महादेवी का विरह बाह्यतः रहस्याभासयुक्त प्रतीत होते हुए भी वस्तुतः शुद्ध वैयक्तिक विरह है। अपने विरह में महादेवी घनानन्द, प्रसाद और बच्चन के अधिक निकट हैं। इनके समान महादेवी का विरह वैयक्तिक है, अनुभूत है।

नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत एवं दीपशिखा—ऐसे सार्थक सोपान अन्यत्र शायद ही मिलें। नीहार (अश्रु) का जन्म तिमिरमय रजनी (निराशाजन्य वेदना) में होता है, रश्मि (आशा की किरण) नीहार को प्रकाशित करती है, उज्ज्वल करती है, रश्मि के पश्चात् ही नीरजा (रोदनोद्भूत गीत-पंक्तियों) का विकास सम्भव है, यह विकास धूप में ही पुष्ट होता है और सन्ध्या तक होता रहता है, पर सन्ध्या इस

विकास को बन्द कर देती है, सान्ध्यगीत नीहार, रश्मि, नीरजा को पूर्णत्व प्रदान करते हैं अन्ततोगत्वा दीपशिखा (जलना, पर प्रकाश देना) स्वाभाविक ही है। जीवन के प्रभात मे प्रेम वेदना के नीहार कणों ने चिन्ता के बाद आशा के आगमन की तरह रश्मि का आवाहन किया, इस रश्मि ने नीरजा को विकास प्रदान किया, पर इस विकास को सान्ध्यगीत के कलरव मे बन्द हो जाना पड़ा। फिर अधकार ! पर उस अधकार या निराशा पर दीपशिखा का नियन्त्रण ! यही महादेवी के विरह-काव्य के स्वाभाविक और ममस्पर्शी सोपान हैं ! रचनाक्रम दिवसक्रम के प्रतीकत्व मे जीवन क्रम को प्रस्तुत करने म जितना अधिक सफल यहा हुआ है, उतना हिन्दी साहित्य में अन्यत्र कही नही। 'यामा' मे कवयित्री के द्वारा स्पष्ट रूप म लिखित प्रथम याम, द्वितीय याम तृतीय याम इत्यादि साथक रहस्य रखते हैं।

महादेवी का प्रथम कलाकृति नीहार' प्रारम्भिक प्रतिमा की द्योतक होते हुए भी एक सफल रचना है। उसम प्रारम्भिक कृति के सारे गुण—सरलता, निश्छलता, अकृत्रिमता (जितनी छायावाद म सम्भव हो सकती है) तथा दोष—प्रतीकात्मकता के प्रति कुछ अधिक ललक, छायावादी मुहावरे गढने का कुछ अधिक उत्साह, इस पार' और 'उस पार का बार बार उठ खडा होने वाला झमेला (जो छायावादी रहस्यवाद का प्राण है) पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान हैं। फिर भी 'नीहार' के कणो (गीतो) में जो एकरूपता भरसता तथा भाव की तलस्पर्शिता विद्यमान है, उसे देखकर सहसा यह विश्वास नही होता कि उसका स्रष्टा तरुणावस्था या नवयौवन से सबधित है।

'नीहार' से लेकर दीपशिखा' तक महादेवी की कविता मे पीडा की एकरसता विद्यमान है। स्वर की कला म काल ने परिवतन किए हैं अनुभूति मे नही। सरसरी नजर से देखने पर यह पीडावाद 'एकोरस करुण एव' या शैली के 'हमारे सबसे मधुर गान वे हैं जो सबसे अधिक ददभरे विचारो को प्रकट करते हैं' का रूप प्रयोग प्रतीत होता है पर गम्भीरतापूवक विचार करने पर वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता दृष्टिगोचर होता है। कवयित्री के सुबोध जीवन के प्रभात मे स्नेह की स्वर्णाभा फूटी थी जो चिरस्थायी न रह सकी। वह पीड़ा सारे जीवन भर म्लाती रही। नीहार' म वह पीडा नूतन है अत उसके स्वरा मे यथार्थता अधिक है। कालान्तर मे उसका रूप सूक्ष्म होता गया।

भारतीय सस्कृति चिरकाल से स्रष्टा के शील को उसके जीवनगत प्रणय भावों को, प्रतीक विधान के माध्यम से व्यक्त करने के लिए प्रेरित करती रही है। अनेक कवियो न राधा कृष्ण एकाध ने शिव-पार्वती तथा अनेक ने आत्मा परमात्मा के माध्यम से अपनी वयक्तिक प्रणयानुभूतिया को अभिव्यक्ति प्रदान की है। महादेवी ने जिस समय लेखनी उठाई थी वह समय स्वानुभूतियो को रहस्यमय के माध्यम से व्यक्त

करने का था। 'प्रसाद' इत्यादि छायावादी कवि ऐसा ही कर रहे थे। अत महादेवी को अपनी अनुभूतियों रहस्यमय की ओर लेकर व्यक्त करना ही अधिक समीचीन प्रतीत हुआ। रहस्य का माध्यम अपना पुष्ट हुआ। इसी माध्यम के स्थान पर आधार वस्तु का आभास देने की शक्ति भी बटोरता गया। महादेवी के रहस्यवाद का ओज उसी शक्ति का परिणाम है।

महादेवी की प्रणयानुभूति प्रथम अधिक रहस्यानुगत होती प्रतीत होती है। यदि उनके जीवन का साधना का खंड मिल जाता तो सम्भव था कि पीड़ा उनमें सच्ची रहस्यानुभूति उत्पन्न कर देती। प्राय रहस्य में वैराग्य या भक्ति भावना जीवन की अन्य भावनाओं के अतिरेक नैराश्य या निराशाओं से ही उद्भूत होती है। भर्तृहरि का वैराग्य 'यं चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता' इत्यादि में भूमिभूत है, सूर के विषय में भी ऐसी कहानियाँ प्रचलित हैं तुलसी की विरक्ति भी अनुरक्ति से उत्पन्न हुई थी नन्ददास का ननाणी प्रेम प्रसिद्ध है रसखान को कृष्ण पर रीझने की प्रेरणा पार्थिव सौन्दर्य से ही प्राप्त हुई थी नागरीदास ने भक्ति का संकेत पारिवारिक विषमता से पाया था घनानन्द का कृष्ण प्रेम सुजान की अप्राप्ति पर पुष्ट हुआ था। पार्थिवता मानव का सहज धर्म है। यह सहज धर्म निराशा ग्लानि प्रताड़ना इत्यादि से प्रेरित होकर अपार्थिवता की ओर उन्मुख हो जाता है। आधुनिककाल के दो प्रमुख प्रणयी कवि 'प्रसाद और महादेवी का तथाकथित रहस्यवाद भी पार्थिवता में मूलभूत है। महादेवी ने जिस 'अपार्थिव पार्थिवता' की चर्चा की है वह केवल प्रासंगिक है वस्तुत वह पार्थिव अपार्थिवता ही है।

छायावादी रहस्यवाद की काल्पनिकता उसके स्रष्टाओं के जीवन से तो स्पष्ट होती है उनके स्वरों से भी प्रकट होती रहती है। छायावादी स्रष्टा उस दिन', 'उस मिलन' तथा 'उस पार का जो बारबार उल्लेख करता है, वह जीवन के अतीत से सम्बन्धित मिलन पर्व का सूचक है जो साधनात्मक या सच्चे रहस्यवादियों में नहीं प्राप्त हो सकता। सच्चा रहस्यवादी उस पार' जाने की कामना तो दूर 'मुक्ति' को भी ललकारता हुआ दृष्टिगोचर होता है। कबीर प्रेम में 'अघाय के इतना राते माते हो जाते हैं कि मागे मुक्ति बनाये की घोषणा करने लगते हैं, सूर की गोपिकाएं मुक्ति की खिल्ली उड़ाती हैं, तुलसी जनम जनम रघुनाथ पद रति के लिए गति न चहौं निरबान का ऐलान करते हैं मीराँ की प्रेम-बेलि उस पार की ओर सचेष्ट न होकर इस धरती पर ही फली थी।

महादेवी के रहस्य गान माध्यमगत रहस्यगान हैं। नीहार में उनके जीवन का निराश प्रणय इसे स्पष्ट कर देता है। 'प्रसाद' के आँसू' के समान महादेवी का विरह का यह पार्थिव ही है। पर दोनों में उतना ही अन्तर है जितना पुरुष और नारी

मे। 'प्रसाद' का प्रेम पुरुष का प्रेम है, जो निष्ठुर प्रिय पर सारी आस्था के बावजूद भी 'उस मिलन' की छलना' और माया की छाया' पर रोना जानता है। महादेवी का प्रेम नारी का प्रेम है, जो प्रिय के प्रति आस्था म अपनी पीडा का रोदन करते हुए भी अपने पक्ष स सम्बद्ध प्रेम पर पूणन आश्वस्त है। उसे दद है कि प्रिय का सयोग स्थायी न हो सका। पर वह उसके अस्थायित्व के सुख को सहेजने की शक्ति रखता है, रो रो कर भी अपने प्रेम और प्रिय पर प्रत्यक्ष या पराक्ष आक्रोश प्रकट नही करता, यदि करता भी है तो बहुत दबी आवाज म ही। प्रसाद का आवेशयुक्त पौरुष अपने प्रेम की पार्थिवता का सगोपन आवश्यकता से अधिक सचेष्ट होकर नही कर पाता, महादेवी का सव्रीड नारीत्व एक बडी दूरी तक ऐसा करने का प्रयास बराबर करता रहता है। प्रसाद का पुरुष अपनी निराशा को जन मगल की ओर प्रेरित कर लेता है, महादेवी का नारीत्व निराशा को मदा पीडा के रूप मे अपनाता हुआ चलता है।

'नीहार' के गीतो म कवयित्री के प्रेम स्मति विकलता पीडा तथा वास्तविक इच्छा के स्वर अत्यन्त विगलित रूप लेकर प्रकट हुए हैं, पर उनमे प्रारम्भिकता का कच्चापन भी है। देव के 'इस पार' आकर सगीत सिखा जाने तथा तब से अनेक युग बीत जाने एव उँगलियो के थक जाने आदि मे रवी द्र का प्रभाव बहुत खुलकर पडा है। 'उस पार' जाने का विशेष आग्रह रूढ लगता है। छायावादी मुहावरे गढने की ओर भी कवयित्री की तरुण प्रतिभा अधिकाधिक सचेष्ट है। शशि को छूने के लिए लहरों का मचलना, लहरो का चुम्बन तटिनी का आलिंगन, मधु से सीची गलियाँ वेदनाओं का प्याला, छाया की आँख मिचौनी व्यथा म सोता आकाश प्राणो का आसव, नीरव भाषण पीडा के आलिंगन इच्छाओं के चुम्बन आसू की माला इत्यादि सभी छायावादी सजावट 'नीहार' म दिखलाई पडता है। भाषा को निरथक या साथक रूप मे तोड मरोड कर चलने म कवयित्री की रुचि अधिक नही है इस क्षेत्र मे वह 'पत' के समान सायर, सिंह, सपूत' नही बन सकी या उसने स्वय नहीं बनना चाहा।

'नीहार' की तरुण कवयित्री को अपने प्रणय की सरस स्मति बारबार आती है उसे वह बडी विदग्धता से प्रकट करता है। पर रहस्यावरण यथाथ का सगोपन नही कर पाता क्योकि 'इस पार' आने की चर्चा रहस्यमय के प्रति अपने वास्तविक रूप में सम्भव नही है। पहले गीत म ही कवयित्री गाती है

भटक जाता था पागल वात, धूलि मे तुहिनकणों के हार,
सिखाने जीवन का सगीत, तभी तुम आए थे इस पार।

उसे याद है

इन ललचाई पलकों पर पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का।

किन्तु कवयित्री को वह सबल आत्मा प्राप्त है जो ज्वाला में भी दीवाली मनाती है प्रेम की पीर को स्पृहणीय समझती है दीवानी घोटों में सर्वस्व छिपा लेती है।

कवयित्री अपने प्रेम पर आश्वस्त ही नहीं विश्वस्त भी है। वह अपना प्रेमदीप जलाए बैठी है चाहती है कि वह जलता रहे। किन्तु यदि उसका प्रेम-दीप बुझ गया, तो हानि किसकी होगी! प्रिय की! उसकी पीड़ा का राज्य ही अन्धकारपूर्ण हो जाएगा

चिन्ता क्या है, हे निर्मम! बुझ जाए दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अंधेरा!!

विकलता का अतिरेक कवयित्री को पीड़ा प्रिय बना देता है। पीड़ा के प्रति महादेवी की अनुभूति नितान्त मौलिक, सच्ची और गम्भीर है। उसकी चर्चा करते समय उन्हें वह प्रतीत याद आता है जब 'वे आए थे और उन्होंने ही उसके जीवन में पीड़ा का साम्राज्य बसा दिया। 'पीड़ा के राज्य' का महादेवी ने बारबार उल्लेख किया है, सचमुच वे पीड़ा के राज्य की रानी हैं। प्रिय नहीं, पर उसके द्वारा दी गई पीड़ा विद्यमान है। *अतएव कवयित्री पीड़ा को प्रिय की ही भाँति स्पृहणीय एवं पावन* समझती हैं। उसे आँसुओं के व्यापार में एक अनोखा नया संसार बसता प्रतीत होता है। उसे विश्वास है कि जब विश्व पीड़ा के राग में परिवर्तित हो जाएगा तब निराशा आशा में परिवर्तित हो जाएगी, पतझड़ बसन्त बन जाएगा। यहाँ ऐसा लगता है कि कवयित्री दार्शनिक के स्वरों में बोल रही हैं।

विकलता और उन्माद के अतिरेक में कवयित्री मिटने की बातें करती है ऐसा स्वाभाविक है। पर कवयित्री की मूल आकांक्षा मिटने की न होकर पीड़ा का रस लेने की है। वह पीड़ा से परेशान होती है ऊबती नहीं। पीड़ा उसे प्रिय की प्रतीक लगती है। प्रिय और पीड़ा से वह अपना अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है—

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूंढा तुममें ढूंढूंगी पीड़ा।

'नीहार' के रहस्याभास के भीतर कवयित्री के जीवन की कहानी छिपी नहीं रह पाती। वह प्रकट होती रहती है।

जो बिखर पड़े निर्जन में निर्झर सपनों के मोती
मैं ढूंढ रही थी लेकर धुंधली जीवन की ज्योति,

उस सूने पथ मे अपने पैरों की चाप छिपाए
मेरे नीरव मानस म वे धीरे-धीरे आए।

इन पक्तियो की रहस्यवादी व्याख्या करना कठिन नही है पर वह व्याख्या वैसी ही होगी जैसी आसू' की रहस्यवादी व्याख्या। एक स्थान पर कवयित्री स्पष्ट कह देती है कि उसकी करुणा विषाद आँसू वियोग की वेदना के कारण हैं, यदि प्रिय एक बार भी आ जाते, तो उसका चिर सचित विराग लुट जाता।

महादेवी की रचनाओं मे प्रेम का मूल पार्थिव स्वर अत्यन्त उदात्त रूप लेकर प्रकट हुआ है अत उसमे रहस्याभास छायावाद के अन्य कवियो विशेषत प्रसाद के रहस्याभास की अपेक्षा अधिक विशद एव उज्ज्वल है। इसका कारण नारी का प्रेम-पूत अन्त करण है जो प्रेम को उसके उदात्त रूप मे देख सकने की क्षमता पुरुष की तुलना मे बहुत अधिक रखता है।

रश्मि 'नीहार की अपेक्षा कम मार्मिक पर अधिक गम्भीर कृति है। नीहार-कणो (आँसुओ या नीहार' के गीतो) मे प्राय सवत्र कवयित्री का स्वानुभूत प्रणय मुखरित होता है, जिसे रहस्यवादी आवरण छिपा नही पाता। कवयित्री की पीडा अपने अतिरेक से खिन्न होकर सन्तुलन की ओर अग्रसर होती है। भक्ति और आध्यात्मिक चिन्तन प्राय पार्थिव जीवन मे वेदना के अतिरेक के पश्चात् आरम्भ होता है। रश्मि' मे कवयित्री ने अपने विगलित स्व' स ऊपर उठने की चेष्टा की है। उसने बाल प्रकृति का देखने का प्रयत्न किया है, चिरकाल स उठने वाले नर्वाधि के प्रश्न का बारबार उठाकर मन बहलाने का प्रयत्न किया है। नीहार की वेदना तथा निराशा का अतिरेक रश्मि मे अपना भाग ढूढता दृष्टिगोचर होता है। नीहार कणो या आँसुओं को रश्मि पोंछने का प्रयास करती है। पर प्रणयगत स्वानुभूति 'रश्मि के आध्यात्मिक या रहस्यवादी गीतो के तल को करुणा के स्वर स निष्पन्न किय हुए है, उसके प्रकृति से सम्बन्धित गीतो म करुणा का भावोद्दीपन करने म सफलता प्राप्त किये हुए है।

'नीहार' के प्राय सभी सुन्दर प्रगीत वेदनामूलक हैं। 'रश्मि' मे ऐसा नही है। उसम अनेक गीत बडी सफलता के साथ 'प्रसाद' के मनु तथा पन्त के 'मौन निमन्त्रण जसा वह कौन' का प्रश्न उठात हैं जिसका मूल उपनिषदो म है। पर यह रहस्यवाद अध्ययनमूलक ही है। कुछ गीतो म प्रकृति की ओर भी दृष्टि डाली गई है, पर इस दृष्टि ने प्रकृति का जो करुण चित्र प्रस्तुत किया है उसका कारण विरह-वेदना का मूलभूत तत्त्व ही है। अत तत्त्व तथा गुण की तलस्पर्शी दृष्टि स 'रश्मि को भी एक विरह मूलक कृति कहा जा सकता है।

'रश्मि के विरह-गान नीहार' के विरह गाना की परम्परा को आगे बढाते हैं,

पर आयु के साथ ही उनमें कवयित्री का स्वर अधिक गम्भीर एवं चिन्तनमय हो गया है। नीहार' में पीड़ा और करुणा के आंसू-ही आंसू दृष्टिगोचर होते हैं, रश्मि' में प्रकाश की किरणें भी। अनुभूति की सत्यता एवं अभिव्यक्ति की अकृत्रिमता ने नीहार में जो भोलापन बरसाया है यह उसके रोदन को रश्मि' के चिन्तन की अपेक्षा अधिक कमनीय, कलात्मक और मनोरम बनाए हैं। पर रश्मि' में जहाँ कवयित्री चिन्तन एवं रहस्य से मुक्त होकर अपनी कहानी कहती हैं वहाँ वह नीहार' से कम सफल नहीं है।

अपने प्रिय तथा प्रेम के प्रति पूरी आस्था रखने पर भी कवयित्री विरह वेदना से व्यथित है। उसे प्रभात की रश्मि से भी सजल गानों के दर्शन होते हैं, अश्रु-हास की रँगाई दृष्टिगोचर होती है। वह कालिदास की तरह (मरण प्रकृति शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधः। रघुवंश ८।८७।१) मरण को जीवन की प्रकृति तथा जीवितावस्था को विकृत कहने का दार्शनिक प्रयास यों ही नहीं करती गहरी विकलता में ही करती है

अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास।

उसे अपनी पीडा की स्पृहणीयता ही ऐसा कहने को प्रेरित नहीं करती वेदना का अतिरेक भी करता है। वह सुख दुःख में एक सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास 'रश्मि' में ही आरम्भ करती है जिसका विकास 'नीरजा' तथा सान्ध्यगीत' में हुआ है। इस सन्तुलन के तल में वेदना का साम्राज्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता रहता है

चिर ध्येय यही जलने का ठंडी विभूति बन जाना,
है पीड़ा की सीमा यह दुख का चिर सुख हो जाना।

रश्मि', 'नीहार' और 'नीरजा' को जोडने वाली कड़ी है। महादेवी के एकतान एकरस पीडावाद को चिन्तना सबल रूप की ओर ले जाने का कार्य 'रश्मि' के गीत ही करते हैं।

'नीरजा' महादेवी की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है, 'नीहार' का पूर्णपरिपक्व एवं विकसित रूप। नीहार में प्रारम्भिकता का स्वाभाविक कच्चापन विद्यमान है, 'रश्मि' के 'क्वासि' के प्रश्नों में कवयित्री की मूल अनुभूति छिप सी गई है और किरण के स्वागत की चेष्टा में रोदन के स्वरों की शक्ति कुछ कम पड़ गई है। 'नीरजा में 'नीहार' के स्वर पुष्ट एवं नवीन रूप लेकर प्रकट हुए हैं तथा 'क्वासि के फेर में नहीं पड़े। नीरजा का अर्थ कमलिनी होता है 'नीरजा' कवयित्री के मानस की कमलिनी है रोदनोल्लास से परिपूर्ण महादेवी के सजल हृदय की गीतिका। नीहारकणों को समेट

कर जो नीर कवयित्री ने बटोरा है जिसे रश्मि ने उज्ज्वल किया है, वही अपनी प्रौढ समष्टि म 'नीरजा का रूप लेकर प्रकट हुआ है। 'सान्ध्यगीत' मे वेदनानुभव-दग्धता अधिक है चिन्तन अधिक है, करुणा अ्ि क है। निस्सन्देह सा ध्यगीत' महादेवी की सबसे प्रौढ कलाकृति है। पर प्रौढतम और श्रेष्ठतम दो वस्तुएँ हैं। अपनी तीव्र अनुभूति की सत्यता के कारण 'नीरजा महादवी की सवश्रेष्ठ रचना है। 'दीपशिखा' मे करुणा के स्वर कुछ अधिक निराश रूप लेकर प्रकट हुए हैं फिर वे दीप के आस पास ही अपनी बस्ती बसाए हुए हैं विषय विस्तार की दृष्टि से विशद नही हैं। अत 'नीरजा' की सवश्रेष्ठता असंदिग्ध है।

'नीरजा' म प्रकृति से सम्बधित *कुछ स्वतन्त्र गीत भी हैं।* कुछ *गीत* ऐसे भी हैं जिनमे प्रकृति-सौन्दय कवयित्री की विरह-वेदना का उद्दीपन करता है। ऐसे गीतो म प्रकृति पर स्वानुभूति का आरोप सुन्दर बन पड़ा है। एसे गीत बाह्यत विरह से असम्बद्ध लगते हैं, पर वस्तुत वे विरह से सम्बद्ध ही कहे जायेंगे। यत्र-तत्र रहस्यवादी गीत भी 'नीरजा' म दृष्टिगोचर होते है। ऐसे गीत दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के गीतो मे तुम और मैं (परमात्मा और आत्मा) के सम्बन्ध को अध्ययनमूलक एव कल्पना प्रवण शली म व्यक्त किया गया है तथा दूसरे प्रकार के गीतो मे मानसिक वेदना को *रहस्यमय के साथ कुछ अधिक आग्रह के साथ बाध दिया गया है।* दोनो प्रकार के गीतो मे महादेवी अत्यधिक सफल हुई हैं। किन्तु 'नीरजा' की महत्ता का कारण उसके वे अधिकाश प्रगीत हैं, जिनम 'नीहार की कवयित्री अपनी विरहानुभूतियो को मुखरित करती है। सरल भाषा, प्रवाहपूर्ण गीत योजना एव तीव्रानुभूति मे ये गीत हिन्दी कविता का अनुपम शृगार करते हैं।

'नीरजा' का प्रथम गीत यदि अश्रुनीर से प्रारम्भ होता है तो स्वाभाविक ही है 'नीरजा' का अन्त यदि प्यासे कणो से आपूरण है तो अपने आरम्भ को पूण ही करता ह अधिकाधिक स्वाभाविक हैं। स्मृति विकलता तथा विकलता म सन्तुलन पीडा एव इच्छा के सजल स्वर नीरजा' म नीहार' और रश्मि' की अपेक्षा अधिक पुष्ट हैं। कवयित्री ने अपनी करुण कहानी भी यत्र-तत्र लिख दी है जिसका मूल 'नीहार' और रश्मि मे ह।

नीरजा' तक आते आते कवयित्री का विरह अधिकाधिक पुष्ट हो गया है। वह *प्रिय की स्मृति की अपेक्षा प्रिय के द्वारा प्रदान की गई सबसे अमोल निधि* पीडा का गान अधिक करती ह। सुख दुख या मिलन वियोग मे समरसता की स्थापना की ओर वह पहले से ही सचेष्ट हैं। 'नीहार' म वह सचेष्टता पूणत विकसित ह। पर कवयित्री की पीडा-प्रधान रुचि विरह का अधिक सम्मान करती ह भले ही इसका कारण निराशाजन्य कुण्ठा हो।

वह अपने निष्ठुर जीवन में वेदना विगलित पक्षों को ही दराने का आग्रह करती है, क्योंकि वेदना ही उसका जीवन है—

मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू लड़ियाँ देखो ।
मेरे गीले पलक छुओ मत मुर्झाई कलियाँ देखो ।

सुख को दुखमय और दुख को सुखमय बनाने में यास मे वह अपने गायक से एक क्षण गा लेने का आदेश चाहती हैं, क्योंकि रोती तो वह सदा ही रहती हैं। कवयित्री ने जलन म जीवन पा लिया है पर लोग उसे मतवाली' कहत हैं। मीरां गिरधर प्रेम दीवाणी लोग कहे बिगरी।' जग जो चाहे कहे कवयित्री अपने प्रिय की स्मृति की थाती सहेज हुए ह। वह साफ कहती ह—तेरी सुधि बिन क्षण-क्षण सूना ।

पर जीवन कितना ही व्यथापूर्ण क्यों न हो पीड़ा और कसक की आँधी कितनी ही तेज क्यों न हो, कवयित्री अपने प्रदान का आदान नही चाहती। उसन प्रिय को केवल आँसू ही प्रदान कर पाने का अवसर पाया है पर उसे कोई आकांक्षा अभीप्सित नहीं ह—

प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन,
मेरे सब सब मे प्रिय तुम,
किससे व्यापार करूगी मैं ?
आँसू का मोल न लूगी मैं ।

कवयित्री क्षण रज, जग तक फल कर भी जीवन की दृष्टि से प्रिय मे बधी है। उसके सब पर प्रिय छाया है। फिर व्यापार कसा ? वह प्रिय से अपनी सबसे बड़ी विभूति आँसू—का भी मूल्य लेने को प्रस्तुत नही है। एक नारी ही ऐसा कह सकती है। ईश्वर को हटा देने पर प्रेम की मूल वेदना की दृष्टि स महादेवी सफो, मीरां और एलिजाबथ बैरेट ब्राउनिंग की परम्परा को आगे बढाने वाली विश्व की कुछ महानतम कवयित्रियो मे हैं। महादेवी के सजन म प्रम नारा की सारी कोमलता, सजलता, पवित्रता और आस्था के साथ प्रकट हुआ है। उनकी पावन पीडा हिन्दी साहित्य म अमर रहेगी।

निराशा के स्वरो का मानव हृदय से अनिवार्य सम्बन्ध है आशा के स्वरो की तरह। महादेवी की पीडा एव निराशा का यह अर्थ नही कि वे उनके अतिरेक म जो कुछ कह जाती हैं वही चरम सत्य है। वह चित्र का एक पहलू है दूसरा पहलू प्रिय का सान्निध्य चाहता है चाहे वह स्वप्न म ही क्या न हो। नीहार म कवयित्री प्रिय के आ जाने पर अपने सुखमय जीवन का चित्र खींचती थी पर अब वसा चित्र खीचना कठिन है। अब तो प्रिय सपने म ही बध जाएँ यही बहुत है। पर यदि बँध गया तो क्या कहना —

तुम्हें बाँध पाती सपने मे ।
तो चिरजीवन प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने मे ।

'सान्ध्यगीत' महादेवी की प्रौढतम कृति है । नीरजा का निमीलन सान्ध्या का गीत । नीहार', 'रश्मि' तथा 'नीरजा' के साथ ही कवयित्री के सृजन का एक युग समाप्त हो जाता है । इस युग म कवयित्री अपने समग्र सन्तुलन के होते हुए भी एक आकुल विरहिणी के रूप म गाती रही है। 'सान्ध्यगीत और 'दीपशिखा' मे उनके सृजन का दूसरा युग दृष्टिगोचर होता है, जिसमे पीडा की सुदीर्घता तथा विषमता की ज्वाला ने उसके प्रेम को अधिकाधिक दमकाकर और अधिक आदरप्रवण बना दिया है । मिलन की तीव्र स्पृहा यहा भी है । प्रिय के प्रति कवयित्री की आस्था और भी अधिक बढ गई है जो उसके उज्ज्वल एव महान प्रेम की प्रतीक है ।

इस प्रौढ कृति म कवयित्री की विकलता उसका सतुलन उसकी इच्छाएँ सभी कुछ बहुत ठोस हैं । रहस्यावरण के प्रति वह सान्ध्यगीत' मे अधिक सजग नही है इसमे उसे अपनी पीडा का गान ही अधिक भाया है ।

सयोग और वियोग तथा सुख और दुःख के मिलन से जीवन की पूर्णता का भावमय गान आँसू' के कवि प्रसाद तथा 'गुजन' के कवि पन्त कर चुके थे । महादेवी इस क्षेत्र में कुछ और अधिक आगे बढी हैं । आँसू का प्रभाव उन पर पडा तो है पर उसे उनकी पीडाप्रियता ने सजल रूप में ही अपनाया है । सुख-दुःख के मिलन से जीवन का पूर्णत्व-गान दुःख ही कराता है, क्योंकि दुःख को सुख की आवश्यकता रहती है सुख को दुःख की आवश्यकता नही रहती । प्रसाद' के समान महादेवी का पीडा प्रेम और विरह-स्तवन निराशाजन्य ही है । प्राय होता भी ऐसा ही है । यो तो महादेवी नीहार' से ही पीडा के प्रति पूरी आस्था रखती आई हैं, पर सान्ध्यगीत' में उनका पीडावाद तथा विरह-स्तवन अपनी चरम सीमा पर पहुच गया है ।

'सान्ध्यगीत' में पीडा के साथ उच्चादर्शों का मेल बडी स्निग्धता से कराया गया है । कवयित्री प्रिय से अपने प्रेम-दीप की अजेयता को स्पष्ट कर देती है । यह प्रेम दीप आँधी पानी से बुझने वाला नहीं । यह न बन कर मिटेगा मिट मिट कर बनेगा। इसके ऐसा करने का कारण है तुम्हारे पथ को अन्धकारयुक्त न होने देना ।

दीपशिखा में यह भावना और भी अधिक विशद है ।

प्रेमी चाहे जितना चिन्तन करे, जितना रोए जितना गाए पर प्रिय का सान्निध्य पाने का एक-न-एक बार अवश्य कामना करता है । महादेवी अपने सारे चिन्तन, रोदन तथा गायन के बीच प्रिय के सान्निध्य को प्राप्त करने की कामना भी

व्यक्त करती रहती है। 'नीहार' 'रश्मि' तथा 'नीरजा' में ऐसी कामना अधिक स्पष्ट एव तीव्र है। 'सान्ध्यगीत' की निराशा में वह अस्पष्ट एव प्रशान्त हो गई है। कवयित्री 'जो तुम आ जाते' का गान अब नहीं कर पाती, क्योंकि उसे आशा नहीं है कि प्रिय आयेगा। पर सध्या की वेला मे वह स्वप्न म आने का अनुरोध प्रिय से अब भी कर लेती है। पहले गीत मे ही 'उतरो अब पलको म पाहुन' का अनुरोध हो चुका है। उसे कवयित्री ने दुहराया भी है--

नव घन आज बनो पलका मे!
पाहुन अब उतरो अलकों मे!

'दीपशिखा' 'स्नेह की जलती दीपशिखा'—महादेवी की एक अत्यन्त प्रौढ कलाकृति है जिसका विषय विस्तार सीमित है। अधिकाश गीतो का सम्बन्ध दीपक निशा और अधकार से है। 'बच्चन' का 'निशा निमन्त्रण' 'दीपशिखा' की परपरा की कड़ी सा लगता है। 'दीपशिखा' का नामकरण 'नीहार' 'रश्मि' 'नीरजा' तथा 'सान्ध्यगीत' के सदृश ही पूणत साथक है। कुछ गीत स्व निरूपक भी हैं, जिनमे कवयित्री अपना और अपनी पीडा का परिचय देती है। ऐसे गीत बहुत ही हृदय द्रावक हैं। ऐसे गीतो मे यत्र तत्र प्रकृति पर पीडा का विराट प्रभाव विशद रूप से चित्रित किया गया ह, जसा कि अन्य कृतियो म भी हुआ ह। कुछ गीत रहस्यवादी तथा प्रकृति से सम्बन्धित भी हैं जिनके तल म कवयित्री की पीडा झलकती रहती है। कहीं कहीं रहस्यवादी स्वर बहुत ही गम्भीर रूप म हैं जिसका कारण कवयित्री की प्रौढ़ता एव अध्ययनशीलता ह।

'दीपशिखा' म प्रिय की स्मृति तथा अपनी इच्छा के गान कम हुए हैं, स्नेह की शीतल ज्वाला का गान अधिक हुआ ह। प्रथम म अन्त के गीतो म 'प्रान' का उल्लेख केवल प्रासगिक ह। कवयित्री की आत्मा जलने मे ही अधिक रमी ह। प्रेम की निराशा निशा के तम म कवयित्री के प्राण दीप पावन प्रकाश भरने मे जितना सफल यहाँ हुए हैं, उतना अन्यत्र कहीं नहीं। बच्चन का 'निशा निमन्त्रण' अधिक स्वाभाविक है पर उसकी एकात शोकमूलकता म वह उज्ज्वल प्रकाश नहीं ह जो 'दीपशिखा' की आत्मा ह। नीरज की विभावरी म वह तन्मयता एकरसता तथा उज्ज्वलता नहीं ह, जो 'दीपशिखा' म ह। गान की दृष्टि से महादेवी का स्थान सवश्रेष्ठ ह।

दीपशिखा की विरह मूलक कविताओ म महादेवी अपनी कहानी तथा विकलता को व्यक्त करने म अधिक सचेष्ट दृष्टिगोचर होती हैं स्मृति आदन तथा इच्छा पर उनका ध्यान अपेक्षाकृत कम गया है। कारण स्पष्ट ह स्मृति दीघकाल स स्मृति ही बनी चली आ रही ह आन्तर आदन एव इच्छा इच्छा, उन्हें मिलन यथाथ तथा पूर्ति नहीं

मिलो। अत उनसे कवयित्री का मन भर चुका है, यद्यपि उन्हें वह छोड नही सकती। विकलता और अपनी कहानी कहने से व्यक्ति का मन नही भरता। कवयित्री का भी मन नही भरा।

कवयित्री के सुकुमार सपन प्रिय की स्मति से उजले हैं जो उसके सजल दग की मधुर कहानी को छूते हैं तथा जिनका हर कण वरदानी अमर करुणा का रूप ग्रहण करता रहता है। किसी की स्मनि ने कवयित्रा का विकलता की विभूति प्रदान की है। विकलता ने उसके प्राणो को दीपक बना दिया ह, जो निराशा की निशा म प्रकाश फलाता है। कवयित्री चाहती ह कि उसकी यह दीपशिखा घुले पर अचचल रूप म, जल, पर अकपित रूप म। प्रम का उसक विगलित रूप म महादेवी ने जितना अधिक ग्रहण किया है उतना हिन्दी क्या, कदाचित ससार के किसी कवि ने नही ग्रहण किया, या नही ग्रहण कर पाया। निराशामूलक होत हुए भी उनका पीडावाद अत्यन्त पुष्ट एव उज्वल है। दीपशिखा के नामकरण की साथकता उसके प्रथम गीत में ही स्पष्ट हो जाती ह—"दीप मेरे जल अकपित, घुल अचचल!" प्राणदीप! जल घुल, साथ ही अकपित अचचल रह! यह उच्चस्तर की प्रेम साधना सबके वश की नही। सारी विकलता एव पाडा के साथ भी वह हारने का तैयार नही है। जो लोग महादेवी के पीडावाद की चुटकियाँ लते है उन्हें अमर दढता पर भी दष्टि डालनी चाहिए।

अभी उसका प्राणदीप जल रहा है—'दीपशिखा' वस्तुत प्राणगीत ही है, इस जलन के रस म वह इतना अधिक विह्वल हो उठी ह कि प्रिय से कहती ह—यदि तुम्हें आना ही ह तो इस दीपक के बुझने पर आना!'

मत्यु को जीवन की जननी केवल धम और दशन ने ही माना ह। मत्यु के प्रति गीता इत्यादि ग्रन्थो म जो उदगार हैं उनके मूल म मत्यु की अनिवायता को देखकर जीवन को निया सुदृढ करन का लक्ष्य ही ह और कुछ नही। मत्यु की गरिमा का गान व्यक्ति तभी करता ह, जब वह परशान हो जाता ह भयकर परिस्थिति म पड जाता है या मरन वाला होता ह। मत्यु नही, जीवन सत्य ह। पर मत्यु की अनिवायता ने चि तन का बोभ लेकर उसे उज्ज्वल बनान के प्रयास अनेक बार किए हैं। महादेवी भी कालिदास शक्सपियर और प्रसाद के समान मत्यु स्तवन करती हैं।

महादेवी दीपशिखा' म आँसुओ के देश म पहुँच जाती हैं। आँसू महादेवी के काव्य का प्राण हैं, पीडा आत्मा। फिर भी वे विरह के पथ म इति अथ मानने को प्रस्तुत नही हैं—अलि विरह के पथ मे मैं सो न इति अथ मानती री!

महादेवी के पूव तक विरह के निमिष कल्प म लगने थे पर महादेवी ने विरह के कल्प निमिष म बिता दिए हैं। यह असाधारण काय बडी साधना के बाद ही हुआ

है। इसमे कवयित्री के प्राण प्रिय से बार-बार हारे और हारकर भी जीते थे—प्राण तुमसे हार कर प्रति बार जीते !

महादेवी ने 'नीहार' से लेकर 'साध्यगीत' तक अनेक बार प्रिय के अपरिचित होने की बात कही है—वह केवल प्रासगिक या आलकारिक है, सत्य नही। इसे 'दीप शिखा' मे स्पष्ट कर दिया गया है—

जो न प्रिय पहचान पाती !
दौडती क्यों प्रति शिरा मे प्यास विद्युत सी तरल बन
क्यो अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन ?
किसलिए हर साँस तम मे सजल दीपक राग गाती ?

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि कवयित्री का प्रिय अपरिचित नही है भली भाति परिचित है। अपरिचित से प्रेम नही हो सकता। जिन साधको तथा भक्तो ने ईश्वर से प्रेम किया है उन्होने उसे भी अपरिचित नही रहने दिया। महादेवी तो प्रिय के आगमन के शकुन मनाती हैं।

महादेवी ने अपनी भूमिकाओ मे बारबार मीरा और बुद्ध की चर्चा की है। हमारी समझ मे यह चर्चा व्यर्थ की वस्तु है। बुद्ध की विरक्ति एव करुणा से महादेवी की प्रेम विह्वल वेदना का कोई सम्बन्ध नही है। मीरा की भक्तिमूलक प्रेम साधना महादेवी को पार्थिव प्रेम साधना से भिन्न है। इसका यह अर्थ नहीं कि उनके स्वरो मे उदात्तता नही है या वे कम महान् कवयित्री हैं। भक्ति या रहस्यगान ही कविता नहीं है। कालिदास और शेक्सपियर जैसे विश्व साहित्य के अनेक सीमान्त भक्त न थे पर ससार का कोई भी भक्त कवि कला के क्षेत्र मे उनसे आगे नही जा सका है।

इस प्रसग मे अज्ञेय ने लिखा है—"अपनी कविता की चर्चा करते समय महादेवी जी ने एकाधिक बार बुद्ध अथवा मीराबाई अथवा रहस्यवादियो का नाम लिया है। उनकी कविता मे करुणा है, किन्तु बुद्ध की सी व्यापक करुणा नहीं, आत्म निवेदन है किन्तु मीराबाई जसी निरपेक्ष आत्म विस्मृति नहीं असीम की खोज और हल्का स्पर्शानुभव है, चिन्तन है किन्तु रहस्यवादियों का अटपटा अनगढ, तेजस्वी दार्शनिक असन्तोष नहीं।"[1] यहाँ 'व्यापक करुणा' एव 'निरपेक्ष आत्म विस्मृति' से अज्ञेय का क्या तात्पर्य है यह स्पष्ट नही हुआ। सच पूछा जाय तो बुद्ध की करुणा और महादेवी की करुणा नितान्त भिन्न वस्तुएँ हैं बुद्ध की करुणा निवृत्तिमूलक है महादेवी

१ त्रिशकु 'आधुनिक कवि महादेवी वर्मा' शीर्षक लेख पृष्ठ १११।

की प्रवत्तिमूलक, बुद्ध की करुणा समष्टिमूलक है महादेवी की व्यष्टिमूलक, बुद्ध की करुणा साधनात्मक है, महादेवी की वेदनात्मक। बाबू गुलाबराय ने ठीक लिखा है—'बुद्ध दुख को अत्यन्त हेय वस्तु मानते हैं और उसके परित्याग के लिए अष्टांगिक मार्ग का उपदेश देते हैं, जबकि महादेवी वर्मा को दुख मे उपादेयता मिलती है और वे उसका परित्याग करना नहीं चाहतीं।'[1]

हमारी समझ मे महादेवी की कविता मे आराध्य और आराधक के दर्शन न करके यदि प्रिय और प्रेमी हृदय के दर्शन किए जाएँ तो वह अधिक स्पष्ट, रमणीय, स्वाभाविक और महान लगेगी। मेघदूत गीत गोविन्द सूर सागर और विद्यापति की पदावली म अध्यात्मवाद की खोज का बुद्धि विलास अब बहुत-कुछ समाप्त हो चुका है। अत पार्थिवता मूलक छायावादी रहस्य गान को भी यदि अब अध्यात्मवाद से मुक्त करके देखा जाए तो अनुचित न होगा। महादेवी की जो प्रत्यालोचना हुई है वह रहस्यवाद के कारण ही। यदि उनकी प्रणय वेदना पार्थिव प्रणय वेदना के रूप मे देखी जाए तो उसकी समता ससार की कवयित्रियो म शायद ही कही मिलेगी। महादेवी की कविता का सम्यक मूल्याकन रहस्यवादी दृष्टिकोण से नही हो सकता, क्योकि मूलत वह पार्थिव है। प्रसाद की अमर कृति 'आसू' को यदि हम रहस्यवादी कृति के रूप म पढेंगे, तो निस्सदेह वह हमारी अधिकाधिक प्रत्यालोचना का विषय बन जाएगी। किन्तु जब हम उसे उसके मूल पार्थिव रूप मे पढते हैं तो उसका चारुत्व अद्वितीय प्रतीत होता है। यह बात महादेवी के काव्य पर भी लागू होती है। नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक महादेवी के गीतो म जो पीडा तडप सन्तुलन कामना तथा विकलता दृष्टिगोचर होती है, वह रहस्यमूलक नही है—क्योकि उसमे मिलन की कहानी स्पष्ट रूप मे अकित है क्योकि उसम 'चिर सचित विराग' को प्रिय के आगमन पर लुटा देने की साध स्पष्ट रूप में विद्यमान है क्योकि उसमे परिचय का उल्लेख स्पष्ट रूप मे व्यक्त किया गया है। उसे उसके यथार्थरूप म ही देखना उचित होगा तभी हम कवयित्री और उसकी रचनाओ के साथ सम्यक रूप स न्याय कर सकेंगे। इस सम्बन्ध म एक व्यवधान है। प्रसाद' की तरह यदि महादेवी अपने विरह पर मौन रहतीं, तो 'आंसू' की तरह उनके काव्य का यथार्थ अनुशीलन अपेक्षाकृत सरल कार्य हो जाता। किन्तु महादेवी ने ऐसा नहीं किया। उन्होने 'अपार्थिव' की चर्चा की है। पर इससे भी विवेचन म बाधा न आनी चाहिए। रीतिकालीन कवियो के अनेक आत्म विषयक कथनो को आज समीचीन नहीं माना जा रहा। इसी प्रकार हम महादेवी के काव्य सत्य को उनके कथनो से पृथक दृष्टि के द्वारा भी उद्घाटित कर सकते हैं। ऐसा करते ही महादेवी काव्यगत सफलता उदात्तता अनुभूति की तीव्रता इत्यादि सभी

१ गुलाबराय तथा शम्भूनाथ पाण्डे लिखित रहस्यवाद और हिन्दी कविता' में महादेवी पर प्रकट किये गए विचार, पृष्ठ २१०

दृष्टियों से एक अत्यन्त महान् कवयित्री प्रतीत होने लगेंगी। उन पर जो प्रत्यालोचना है वह अध्यात्मवाद रहस्यवाद के कारण है। आचार्य शुक्ल ने कदाचित उक्त वादों को ध्यान में न रखकर ही ये शब्द लिखे हैं—"गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को मिली, वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रञ्जल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भावभंगी। जगह जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।"[1]

१ हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६६५

डॉ० मुचकुन्द शर्मा

८

महादेवी की वेदनानुभूति

वेदना की अमर गायिका महादेवी के भाव-बोध मे वेदना, अभाव, करुणा और टीस उनके काव्य के मूल स्रोत हैं। यो सम्पूर्ण छायावाद के मूल म ही इस करुणा की परिव्याप्ति हम देखते हैं। स्वय कवयित्री ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है "छायावाद को दु:खवाद का पर्याय समझ लेना भी सहज हो गया है। छायावाद का काव्य स्वानुभूतिमयी रचनाओ पर आश्रित है, अत व्यापक करुण भाव और व्यक्तिगत विषाद के बीच की रेखा और भी अस्पष्ट हो जाती है।"[1]

महादेवी काव्य के मूल मे करुणा को ही प्रधानता देती हैं। सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक की वैज्ञानिक उपलब्धियो के बीच भी करुणा का यह अखण्ड कोष अक्षयरूप मे प्रवाहित होता रहा है। करुणा और जीवन का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है "वदिककाल ही मे एक ओर यज्ञ सम्बन्धी पशुबलि प्रचलित थी और दूसरी ओर 'मा हिंस्यात् सवभूतानि' का प्रचार हो रहा था। इस प्रवृत्ति ने आगे विकास पाकर जैनधम के मूल सिद्धांतों की रूपरेखा दी। बुद्ध द्वारा स्थापित ससार का सबसे बडा करुणा का धम भी इसी प्रवृत्ति का परिष्कृत फल कहा जाएगा। हमारे दो महान् ग्रथों मे से एक को करुण भाव से ही प्रेरणा मिली है और दूसरा अपने सघष के अन्त मे करुण भाव ही मे चरम परिणति पा लेता है।"[2]

काव्य का आविर्भाव ही करुणा से हुआ है। आदिकवि वाल्मीकि के क्रौंच वध पर—

> मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वतीसमा
> यत्क्रौंचमिथुनादेकम् वधी काम मोहितम।

श्लोक का आगमन करुणा से ही हुआ। महाकवि कालिदास ने रघुवश, मेघदूत और अभिज्ञानशाकुन्तलम म इस करुणा को ही अपना महत्तम आदश स्वीकार किया है। महाकवि भवभूति तो 'एकोरस करुणमेव' कहकर करुण रस की श्रेष्ठता प्रमाणित करते हैं। इस तरह सस्कृत-काव्य-परपरा मे करुण रस का निर्वाह हम देखते हैं।

१ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ ८७ ८८
२ वही, पृष्ठ ८७

निर्गुण और सगुण भक्तो के ब्रह्म-जीव सिद्धात निरूपण म भी करुणा का यही विराट भाव वर्तमान है। छायावादी कवि पन्त के 'वियोगी होगा पहला कवि आह से निकला होगा गान' की सम्पुष्टि अर्नेस्ट रेमण्ड की इस उक्ति से भी होती है कि 'साहित्य क्रन्दन है' शली ने 'अवर स्वीटेस्ट सांग्स आर दोज़ दैट टेल आफ सडेस्ट थाट' कहकर अपने मधुरतम उत्कृष्ट गीतो मे करुणा का स्थान निरूपित किया है। यूनान के सोफोक्लीज़ आदि के नाटको मे करुणा के बडे मार्मिक प्रसग पढने को मिलते हैं।

कवयित्री ने आधुनिक युग के प्रणेता भारतेन्दु-काल को भी करुणा से ओतप्रोत माना है "भारतेन्दु-युग मे भी हम एक व्यापक करुणा की छाया के नीचे देश की दुदशा के चित्र बनते बिगडते देखते हैं। पौराणिक चरित्रो की खोज करुणा की सामान्यता के लिए होती है और देश, समाज आदि का यथाथ चित्रण व्यक्तिगत विषाद को विस्तार देता है।" 'प्रियप्रवास' और साकेत आदि द्विवेदीयुगीन प्रबन्ध काव्यो म भी करुणा का एक वेग प्रवाहित है। रीतिकालीन कवियो मे घनानन्द ने सर्वाधिक रूप मे करुणा की कहानी को (प्रेम की पीर को) पहचान कर लिखा है।

छायावाद युग मे स्वच्छन्दता के कारण वैयक्तिक सुख दुख के वेग गीतो मे अधिक निखरने लगे। छाया युग म 'प्रसाद ने दशन 'निराला' ने ओज 'पन्त' ने प्रकृति सामीप्य एव महादेवी ने करुणा का राग हिन्दी काव्य को दिया। अपनी दृष्टि से इन क्षेत्रो को घनी बनाने मे ये समथ हुए। फिर भी दुख के स्वर सभी कवियो मे प्रधान हैं। 'निराला' ने 'दुख ही जीवन की कथा रही' कहकर भी गरलपान कर लिया। प्रसाद ने 'आँसू' की रचना की। पन्त ने भी 'ग्रन्थि' मे विरह गान किया। महादेवी तो करुणा के साम्राज्य मे ही रहना पसन्द करती हैं।

महादेवी के काव्य म करुणा या वेदना का पारम्परिक रूप मे निर्वाह हुआ है। यह वेदना इन्हें विरासत रूप मे एक तरह से समुपलब्ध है। कुछ अन्य कारणो से भी इनके काव्य म वेदना का प्राधान्य पाया जाता है। रश्मि' की भूमिका म उन्होने स्वीकार किया है—

(१) "अपने दुखवाद के विषय म भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पडता है। सुख और दुख के धूप छाँही डोरो से बने हुए जीवन मे मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। ससार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन मे मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा मे सब कुछ मिला है, परन्तु उसपर दुख की छाया नहीं पड सकी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।"

(२) "इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय

अनुराग होने के कारण उनकी ससार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय परिचय हो गया।"

'सवभूतहितेरता' के कारण भी महादेवी दुःख को अपनाती हैं। सुख का उपभोग व्यक्ति अपने ढंग से करता है दुःख को बाँटकर वह जीना चाहता है। दुःख ससार को एकसूत्रता मे आबद्ध रखता है अत वह कवि का मोक्ष है। दुःख से मनुष्य भक्ति और अध्यात्म की ओर भी उन्मुख होता है। महादेवी ने इसलिए भी व्यक्तिगत रुचि-दृष्टि से दुःख को अपनाया है और इसीलिए दुःख-काव्य की सृष्टि की है।

दुःख महादेवी को इसलिए भी प्रिय है कि इसमें व्यक्ति का अभिमान समाप्त हो जाता है कालुष्य मिट जाता है। सम्भव है इसीलिए छायावादी कवियो के कण्ठ स्वर में दुःख-गान की प्रधानता है। किन्तु दुःखवाद को स्वीकारने का कवयित्री का एक और भी लक्ष्य और कारण था। जसे आत्मा का परमात्मा से वियोग होने के कारण करुण भाव का निदर्शन भक्तियुगीन साहित्य म द्रष्टव्य है उसी तरह "राष्ट्र की विषम परिस्थितियों ने भी छायायुग की करुणा में एक रहस्यमयी स्थिति पाई। राष्ट्र-तत्त्व की मुक्ति मे अपनी मुक्ति चाहनेवाली राष्ट्रात्मा का विषाद भी विस्तृत है।" राष्ट्र उन्मुक्ति के लिये किए जाने वाले प्रयत्नो की विफलता के कारण भी महादेवी के गीतों में दुःख का स्वर प्रधान हो उठा है।

भारतीय सस्कृति की करुणा प्रियता के कारण भी महादेवी का झुकाव करुण काव्य की ओर हुआ। सम्भव है लौकिक दाम्पत्य जीवन की विफलता ने भी इन्हें दुःख को अपना बना लेने को बाध्य किया हो। नारी-सुलभ कोमलता ममता प्रियता एवं दयाद्रता की जननी होने के कारण भी महादेवी क काव्य म इस दुःख का आगमन हुआ है। वे सीता और पार्वती की तरह विश्व माँ हैं।

महादेवी की वेदना वैयक्तिक है किन्तु युग की सार्वजनीनता और सार्वदेशिकता की अनन्तता भी उन्हें सहज सम्प्राप्त हो गई है। उनकी समस्त कृतियो पर इस दुःखवाद की एकतानता का एकछत्र निर्वाह हम देखते हैं। यह पीड़ा यह टीस महादेवी के काव्य म स्वयमेव ही आ गई है जिसे वे सँजोती और सँवारती चलती हैं। वे अपने को वेदना की रानी कहती हैं—

अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती रखवाली।

वेदनावाद की सफल अभिव्यक्ति कवयित्री ने छठे वर्ग मे पढते समय लिखे गए अपने एक गीत में की है

मैं नीर भरी दुःख की बदली,
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

अपने सम्पूर्ण जीवन को प्रिय के वियोग मे पाकर विरह का जलजात, जीवन विरह का जलजात' कहकर वह विरहिनी की तरह साधना-कक्ष म दीप शिखा की तरह निष्कम्प जलती रहती हैं। वेदना की आँच से उनकी हृदगत अनुभूतियाँ तरल होकर मोम की तरह पिघलकर बाहर आई हैं। इसीलिए अपनी साधना की सफलता मे महादेवी पीड़ा को आलोक-दीप मानकर चलती हैं। पीडा को ही वह कभी-कभी अपना आराध्य मानती हैं। वह अपने को पीडामय देखती हैं। यह पीडा ही उनके लिए सुख माग हो गया है। यह अभाव ही उनके लिए सम्पन्नता म परिवर्तित हो गया है। यदि ऐसा नही होता तो वे इतनी सौंदयमयी शाश्वत रचना करने म समथ नही होती।

कुछ ऐसे भी समालोचक हैं जो महादेवी की वेदना को कृत्रिमता की सज्ञा देते हैं। प्रकाण्ड दार्शनिक समालोचक जैनेन्द्र भी इनमे से एक हैं। श ो की सुघड़ता और व्यवस्था के कारण ही वे ऐसा मानते हैं। किन्तु मेरा अपना दृष्टिकोण है कि शब्दो की अनगढता, अलकरणहीनता आदि वेदनानुभूति के कारण नही हैं। सम्पूण काव्य की एकस्वरता, व्यक्तित्व की एकरूपता व्यवहार और सिद्धान्त क सम्मिलन यह सिद्ध करता है कि महादेवी की वेदना मे आँसुओ की लडी पिरोई हुई है। उनका काव्य करुणा का महासागर है जिसम आँसू का खारा जल ही मिलता है। मेघ बाष्प दीपक शूल, नीर आदि प्रतीकात्मक शब्द हैं जो दु ख के लिए प्रयुक्त हुए हैं। उनका सम्पूण जीवन ही वेदनामय हो उठा है।

महादेवी की करुणा क मूल म लौकिक दाम्पत्य जीवन की विफलता भी है। किन्तु कवयित्री ने लौकिक प्रिय की जगह अलौकिक ब्रह्म को ही अपना प्रिय मानकर अपने विरहोद्गार व्यक्त किए हैं। कभी साक्षात्कार तो हुआ था किन्तु वह साक्षात्कार क्षणिक था। इसीलिए ऐसी पीडा को जिसके कारण अलौकिक प्रिय का नाम विस्मृत न हो, महादेवी सजोकर रखना चाहती हैं देवदासी की तरह। पीडा और अभाव को अपना लेने पर लौकिक सुख सुविधा को उन्होंने तिरस्कृत कर दिया है। विषाद नराश्य और शून्य ने उनके भीतर घर कर लिया है। अब कवयित्री पीडा को चिरसहचरी मानकर रहना चाहती हैं।

सम्भवत महादेवी को वेदना इसलिए भी प्रिय है कि इमस इनक जीवन के साधना-पथ के लिए एक नवलोक मिलता हो और जीवन के लक्ष्य बिन्दु तक पहुँचने में इन्हें आसानी हो। यह एक विचित्र सयोग है कि सुख में रहकर भी इन्हें दुख की अनुभूति प्रिय लगने लगी। उनक सम्पूण काव्य को पढने पर एक ट्रेजिक' का-सी मुद्रा पाठकों की बन जाती है। यहाँ आकर साधारणीकरण का भाव समुपस्थित होने लगता है और काव्य की सफलता यहीं सन्निहित है। किन्तु इस चिरविषाद में भी एक नवीन आशा सदेश है जिसके सहारे कवयित्री आगे बढ़ती रही हैं।

महादेवी की करुणा के मूल मे ब्रह्म से वियोग का भाव ध्वनित है यह कहा जा चुका है। इसी ब्रह्म प्रिय की खोज मे महादवी अन्तर्मुखी हो गई हैं। उनके काव्य का मूल द्रव करुणा सिक्त हो उठा है। सयाग और वियोग के इसी ताने ताने के बीच महादेवी का जीवन चल रहा है—हालाकि वह सयोग को नही चाहती, क्योकि उसमे निर्जीवता और गतिशून्यता है। उनम वियाग है, किन्तु अलौकिक के प्रति सयोग की भावना भी। इसीलिए उनका काव्य रहस्यमय हो गया है। यहाँ कुछ आलोचकों ने यह प्रश्न उठाया है कि महादेवी के काव्य म एकस्वरता और एकपक्षता का दोष है। किन्तु चक्रवाल की भूमिका में 'दिनकर' जी ने स्वीकारा है कि अपने जीवन म कवि एक ही कविता जीवन भर लिखता रहता है। तुलसीदास भक्ति के गीत गाते रह, बिहारी प्रेम के भूषण वीररस के एव 'निराला विद्रोह के। अत यदि हम कहें कि महादेवी क काव्य में करुणा का राग सवत्र है और वह इस करुणा की गायिका सम्पूर्ण जीवन म बनी रही तो आश्चय क्या है ?

वेदना प्रिय होने के कारण महादेवी की अनुभूति सुख-दुख को अभिव्यक्त करते समय वैयक्तिकता से ओत प्रात है। स्वाभाविक रूप से महादेवी की रचनाएँ गीतों मे निःसृत हुई हैं। मूलत छायावाद युग गीत सृष्टि का युग था यों कुछ प्रबन्ध-काव्य भी उस युग में लिखे गए वहाँ भी गीति-तत्त्व का प्राधान्य है।

महादेवी के वेदना भाव में सूफी कवियो के प्रेम की झलक भी मिलती है। यों मीरां की सी तन्मयता का उनम अभाव है। सम्भव है इसीलिए महादेवी में उपकरण वविध्य का भी पर्याप्त अभाव है। अपने प्रिय को वह जानती हैं जा विश्व के कण-कण म परिव्याप्त है। ऐसे अविनाशी की प्रिया भी शाश्वता ही होगी—

प्रिय चिरतन है सजनि,
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।

यह जीवन शाश्वत नहीं है। शाश्वतता की समुपलब्धि तो ब्रह्म के साथ जीव के एकाकार हो जाने से ही होगी—

यह बताया झर सुमन ने, यह सुनाया मूक तृण ने,
यह कहा बेसुध पिकी ने, चिरपिपासित चातकी ने,
सत्य जो दिव कह न पाया था अमिट सन्देश मे।

कवयित्री खोज को प्राप्ति और साधना को सिद्धि, रुदन का सुख और विरह का मिलन मानती हैं—

खोज ही चिरप्राप्ति का वर, साधना ही सिद्धि सुन्दर,
रुदन मे सुख की कथा है, विरह मिलने का प्रथा है,
शलभ जलकर दीप बन जाता निशा के शेष मे।

इस तरह वह स्वप्न को विस्मय मानती हुई आगे कहती है

मदिर मधु से स्वप्न में मिल,
ज्वाला में पुल ताप में गिल,
प्रिय मुझो में खो गया अब दूत को किस देश भेजूं ?

कवयित्री मानती है कि ज्वाला के बीच ही हृदय पुष्प विकसित होंगे। इसीलिए वेदना को अपनी धरोहर स्वीकार करती है—वेदना पाई धरोहर, प्रभु, की निधि पर पली मैं।

उनके सारे गीतों की काव्य प्रेरणा के मूल में अप्रकाशित गीत बीज रूप है—

मैं कण-कण में ढाल रही अलि,
आँसू के मिस प्यार किसी का,
मैं पलकों में पाल रही हूँ,
यह सपना सुकुमार किसी का।

स्वप्न, दुःख विरह करुणा के समानान्तर होने पर भी उनके सम्पूर्ण काव्य का विषय एक ही है। वह दुःख को सम्मिलन में बदलकर धरोहर को खोना नहीं चाहतीं। पीड़ा उन्हें सर्वाधिक प्रिय है और वे एकाकारता की स्थिति में हैं। पीड़ा ही उनकी बड़ी निधि है। इस पीड़ा में दृढ़ता है माधुर्य है, निजत्व है प्रेरणा है, आत्मीयता है और है चिरन्तन तक पहुंचने का मूक संकेत भी।

नीहार, रश्मि, नीरजा सान्ध्यगीत और दीपशिखा के गीतों में वेदना प्रियता है। मगर सप्तपर्णा में भी कवयित्री को विरह प्रसंगों के अनुवाद ही प्रिय लगे हैं। पहले के गीतों में विरह के कारण अधिक छटपटाहट है, किन्तु बाद में चलकर दुःख उदात्त होने के कारण गम्भीर हो गया है। अपनी भूमिकाओं में महादेवी जी ने अपने दुःखवाद के मनोवैज्ञानिक इतिहास को प्रकट किया है। महादेवी का यह दुःखवाद व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख होता गया है।

दुःखवाद के इस विवेचन के क्रम में कृष्णोपासिका मीरां और साधिका महादेवी की तुलना समीचीन है। मीरां और महादेवी अपने अपने युग की अमर साधिका हैं। मीरां और महादेवी की परिस्थितियाँ भिन्न हैं। भक्ति दोनों में है। मीरां सगुणोपासिका थी किन्तु महादेवी के प्रिय कण कण में व्याप्त हैं। मीरां में तन्मयता अधिक है उसने प्रभु प्राप्ति के लिए लोक लज्जा को भी तिरस्कृत कर दिया है प्रेम की टीस के कारण वह मिलन चाहती हैं। किन्तु महादेवी टीस को पसन्द करती हैं मिलन को नहीं। मीरां की भक्ति में विह्वलता है। जैनेन्द्र जी को महादेवी में इस विह्वलता का अभाव दीखता है। मीरां की वेदना को उन्होंने प्राणगत माना है महादेवी की वेदना को बुद्धिगत। महादेवी घायल की वेदना को नहीं जान सकी है—

क्योंकि वह घाव को चाहती हैं। वह प्यास चाहती हैं पानी नहीं। मगर मीरां मे तो प्यास के कारण पानी की खोज है। महादेवी म नखरे और नाज़ भी हैं—मीरां म अकृत्रिम निवेदन प्रधान है। मीरा खो गई हैं महादेवी अभिमानिनी बनी हैं। मीरां की वेदना म हृदय का दपण है महादेवा की वेदना जानबूझ कर लाई हुई लगती है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मीरां की परम्परा म महादेवी को बनलाने को कलाकार महादेवी को युगो पीछे फेंक देना मानते हैं। लेकिन आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी ने मीरां और महादेवी को एक ही परम्परा की अनुयायिनी कहा है।

यह ध्यातव्य है कि महादेवी मीरां वन भी नहा सकतीं, न मीरां महादेवी। दानो के युग मानदण्ड और मा यतायें अलग अलग हैं। मीरां को युगानुकूल भक्ति मिला, किन्तु आज के वज्ञानिक युग म उस ढंग के आचरण को विग्पिप्तता की सज्ञा दी जायेगी। यद्यपि विग्पिप्त और जोनियम एव भगवान में बहुत कम का पाथक्य होता है। कि तु जहां तक दु ख-दद का प्रश्न है महादेवी और मीरां दोनों मे इसका प्राधा य है। इसीलिए महादेवी को कुछ लाग आधुनिक युग की मीरां मानते हैं। श्री रघुवीरसिंह ने मीरां एव महादेवी के गीतो की कुछ पक्तियों में भाव साम्य दिखाया है। जसे—

(अ) सखी मेरी नींद नसानी हो,
पिय को पथ निहारत सिगरी रण विहानी हो।

—मीरा

पथ देख बिता दी रन मैं प्रिय पहचानी नहीं।

—महादेवी

(आ) पपइया रे पिय की वाणी न बोल।

—मीरां

मुखरपिक हौले-हौले बोल।

—महादेवी

मीरां में आवेगाधिक्य है, महादेवी मे धीरे धीरे गाम्भीय का गमन हुआ है। दोनों के विरहगीत के माध्यम से नि सृत हुए हैं।

महादेवी की वेदना म एक अव्यक्त क्चोट एव करुणा की परिव्याप्ति है। अपने जीवन की करुणा को उन्होंने गीतों म हार की तरह पिरोया है। महादेवी के प्राकृतिक चित्र भी पीडा को व्यक्त करने वाले हैं जाने किस जीवन की सुधि से लहराती आती मधु बयार।

प्रभात की शबनम को आँसुओं का रूप मानना उमडते नभ की पीडा एव

आंसुओ के रूप में चित्रित करना आदि इसके सकेत हैं। उनके प्राणो की बाती मन्द म द जलती है—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

महादेवी मीरों के बाद हि ी का य ससार की सबस बडा वदना वादिनी कवयित्री हैं। उनके काव्य मे स्वप्न कथन दन्न प्रेषण, नाम स्मरण आदि विरह की सभी द तदशाओ के वणन हुए हैं। नीरजा एव सा ध्यगीत उनकी उस मानसिक स्थिति को भी व्यक्त करते हैं जिसमे अनायास ही उनका हृदय सुख दु ख म सामजस्य का अनुभव करने लगा।

महादेवी के इस दु खवाद मे जीवन की धडकन है। इसमे उनका तन मन घुल गया है। *वे मनसा वाचा-कमणा इस अभाव की उपासिका बन बठी हैं।* इसीलिए इसकी स्वीकृति म अपने विस्तृत गद्य विचार भी उ होने लिखे हैं। वेदना की इस उपासिका के गद्य ग्र थो म भी वे नानुभूति मिलती है। उनके रेखाचित्र अभावो और विप नताओ म पलने वालो के गद्य उद्गीथ हैं। 'स्मृति की रेखायें' एव अतीत के चलचित्र' तथा श्रृखला की कडियाँ' मे उनका वेदनावादी हृदय ही प्रकट हुआ है। घीसा, बदलू, भक्तिन आदि के रेखाचित्रो मे अभावो की पूजा की योजना है। सचमुच महादवी करुणा की महागगा है। प्रयाग मे गगा, यमुना और महादवो की करुणा से आज भी सगम की पवित्रता अक्षुण्ण है।

महादेवी की वेदनानुभूति की गहराई प्रशान्त सागर की गहराई है। सागर के ऊपर तरगें हैं पर अतल मे तो शाि त का साम्राज्य है। महादवी के अधरोष्ठों पर भी हँसी नाचती रहती है किन्तु अन्तप्रदश म एक शून्य का हाहाकार छिपा रहता है। इस हाहाकार ने उ हे प्रब घो मुख नही हाने दिया। उनके सुख दु ख के आँसू ही गीतों के रूप में प्रब ध को चुनौती दे रहे हैं। यों वे किसी प्रब धकार से कम नहीं हैं। उनका साधना पथ तुषाराच्छादित हिमशिखा की ओर सकत करता है—जिस पथ मे कटक, तम वेदना आदि तो हैं पर समुपलब्धि है एक महत्तर वस्तु। वह इस पथ पर जाने मे मत्यु से भीत नही होती। मृत्यु जीवन का चरम विकास' उनका ध्यय है। वेदनावादिनी, अमर साधिका अभावो की रानी महादेवी महादेवी इस यग की ही नही, युग युग की उपासिका के रूप म मा य बनी रहेंगी। उनका सम्पूण जीवन पीड़ा का अश्रुसिक्त महाकाव्य है और उनके गीत इस महाकाव्य के पृष्ठ।

—

डॉ० वारीन्द्र कुमार वर्मा

६

महादेवी का पीड़ा दर्शन

छायावादी परम्परा में मानव-पीड़ा को नये सदर्भ देना और उसे नये संस्कार देकर किसी रहस्यमय अनुभूति का हर दिशा मे उदघाटन कर पाना महादेवी जी की अपनी विशेषता है। उनके चिन्तन के सम्बन्ध मे पीडावाद अथवा 'वेदनावाद' जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। किसी भी क्षेत्र म सिद्धांतों और प्रस्थापनाओं का प्रतिपादन और उनका किसी वैशिष्ट्य के साथ ग्रहण किया जाना वाद कहला सकता है। अत जीवन की भूमिका म दु ख सम्बन्धी सिद्धांतो और प्रस्थापनाओ की चर्चा मान्यताओ के रूप म अगर की जा सकती है, तो उसे दु:खवाद कहा जा सकता है। भारतीय दर्शन क समस्त प्रकारो मे किसी न किसी रूप म यह व्यक्त भी होता रहा है। ससार से आत्मा की मुक्ति का परम आदर्श ही भारतीय दर्शन और संस्कृति का सार है। ससार' शब्द का मतलब ही दु ख होना है। बुद्ध ने तो स्पष्ट रूप में सब दुख' का उदघोष किया। अत ससार से मुक्ति अथवा दु ख का निवारण ही दर्शन की मुख्य समस्या रही है। लेकिन ऐसे दर्शन की पीठिका मे महादेवी जी ने पीडा की युगव्यापी परम्परा मे जीवन के निकट शाश्वत सत्य की अभिव्यक्ति की अनिवार्यता को पहचाना है और प्रकृति के रहस्यमय सौंदय के साथ जीवन की तमाम उपलब्धियों और सभावनाओ को व्यक्त रूप देते हुए देखा है और इसलिए ही शायद उन्होंने पीडा को सत् और शाश्वत, सचेतन, शुचिमय गरिमामय तथा सौंदय से पूर्ण भी माना है।

फिर भी प्रश्न बना रहता है कि क्या सचमुच ही पीडा दर्शन जैसा कोई दर्शन हो सकता है? बुद्ध की बात दूसरी थी। चारो आर्य सत्य—कि जगत म दु ख ही है कि उसका कारण अथवा उसकी एक कारण शृ खला है, कि दु ख का निवारण सभव है और वह अष्टाग मार्ग के अनुसरण की रीति म सम्पन्न होता है और यह कि निर्वाण परम लक्ष्य है—नीति की आवश्यकता के साथ तत्त्वज्ञान की सम्पूर्ण दार्शनिकता लिए हुए हैं। निर्वाण आत्म निषेध में है क्योंकि परिवर्तन ही सत्य नियम है और इसीलिए किसी भी तरह का स्थायित्वमात्र एक भ्रम है। लेकिन यह बात महादेवी जी को स्वीकाय नहीं। बौद्ध धर्म की करुणा का हर स्पन्दन उनम समा गया और वह एक विह्वलता लिए सहसा गा उठीं—

जाग बेसुध जाग !
अश्रु कण से उर सजाया त्याग हीरक-हार
भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रति द्वार
शूल जिसने फूल छू चन्दन किया संताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पदचाप
करुणा के दुलारे जाग ![1]

किन्तु, वह अनित्य दर्शन न तो उनकी बुद्धि को ग्राह्य हुआ और न उनकी अखण्ड का संवेदन प्राप्त करने वाली अनुभूति को। चिर, अनादि और असीम की सत्ता में उनका विश्वास दृढ है। परन्तु यह विश्वास कदाचित् उन्होंने दार्शनिक की बौद्धिकता के बल पर प्राप्त नहीं किया, अपितु कवि की संवेदनशीलता और भावमयता की भूमि पर उसे अनायास ही जिलाया है। कवि और दार्शनिक के बीच सम्बन्ध और परस्पर अन्तर की बात कहते हुए उन्होंने यह कहा भी है कि जहाँ तक सत्य के मूल स्वरूप का प्रश्न है, दोनों ने उसे अपनी अपनी विशिष्ट राहों पर चलकर एक-सा ही पाया है। एक में हृदय एकता की अनुभूति देखकर विभेद की ओर संकेत करता है तो दूसरे में बुद्धि भेद, अन्तर या विविधता की रीति में एकता की ओर संकेत करती है। सत्य एक है, किन्तु देश काल की परिधि में परिवर्तन के नाम पर विविधता और अनेकता में व्यक्त होता रहता है। फिर भी इस परिधि में बँधे रहकर भी अनुभूति हम परिधि के पार ले जाती है। अस्थिरता में स्थायित्व क्षण भंगुरता में अमरत्व, ससीमता में असीमता, विनष्टि में सृजन और अनेकता में एकता, सब अनुभूत सत्य ही हैं। इनमें परस्पर विरोध नहीं, बल्कि अस्थिरता, क्षण भंगुरता, ससीमता विनष्टि एवं अनेकता सत्य तक हमें पहुँचा देते हैं। 'तट पर एक ही स्थान पर बैठे रहकर भी हम असंख्य नई तरंगों को सामने आते और पुरानी लहरों को आगे जाते देखकर नदी से परिचित हो जाते हैं। वह किस पर्वतीय उद्गम से निकल कर कहाँ-कहाँ बहती हुई किस समुद्र की अगाध तरलता में विलीन हो जाती है, यह प्रत्यक्ष न होने पर भी हमारी अनुभूति में नदी पूर्ण है और रहेगी।'[2] अनुभूति में मिला यह एकता का सत्य बाह्यरूपों की अनेकता अर्थात स्थूल की गतिशीलता के साथ हमारी आन्तरिकता यानी सूक्ष्म की व्यापकता और उसके जीवनव्यापी सामंजस्य की स्थिति में सम्भव हो पाया।

अतएव स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक फैलने वाले गतिशील किन्तु स्थायी सत्य की पकड़ और अभिव्यक्ति जितनी अधिक आन्तरिकता लिए होगी—जिसमें अन्तर का जीवनव्यापी दृष्टिकोण एवं सामंजस्य सन्निहित हो उतनी ही अधिक मात्रा में सौन्दर्य की उपलब्धि होगी। स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्मतम तक का व्यापार सहज और सत्य है,

१ नीरजा
२ दीपशिखा चिन्तन के कुछ क्षण

और सौंदय रहस्य की ऊपा म नित नये रूपो में हर प्रभात खिलने लगता है ? अतएव सीमा असीम के सत्य को बांधे है और बधन मुक्ति को लिये हुए है और दोनो स्थितियो म यहाँ से वहाँ तक सौंदय बिखरा पडा है। लौकिक से अलौकिक तक का क्रम अविच्छिन है, या यो कहना चाहिये कि दोना की एकता अटल है। अत केवल इतना भर कह देना जैसे पर्याप्त नही है कि—

प्रिय मैं सीमा की गोद पली
पर हूँ असीम से खेली भी

अपितु सम्बध-व्यापार का और अधिक स्पष्ट करना जरूरी है—

चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम
मधुर राग तू मैं स्वर-सगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम
काया छाया मे रहस्यमय
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या।[1]

लौकिक अलौकिक तक पहुँचाने का साधन मात्र ही रह गया, 'बीन' और 'रागिनी' दोनों एक ही रहे। साधना ही सिद्धि सुदर बन रही[1] और फिर अलौकिक के साथ तादात्म्य कर पाने क लिए 'कण-कण से परिचित हो जाना कितना स्वाभाविक है। लेकिन यह परिचय बुद्धिगत ज्ञान की चीज नहीं, उसमे अतर की स्निग्धता और अपनापन है। तभी वह सम्पूण भाव सौदय के साथ इस रूप मे व्यक्त हो पाया— तुमको पीडा मे ढूढा, तुममे ढूढूगी पीडा।

रहस्य की दिशा मे अनुभूति की यह एकता द्वैत का स्वीकार नही करती। किन्तु ज्ञान की सभी दशाओं मे और नहीं तो कम-से कम ज्ञाता और ज्ञेय का ही द्वैत बराबर रहता है। अपने इष्टदेव के प्रति श्रद्धाभक्ति दशन की दृष्टि से अथवा तक की दृष्टि से सम्पूण तादात्म्य का सत्य नही कही जा सकती। किसी विशेष क्षण की अनतता म एकता को भोग पाना भले ही सम्भव हो जाये, किन्तु भक्ति भावना की कोई भी रीत भक्त और भगवान के बीच पूण तादात्म्य की स्थिति उत्पन नही कर सकती। दोनो ही अलग-अलग बातें हैं जिनका दशन मे मल नहीं हो सकता। फिर भी महादेवी जी की कविताओ म दोनो ही बातें हैं। अलौकिक के बीच आत्मसमपण की आकुलता केवल आशिक तादात्म्य तक सीमित है, तभी दो का भेद भी उसकी पूजा आकाक्षा म है—

तम के पर्दे मे छिपकर, भाता प्रियतम को आना,
ऐ नभ की तारावलियो, तुम पल भर को छिप जाना।

लेकिन किसी विशेष क्षण म यही आत्मसमपण स्वय ही इस प्रकार सिद्ध हो जाता

१ नीरजा

जाग बेसुध जाग !
अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक-हार
भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रति द्वार
शूल जिसने फूल छू चन्दन किया सन्ताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पदचाप
करुणा के दुलारे जाग ![1]

किन्तु वह अनित्य-दर्शन न तो उनकी बुद्धि को ग्राह्य हुआ और न उनकी अखण्ड का संवेदन प्राप्त करने वाली अनुभूति को। फिर, अनादि और असीम की सत्ता मे उनका विश्वास दृढ है। परन्तु यह विश्वास कदाचित् उन्होने दार्शनिक की बौद्धिकता के बल पर प्राप्त नहीं किया, अपितु कवि की संवेदनशीलता और भावमयता की भूमि पर उसे अनायास ही जिलाया है। कवि और दार्शनिक के बीच सम्बन्ध और परस्पर अन्तर की बात कहते हुए उन्होने यह कहा भी है कि जहाँ तक सत्य के मूल स्वरूप का प्रश्न है, दोनो ने उसे अपनी अपनी विशिष्ट राहो पर चलकर एक-सा ही पाया है। एक में हृदय एकता की अनुभूति देखकर विभेद की ओर संकेत करता है तो दूसरे मे बुद्धि भेद, अन्तर या विविधता की रीति म एकता की ओर संकेत करती है। सत्य एक है, किन्तु देश काल की परिधि मे परिवर्तन के नाम पर विविधता और अनेकता म व्यक्त होता रहता है। फिर भी इस परिधि मे बँधे रहकर भी अनुभूति हमे परिधि के पार ले जाती है। अस्थिरता म स्थायित्व, क्षण भगुरता मे अमरत्व, ससीमता मे असीमता, विनष्टि म सृजन और अनेकता म एकता, सब अनुभूत सत्य ही हैं। इनमें परस्पर विरोध नही, बल्कि अस्थिरता, क्षण भगुरता, ससीमता विनष्टि एव अनेकता सत्य तक हम पहुँचा देते हैं। 'तट पर एक ही स्थान पर बैठ रहकर भी हम असख्य नई तरगो को सामने आते और पुरानी लहरो को आगे जाते देखकर नदी से परिचित हो जाते हैं। वह किस पर्वतीय उद्गम से निकल कर कहाँ-कहाँ बहती हुई किस समुद्र की अगाध तरलता मे विलीन हो जाती है, यह प्रत्यक्ष न होने पर भी हमारी अनुभूति म नदी पूर्ण है और रहेगी।"[2] अनुभूति मे मिला यह एकता का सत्य बाह्यरूपो की अनेकता अर्थात स्थूल की गतिशीलता के साथ हमारी आन्तरिकता यानी सूक्ष्म की व्यापकता और उसके जीवनव्यापी सामजस्य की स्थिति मे सम्भव हो पाया।

अतएव स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक फलने वाले गतिशील किन्तु स्थायी सत्य की पकड और अभिव्यक्ति जितनी अधिक आन्तरिकता लिए होगी—जिसम अन्तर का जीवनव्यापी दृष्टिकोण एव सामजस्य सन्निहित हो उतनी ही अधिक मात्रा में सौन्दय की उपलब्धि होगी। स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्मतम तक का व्यापार सहज और सत्य है,

१ नीरजा
२ दीपशिखा चिन्तन के कुछ क्षण

और सौंदय रहस्य की ऊपा मे नित नये रूपा मे हर प्रभात खिलने लगता है ? अतएव सीमा असीम के सत्य को बाँधे है और बन्धन मुक्ति को लिये हुए है और दोनो स्थितियों मे यहाँ से वहाँ तक सौंदय बिखरा पडा है। लौकिक से अलौकिक तक का क्रम अविच्छिन्न है, या या कहना चाहिये कि दोना की एकता अटल है। अत केवल इतना भर कह देना जसे पर्याप्त नही है कि—

प्रिय मैं सीमा की गोद पली
पर हूँ असीम से खेली भी

अपितु सम्बन्ध-व्यापार का और अधिक स्पष्ट करना जरूरी है—

चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम
मधुर राग तू मैं स्वर-सगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम
काया छाया मे रहस्यमय
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या।[1]

लौकिक अलौकिक तक पहुँचाने का साधन मात्र ही रह गया, 'बीन' और 'रागिनी' दोनो एक ही रहे। 'साधना ही सिद्धि सुन्दर बन रही!' और फिर अलौकिक के साथ तादात्म्य कर पाने के लिए 'कण-कण से परिचित हो जाना कितना स्वाभाविक है। लेकिन यह परिचय बुद्धिगत ज्ञान की चीज नहीं, उसम अन्तर की स्निग्धता और अपनापन है। तभी वह सम्पूण भाव सौन्दय के साथ इस रूप मे व्यक्त हो पाया—तुमको पीडा मे ढूढा, तुममे ढूढूगी पीडा।

रहस्य की दिशा मे अनुभूति की यह एकता द्वत का स्वीकार नही करती। किन्तु ज्ञान की सभी दशाओ मे और नहीं तो कम-से कम ज्ञाता और ज्ञेय का ही द्वैत बराबर रहता है। अपने इष्टदेव के प्रति श्रद्धाभक्ति दशन की दृष्टि से अथवा तक की दृष्टि से सम्पूण तादात्म्य का सत्य नही कही जा सकती। किसी विशेष क्षण की अनन्तता में एकता को भोग पाना भले ही सम्भव हो जाये, किन्तु भक्ति भावना की कोई भी रीत भक्त और भगवान के बीच पूण तादात्म्य का स्थिति उत्पन्न नही कर सकती। दोनो ही अलग अलग बातें हैं जिनका दशन मे मेल नहीं हो सकता। फिर भी महादेवी जी की कविताओ में दोनो ही बातें हैं। अलौकिक के बीच आत्मसमपण की आकुलता केवल आशिक तादात्म्य तक सीमित है, तभी दो का भेद भी उसकी पूजा आकाक्षा में है—

तम के पर्दे में छिपकर, आता प्रियतम को आना,
ऐ नभ की तारावलियो, तुम पल भर को छिप जाना।

लेकिन किसी विशेष क्षण म यही आत्मसमपण स्वय ही इस प्रकार सिद्ध हो जाता

१ नीरजा

है कि अनायास सम्पूर्ति और उसमे मिलने वाला ऐक्य स्वानुभूति और सत्य का ही असली रूप है। फिर पूजा अचना की कोई आवश्यकता नही रह जाती क्योकि दो होने का भाव ही नही रह जाता—

क्या पूजा क्या अर्चन रे !
उस असीम का सुदर मन्दिर, मेरा लघुतम जीवन रे।[1]

भाषा की अपनी सीमाएँ हैं। वह द्वैत म ही पलती है, इसलिए अनन्त की एकता का वह शब्दो म व्यक्त नही कर सकती। फिर भी एकता की दिशा मे सकेत अवश्य कर सकती है। यही सकेत 'क्या पूजा क्या अचन रे' इस पक्ति से मिल जाता है। लेकिन 'असीम' का तथा लघुतम जीवन का उल्लेख होते ही जसे दो का होना सिद्ध हो जाता है। भाषा की कठिनाई के अतिरिक्त कवयित्री की आन्तरिक भक्ति भी इसका कारण है, और इस भक्ति ने ही सही माने मे उनकी कला को सुदर बना दिया है। भाव की भूमि पर उनकी यह पक्ति कितनी सुदर है—

मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे।
स्नेह भरा जलता है झिलमिल, मेरा यह दीपक मन रे।

अतएव यह कहा जा सकता है कि बुद्धि के स्तर पर जो हमे स्वीकार नहीं, वह भाव की भूमि पर अचानक सीमा कठिनाइयो के बावजूद भी हमे मिल सकता है। इसलिए एकता और अनेकता आदि के सम्बन्ध म तमाम दाशनिक विवादों और प्रतिपत्तियों तथा तक-प्रस्थापनाओ की बात न करते हुए मोटे तौर पर एकता को एक अनुभूत सत्य मानना भर उचित है, और फिर यह अधिक महत्त्व नहीं रखता कि यह एकता भक्ति की रीति मे आशिक रूप म ही व्यक्त हुई है अथवा आत्मानुभूति की सम्पूर्ति मे पूर्णता के साथ। आत्मानुभूति की सम्पूर्ति विशेष क्षणों मे प्राप्त हो जाती है, किन्तु इन विशेष क्षणो के बिना भक्ति को स्वीकार तो किया ही जा सकता है। दोनो बातो मे अगर विरोध है तो सिफ इसलिए कि दोनो ही एक साथ एक ही समय मे नहीं घट सकती। लेकिन इससे क्या बारी बारी से अथवा एक के बिना दूसरे को सत्य के आदश मे ग्रहण तो किया जा सकता है।

हार तो खोऊ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम मे निर्वासन,
जीत बनू तेरा ही बन्धन,
भर लाऊ सीपी मे सागर।
प्रिय ! मेरी अब हार विजय क्या ?

---

१ आधुनिक कवि

अगर जीवन के क्षणों मे हार गये तो अपनी असहायावस्था, असफलता, विवशता और सीमा मे अपने 'स्व' को भूनकर हम ईश्वर के प्रति निष्ठा-आराधना मे लग जाते हैं और असीम की भक्ति के बोध को पाकर अपने मे आस्था और जीवन का सचार कर पाते हैं। अपनेपन' से निर्वासित स्व प्रियतम तक पहुँचता है। यह तो हुई भक्ति की बात। दूसरे मे स्व के सम्पूर्ण विस्तार की बात है। अगर जीत होती रही तो ससीमता को अनन्त शक्ति का विस्तार मिल जायेगा। असीम का सत्य आत्मा की पूर्णता मे बँधा ही रह पायगा। अगर सीमा मे असीम को बाँधा जा सकता है, अगर सीपी मे सागर भरा जा सकता है, तो फिर हार और जीत जसे शब्दो का भला क्या मतलब! सौ सौ मुक्तियाँ भी लघुतम बन्धन मे सच हो जाती हैं—

प्रिय मैं लेती बाँध मुक्ति,—
सौ सौ, लघुतम अपने बंधन मे।

जीवन मे जीत हार सुख दुःख सभी आते हैं, किन्तु सभी हमे स्वीकाम होने चाहिएँ। जहाँ भी सम्पूर्ण स्वाभाविकता से ग्रहण न करते हुए हम ठिठक गए वहीं आत्मा का खडन हो गया बन्धन की सीमा मे अनेक घेरे बन गए और विरूपताएँ तथा विकृतियाँ पदा हो गई। इसलिए एक अलगाव एक समन्वयदर्शी भाव का जीवन मे अपनाया जाना बहुत महत्त्व रखता है। जीवन की परिभाषा पर भी इसका असर पडता है। जीवन फिर एक समझौता बन जाता है। नियतिवाद एक सत्य सिद्धान्त बन जाता है।

महादेवी जी ने भी नियति और समझौते की बातो को स्वाकार किया है। नियतिवाद अकर्मण्यता को जन्म भर देना हो, ऐसी बात भी नहीं—

यह नियति तिमिर-सागर अपार,
बुझते जिसमे तारक अङ्गार,
मैं प्रथम रश्मि-सी कर शृङ्गार
आ अपनी छवि से ज्योतिमय,
कर देती उसकी लहर लहर।[१]

लेकिन हाँ उनम जीवन से समझौता कर लेने का सन्तोष है कहीं कोई रोष नहीं, कहो कोई खीझ नहीं—

पल पल के उडते पृष्ठों पर
सुधि से लिख श्वासों के अक्षर,
मैं अपने ही बेसुधपन मे,
लिखती हूँ कुछ कुछ लिख जाती।[२]

१ नीरजा
२ नीरजा

अपनी आकाक्षा की रेखा और नियति की लेखा मे कोई सामजस्य नही, लेकिन कुछ का कुछ लिखा जाने पर भी कही कोई क्रोध नही, कोई क्षोभ नहीं, 'लिखना था कुछ, कुछ क्यो लिखती' ऐसी खीझ नही, और न इस तरह प्रश्न पूछने की ही कोई उत्कठा। सब कुछ जसे एकदम स्वाभाविक है और सबको सम्पूर्ण स्वाभाविकता के साथ आत्मसात कर जाना ही जीवन की सबसे बडी शक्ति और उपलब्धि है। यह शक्ति फिर आती कहाँ से है ? यह उपलब्धि फिर सभव किस प्रकार होती है ? —प्रकृति और जीवन को निकट से परखने और अपनी अनुभूति की आतरिकता मे उनकी सभी स्थितियो को भोगने से ही।

और यही महादेवी जी के पीडा दशन का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। पीडा दशन' शब्द का उपयोग तत्त्व ज्ञान की सम्पूण दाशनिकता के अथ म नही हुआ है। हो भी नही सकता यह पहले ही कहा जा चुका है। दाशनिक के दशन और कवि के दशन मे बहुत अतर होता है भले ही दोनो एक ही सत्य की बात क्यो न करें। अतएव स्पष्ट है कि कथित शब्द का प्रयोग वास्तव मे कवि के दशन के रूप मे ही किया गया है। पीडा अथवा दुख की अनुभूति जीवन के स्थूल धरातल की विषमता से लेकर सूक्ष्मतम धरातल पर आत्मा की प्यास म अभिव्यक्त होती बाह्य जगत की कठोर सीमाएँ और अतजगत की असीमता की अनुभूति दुख को जीवन के आन्तरिक आयाम पर इस प्रकार फलने देती हैं कि वह 'आन्तरिक सामजस्य प्राप्ति के लक्ष्य' को लेकर विस्तार पाता जाता है। किन्तु बाह्य सामजस्य देने का आग्रह" स्थूल धरातल की अनिवायताओ मे जन्म लेने वाले दुख मे है। समाज मे आर्थिक समता का आधार भी कदाचित् यही है। बाह्य सामजस्य की स्थिति की तुलना मे आतरिक सामजस्य एकानुभूति या तादात्म्य भावना में घटित होता है। फिर भी मूलत दोनो म अन्तर नही। लेकिन तरीके बदल जाते हैं। स्वय महादेवी जी लिखती हैं—

'लक्ष्यत एक होने पर भी अतजगत के नियम को भौतिक जगत् नहीं स्वीकार करता। उसमे हमे अपनी गहराई मे दूसरो को खोजना पडता है और इसमे दूसरों की अनेकता मे अपने आपको खो देना। दूसरे की आखें भर लाने के लिए हमे अपने आँसुओं मे डूब जाने की आवश्यकता रहती हैं, परन्तु दूसरे के डबडबाए हुए नेत्रों की भाषा समझने के लिए हमे अपने सुख की स्थिति को, दूसरे के दुख मे अपने दुख को मिलाकर बोलना है। तब उसके कठ मे दो का बल होगा। जब तीसरा उन दोनों के दुख मे अपना दुख मिलाकर बोलता है तब उसके कठ मे तीन का बल होगा। और इसी क्रम म जो असख्य व्यक्तियो के दुख मे अपना दुख खोकर बोलता है उसके कठ मे असीम बल रहना अनिवाय है।' और कवयित्री होने के नाते दुख

१ दीपशिखा

की शक्ति, स्वभाव, शुचिता और गरिमा की महिमा को वह नही भूल सकती। 'रश्मि' म अपने दु खवाद की बात कहते हुए वह लिखती हैं कि *दुख मेरे निकट जीवन का* ऐसा काय है जो सारे ससार को एक सूत्र मे बाध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असख्य सुख हमे चाहे मनुष्यता की पहली सीढी तक भी न पहुचा सकें किन्तु हमारा *एक बूंद आसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उवर बनाये बिना नहीं गिर* सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दु ख सबको बाटकर—विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना मे अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र मे मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

दु ख सुख स अधिक बडा और मूल्यवान है। सुख की सीमाएँ हैं किन्तु दु ख असीम है। एक क्षणिक है तो दूसरा शाश्वत। सुख के साझे में बसे मानवीय मूल्यो की सष्टि नही होती जमे दु ख को बँटा लेने की रीति में। दया, करुणा और सहानुभूति ये सभी मूल्य हैं और यह दु ख की साझेदारी मे ज म लेते हैं और इस तरह की साझेदारी एकता के सत्य पर ही आधारित है। लेकिन सुख व्यष्टिकेन्द्र म बँधकर एकता से दूर ही रहता है, फिर उसम अन्तिम सत्य की परिणति और अभिव्यक्ति कैसे सभव हो सकती है? एक कारण और भी है। दु ख जितना तीव्र, सक्रिय और सचेतन होता है उतना ही सुख अपने विकास मे विस्मृति लिए हुए होता है और निष्क्रिय होता जाता है। सुख में अगर विस्मृति पलती है तो दु ख म सजीवता। और इस चेतन सजीव और सक्रिय दु ख की व्यापकता अन त है। दद और दाह कहाँ नही है? प्रकृति के सभी उपकरणो म तथा मानव के सभी व्यापारो म स्थूल से सूक्ष्मतम *धरातल तक सभी जगह ताप और पीडा पाई जाती है। दु ख का महत्व एक दृष्टि से* और भी है। वह सुख की सभावना को सत्य बनाए रखता है और उसे साथकता प्रदान करता है। सुख, साधें और स्वप्न सभी पीडा के सत्य म सत्य हुए हैं—

(१) लौ ने वर्ती को जाना है
वर्ती ने यह स्नेह, स्नेह ने
रज का अ चल पहचाना है।[1]

(२) रुदन मे सुख की कथा है
विरह मिलने की प्रथा है।[2]

सुख और स्नेह और मिलन, क्रन्दन ज्वाला और विरह स ही सत्य हुए। अभिलाषाएँ और स्वप्न अभाव से ही जनमते हैं। 'वेदना जल, स्वप्न-शतदल' वेदना के जल म ही स्वप्नो के फूल खिलते हैं। यही बात अभिलाषाओ के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है—

१ २ दीपशिखा

साधें करुणा अङ्क ढली हैं,
सान्ध्य गगन-सी रंगमयी पर
पावस की सजला बदली हैं।[१]

अन्य मानव-व्यापार भी अछूते नहीं। आत्मा की बन्धन से मुक्ति की प्यास और छटपटाहट मे, संघर्ष और शक्ति की हर आजमाइश मे, अन्तर्द्वन्द्व मे अपनी शक्ति के ही खण्डन मे राग की आसक्ति मे और त्याग की तपस्या मे, जिज्ञासा की बेचैनी मे अभाव की टीस मे, असफलता के बोध में, विवशता के बोझ में, निराशा और कुण्ठा में भय और क्रोध और घृणा में प्यार के नाना व्यापारों, प्रतीक्षा की आकुलता मे, आकांक्षा आशंका कातरता, शिकायत रुठन, विरह और स्मृति के दंशन मे, श्रम की चेष्टा और थकन में करुणा के विगलित होने मे, सहानुभूति की सान्द्रता मे, उल्लास और स्पन्दन सभी मे दुःख व्याप्त है। प्रकृति के सृजन, विकास और विनष्टि के हर क्रम अथवा हर चरण मे भी यही दुःख विद्यमान है। अतः जगत और जीवन को पीड़ा और करुणा और सहानुभूति के माध्यम समझना आवश्यक है। अतः पीड़ावाद पीड़ा के द्वारा जीवन और जगत् के एकात्म तत्त्व को तथा एकानुभूति के सत्य को ही व्यक्त करने का प्रयास करता है, और उस निराशावाद की छाया भी उस पर नहीं पड़ सकती जो जीवन की समस्त गति को निस्पंद बना देता है। दुःखवाद में आस्था का ही वरदान है और एक ही प्रार्थना आकांक्षा है—

जले दीप को फूल का प्राण दे दो,
शिखा लय भरी, साँस को दान दे दो,
खिले अग्नि पथ मे सजल मुक्ति जलजात!
अब धरा के गान ऊबे,
मचलते हैं गगन छूने,
किरण रथ दो,
सुरभि पथ दो
और कह दो अमर मेरा हो चुका संदेश।

(दीपशिखा)

और, मैं समझता हूँ हम सभी का मन इस प्रार्थना को दुहराने का ही होगा।

— —

१ दीपशिखा

डॉ देवेन्द्र कुमार

11

महादेवी की कविता में प्रकृति

समय के सन्दर्भ म कविता और प्रकृति की नियति एक है, क्योंकि दोनो मे उसकी प्रतिक्रिया बिम्बित होती है। यह प्रतिक्रिया मनुष्य हृदय में भाव बनती है और प्रकृति में दृश्य। प्रसिद्ध सस्कृत नाटककार भवभूति का कथन है कि निर्विकार चित्त में उत्पन्न विक्रिया ही भाव है। प्रकृति के विभिन्न दृश्य एक ही समय की दो प्रतिक्रियाएँ हैं। समय ही वह सूत्र है जो कविता की नियति को प्रकृति की नियति से बाँधता है। समय-बोध—आधुनिकतम काव्य बोध की आत्मा है और आधुनिक कवि समय के प्रति अपने आपका प्रतिबद्ध पाने के लिए विवश।

महादेवी की कविता में प्रकृति को समझने के लिए स्वय उनकी कविता को प्रकृति को समझना होगा। साधारण मान्यता यह है कि उनका कवि-व्यक्तित्व छाया वाद और रहस्यवाद की सीमाओ में आबद्ध है और यह मान्यता एक सीमा तक ठीक है। फिर भी उनके 'कवि व्यक्तित्व' के मूल्याकन का यह सम्पूण परिप्रेक्ष्य नहीं है क्योंकि महादेवी के लिए कविता वादो की अभिव्यक्ति न होकर, उनकी आत्मसाधना की अभिव्यक्ति है। अनुराग रजित समपण उनके काव्य की आत्मा है, वेदना उसको लय है और प्रकृति के चित्र उसके एकमात्र साक्ष्य। वह स्वय लिखती हैं—'प्रत्यक्ष सामञ्जस्य और सौन्दय की अनुभूति अपने मूल मे रहस्यानुभूति होती है। अपनी अपूणता को किसी पूण आदश की कल्पना मे करने की लालसा मनुष्य मे जन्मजात होती है, अपूण का पूण के साथ तादात्म्यभाव माधुर्य भाव के द्वारा ही सम्भव है। अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बिन्दुओं का एक कारण और एक ही मूल्य है। प्रकृति मनुष्य के मोहज्ञान का प्रतिबिम्ब न होकर, एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर है, अब प्रकृति की अनेकरूपता और परिवतनशील विभिन्नता मे कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया है कि जिसका एक छोर असीम चेतन है और दूसरा छोर ससीम हृदय मे समाया हुआ है।' इस तरह महादेवी के लिए प्रकृति ईश्वरीय रचना का एक अग है और ससीम और असीम के बीच एक योजक सूत्र भी।

महादेवी जी की साधना समर्पित होने के साथ नियोजित है जो चार यामो म विभक्त होकर 'दीपशिखा' में कालातीत हो रहती है। कालातीत से अभिप्राय यह है

कि वह 'साध्यगीत' में विकास के सत्य को यद्यपि पा लेती है, उसके बाद जो शेष रहता है वह है समय की सत्ता और आत्मा की टेक के बीच प्रतियोगिता। 'नीहार' की बालसुलभ जिज्ञासा से लेकर 'दीपशिखा' की अखंड साधना तक उनकी अनुभूति प्रकृति के कनवास पर अंकित होती है, उनकी राग चेतना की हर अनुभूति प्रकृति में अपने को मूर्त पाती है।

'नीहार' की एक मधुमती रात में देवी जी अनुभव करती हैं कि प्रिय की मुस्कान उन्हें मधुपीड़ा में डुबो गई है। रुपहली चाँदनी में स्नात उस रात में जब वसंत कलियों से मदिरा का मूल्य पूछ रहा था, जब उन्मद पवन हिमकणों को धूल में मिला रहा था और जब देवी जी कल्पना का जाल बुन रही थी, तभी अचानक प्रिय उन्हें जीवन का संगीत सिखा गया

"निशा को धो देता राकेश, चाँदनी मे जब अलकें खोल,
कलि से कहता था मधुमास, बता दो मधुमदिरा का मोल,
भटक जाता था पागल वात, धूलि मे तुहिन कणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत, तभी तुम आए थे इस पार,
बिछाती थी सपनों के जाल तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गयी वह अधरों की मुसकान मुझे मधुमय पीड़ा मे बोर।"

अब उन्हें लगता है कि उनकी जिज्ञासा समूची प्रकृति मे व्याप्त है और प्रिय को खोजने मे व्यस्त है

"वनबाला के गीतों-सा निर्जन मे बिखरा है मधुमास,
इन कुंजों मे खोज रहा है सूना कोना मंद बतास।"

अथवा

"नभ को छूने मचली-सी लहरों का कर कर चुम्बन,
बेसुध तम की छाया का तटनी करती आलिंगन।"

एक दूसरे चित्र म किरणो और किसलयों की आँखमिचौनी अंकित है

"पल्लव के डाल हिंडोले सौरभ सोता कलियों में,
छिप छिप किरनें आतीं जब मधु से सींची गलियों में।"

× × ×

'मैं फूलों मे रोती वे बालारुण मे मुसकाते,
मैं पथ में बिछ जाती हूँ वे सौरभ में उड़ जाते।"

साधना की भयंकर गहनता भी व प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करती है

"तरगें उठीं पर्वताकार, भयंकर करतीं हाहाकार
अरे, उनके फेनिल उच्छ्वास तरी का करते हैं उपहास
हाथ से गई छूट पतवार कौन पहुँचा देगा उस पार।'

मनुष्य-जीवन और सुमन के अन्त म वह एक ही सत्य प्रतिबिम्बित देखती हैं —

"था कली के रूप शैशव में ग्रहो सूखे सुमन
मुस्कराता था, खिलाती ग्रक में तुझ को पवन।"

क्षणिकता के साक्षात्कार ने उनके जीवन को तपोवन' बना दिया है जिसमे प्रकृति के उद्दीपन का प्रवेश निषिद्ध है —

"यहाँ मत आग्रो मत्त समीर, सो रहा है मेरा एकात !
बनाग्रो इसे न लीलाभूमि तपोवन है मेरा एकान्त।"

× × ×

'न कर हे निष्ठुर भग समाधि, साधना है मेरा एकात।"

साधना के दूसरे याम रश्मि' मे साधिका कवयित्री की अनुभूतियाँ सुख-दुख मे रग चुकी हैं, और स्मृति का प्रभात (जो यथाथत प्रभात की स्मृति है) चित्र अंकित करता है। कल्पना के पखो पर अनुभूति प्रकृति में विहार करती है

"इन कनक रश्मियों में अथाह
लेता हिलोर सिधु-तम जाग
बनती प्रवाल को मृदुल कूल
जो क्षितिज रेख थी कुहर म्लान।

× × ×

रग रहा हृदय ले अश्रु हास
यह चतुर चितेरा सुधि विहान।"

अब सरिता उनके जीवन का लक्ष्य है —

"चिर मिलन विरह पुलिनों की सरिता हो मेरा जीवन
प्रतिपल होता रहता हो युगकूलो का आलिंगन !"

उनका यह विश्वास हो गया है कि जीवन की सक्रियता सुख-दुख के द्वन्द्व में ही सम्भव है और वह प्राय रूपको की भाषा में करुणा के चित्र अंकित करती हैं। उनका मन अज्ञात वदनाओ से भर भर उठता है और वह सुख-दुख में से दुख को चुन लेती हैं, क्योकि उनका विश्वास है कि दुख की साधना ही उनके पथ को आलोकित रख सकती है। प्रिय की छवि वह मघो में बनती मिटती देखती हैं —

'मेघो में विद्युत्-सी छवि, उनकी बनकर मिट जाती
आँखों को चित्रपटी में जिसमें मैं आक न पाऊँ।"

अपना यह विश्वास कि क्षणिक मूल्य ही शाश्वत मूल्य का प्रतिष्ठापन है वह

प्रकृति में दृश्यों से प्रमाणित करती हैं

> 'हँस देता जब प्रात सुनहरे अंचल में बिखरा रोली
> लहरों की बिछलन पर जब मचली पड़तीं किरणें भोली।"

यदि प्रकृति में यह सब न घटता तो जीवन मादकता से कैसे परिचित होता ? क्षणिकता ही करुणा की जननी है और इसीलिए देवी जी शाश्वत मूल्यों को अस्वीकार कर देती हैं

> "वे नीलम के मेघ, नहीं जिनको घुल जाने की चाह
> वह अनन्त ऋतुराज, नहीं जिसने देखी जाने की राह
> ऐसा तेरा लोक वेदना नहीं, नहीं जिसमें अवसाद
> जलना जाना नहीं, नहीं जिसने जाना मिटने का स्वाद।"

'प्रसाद के प्राकृतिक प्रतीकों में सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा है, जबकि महादेवी में उपालम्भ! जिज्ञासा इनमें भी है अवश्य, पर सौन्दर्य के लिए नहीं, वेदना के लिए —

> "घुमड़ घिर क्यों रोते नव मेघ
> रात बरसा जाती क्यों ओस
> पिघल क्यों हिम का उर अवदात
> भरा करता सरिता के कोष।"

'नीहार' की जिज्ञासा रश्मि' में अन्तर्द्वन्द्व बनती है और 'रश्मि' का अन्तर्द्वन्द्व 'नीरजा' में सकल्प। वसन्तरजनी' के आह्वान में उनका यही सकल्प मुखरित है —

> "धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ बसत रजनी!
> तारकमय नव वेणी बधन,
> शीशफूल कर शशि का नूतन,
> रश्मि-वलय सित घन अवगुठन
> मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी ?"

'नीरजा' में कवयित्री की सबसे बडी उपलब्धि है वेदना म अपने अस्तित्व का सम्पूर्णतम साक्षात्कार और प्रकृति की वेदनामय प्रतीति। यह बताना कठिन है कि प्रकृति उनके जीवन को वेदना से रगती है या जीवन प्रकृति को, या दोनों वेदना के जुडवे बच्चे हैं।

क्षणभगुरता के खडचित्रों से 'नीरजा प्रकृति की चित्रशाला बन गई है परन्तु इन चित्रों म विरक्ति नही विसर्जन का भाव है। इसका कारण सम्भवत यह है कि देवी जी को निष्क्रिय अमरता की अपेक्षा रचनात्मक क्षण अधिक प्रिय है ? प्रकृति

अपने रचनात्मक क्षण विनाश को सौंपकर अपनी सृजनशीलता बनाए रहती है —

"हँस देता नव इन्द्र धनुष की स्मित में घन मिटता मिटता
रँग जाता है विश्व राग में निष्फल दिन ढलता ढलता
कर जाता संसार सुरभिमय एक सुमन झरता झरता।"

देवी जी के विषाद के एकान्त क्षणों को सन्ध्या अपने अनुराग से भर देती है

"सज केशर पट तारक बेंदी
दृग अंजन मधु पद में मेंहदी
आती भर मदिरा से गगरी
सध्या अनुराग सुहाग भरी
मेरे विषाद में वह अपने
मधुरस की बूँदें छलकाती।"

(इसी प्रकार एक दूसरे गीत मे विभावरी के मानवी रूप मे वह अपने उद्वेलित प्रेम को प्रतिबिम्बित देखती हैं।)

'सान्ध्यगीत' मे वेदना गहरा उठी है और देवी जी की साधिका लक्ष्य के निकट है। अभी तक वह प्रकृति मे अपने को देखती थी, पर अब वे उसे अपने मे पाती हैं।

"प्रिय, सांध्यगगन मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुधला विराग
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग
छाया-सी काया वीतराग
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन।'

कभी वह अपनी साधना से प्रकृति को चकित कर देती हैं —

"मैं आज चुपा आई चातक
मैं आज सुला आई कोकिल।"

सान्ध्यबेला कवयित्री के लिए मिलनबेला है और वह प्रकृति से प्रसाधन के उपकरण माँग रही हैं —

"रंजित करके शिथिल चरण से
नव नव अशोक का अरुण राग
मेरे मडन को आज मधुर
ला रजनीगधा का पराग
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार।"

इस प्रकार वह और प्रकृति एकाकार हैं

'उमड़ता मरे दृगों में बरसाता घन श्याम में जो,
अधर में मर खिला नव इन्द्रधनु अभिराम में जो।''

अपने परिचय म बदली बनकर व कहती हैं

"मैं नीरभरी दुःख की बदली,
स्पन्दन म चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन मे आहत विश्व हँसा।''

यह देवी जी का बहुत ही लोकप्रिय और प्रतिनिधि गीत है, केवल इसलिए नही कि इसमें छायावाद की विशेषताएँ समाहित हैं बल्कि इसलिए कि यह समूचे अस्तित्व के इतिहास को उजागर कर देता है।

उनकी साधना की अन्तिम परिणति है कि आकाश सुख दुःख म रग गया है और धरती यथार्थ से ऊपर उठना जान गई है। आदर्श और यथार्थ की दो अनमिल रेखाएँ एक मे मिल जाती हैं।

'सान्ध्यगीत' की समाप्ति, देवी जी की साधना के अन्तिम चरण की समाप्ति है, दीपशिखा में उन्हें अब एकाकी जलते रहना है—' यह मन्दिर का दीप, इसे नीरव जलने दो।'' परन्तु प्रकृति के बिना, वे जल भी तो नही सकती? अत वे पुन प्रकृति मे अपनी अभिव्यक्ति खोजती हैं —

'सजल है कितना सवेरा
ले उषा ने किरण अक्षत हास रोली
रात अकों से पराजय रेख धोली
राग ने फिर साँस का ससार घेरा।''

और तब फूल की रगीन यादें मेघ सी घिरने लगती हैं। कल्पना और बिम्ब में उनकी साधना अविराम रूप से सक्रिय है— उनका यह पथ उनकी अपनी साधों से निर्मित पथ है।

लगता यह है कि देवी जी प्रकृति को जिस विराट का अग मानती हैं, उस तक पहुँचने की साधना का भी उसे अग मानती हैं। उनके काव्य म प्रकृति का महत्व केवल इसीलिए नही है कि छायावाद म प्रकृति एक अनिवार्यता थी, वरन इसलिए कि वह प्रकृति के विशाल पट पर अनुभूतियो के जितने चित्र अकित करती हैं उतने कोई नहीं कर सका। वह प्रकृति को सचेतन दृष्टिकोण ही नहीं देती वरन् अपनी साधना क गति अकन का यन्त्र बनाती हैं। मनुष्य की हर भावना से वह प्रकृति को रगती हैं—वेदना का मधुमय पीड़ा म डूबने स लेकर साधना के उग्रतम क्षण तक की प्रक्रिया म प्रकृति ही उनका एकमात्र साध्य है। नीहार' की जिज्ञासा, रश्मि का द्वन्द्व 'नीरजा का समर्पण और 'सान्ध्यगीत का मिलन उनकी प्रकृति की भाषा में ही मुखरित है।

मनुष्य की लघुता को प्रकृति की असीमता में ढूँढना और उसकी क्षणभंगुरता को आत्मा की अमरता से चिर कर देना देवी जी की काव्य प्रक्रिया की आत्मा है और उसकी कला है—प्रकृति चित्रों और प्रतीकों से अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करना। वस्तुतः देवी जी का अस्तित्व मिट सकता है, उनके विश्वास धूमिल हो सकते हैं, परन्तु जब तक प्रकृति है तब तक उसके बनते मिटते दृश्य उनकी साधना की कहानी कहते रहेंगे।



डॉ० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'

१२

महादेवी के काव्य में गीति-तत्त्व

वेदना एवं उन्माद के अतिरेक से मानव-हृतन्त्री स्पन्दित होकर जो स्वर विधान करता है वह गीति काव्य की संज्ञा प्राप्त करता है। हर्ष विषाद, सुख दुख प्रसन्नता-पीड़ा तथा मिलन वियोग का उल्लास एवं वेदना जब हृदय की सहनशक्ति की सीमा का उल्लघन कर जाते हैं तो उनका प्रस्फुटन या तो आनन्द के मुक्ताकणों या व्यथा के अश्रुओं या गीतिमय स्वर-लहरी के रूप में होता है। यदि ऐसा न हो तो वह विदीर्ण हो जाये उसकी गति बन्द हो जाये और मानव अपनी अभिव्यक्ति की शक्ति सदा के लिए खो बैठे। अतः गीतिकाव्य या गीत उसके हृदय को हर्ष एवं विषाद के क्षणों में ऐसी क्षमता प्रदान करता है कि वह अन्य मानवों को समभागी बनाकर हलका हो जाता है।

गीति का उद्गार स्वाभाविक है। मनोवेगों या भावों की तीव्रता स्वतः ही गीति के रूप में प्रवाहित होकर मानस-लहरी को कण्ठ के द्वारा अधरों पर थिरकाने लगती है। अतः उसमें वैयक्तिकता का, एकान्तिकता का भाव पाया जाता है। महादेवी वर्मा ने लिखा है—"साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्दरूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"[1] विशेषतः लोकगीत तो जनमानस के सुख दुःख आशा निराशा, घृणा प्रेम, व्यथा उल्लास एवं संयोग वियोग के भावों के प्रतिबिम्ब होते हैं। उनमें जहाँ जीवन के मादक उल्लास की मनमोहक व्यंजना होती है वहाँ जीवन की विषम घड़ियों में प्रवाहित अश्रुधारा भी छलकती है। साहित्यिक गीत उसी प्रेरणा का परिष्कृत रूप है। भाव गीतिकाव्य के रूप में स्वतः ही निःसृत होता है वह प्रयत्न का परिणाम नहीं। इसी से गीतिकाव्य में भावाकुलता मार्मिकता एवं प्रेषणीयता होती है। एक ही भाव या आवेग अपनी तीव्रता या उद्दामता के कारण गीति के रूप में व्यक्त होता है। अतः उसमें संक्षिप्तता एवं एक निष्ठता पाई जाती है। इस प्रकार गीतिकाव्य के निम्नलिखित तत्त्व माने जा सकते हैं—१ आत्माभिव्यक्ति २ गेयता या संगीतात्मकता ३ भावाकुलता, ४ भावान्विति या अनुभूति की एकता ५ संक्षिप्तता ६ भावानुकूल भाषा।

१ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ १२२

आत्माभिव्यक्ति

गीतिकाव्य म कवि अपने 'आत्म' की अभिव्यक्ति करता है। उसकी अनुभूति स्वत ही का य के रूप मे नि सृत हो उठती है। अतएव स्वानुभूति गीतिकाव्य का प्राण है। कवि किसी भावना से विभोर होकर उस गीति के रूप मे अभिव्यक्ति देने के लिए विवश हो जाता है। अत गीति-का य मे कवि का व्यक्तित्व उदभासित हो उठता है। आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी का भी कथन है— प्रगीत में ही कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिम्बित होता है। व कवि की सच्ची आत्माभिव्यजना होती है। कवि के अ तस्तल का उदघाटन प्रगीत में ही सम्भव है।"[1] महादेवी वर्मा का करुणापूण व्यक्तित्व उनके गीतो मे सफलता के साथ व्यक्त हुआ है। बाह्यजीवन मे उनके हृदय की जो करुणा दीनों और असहायो के प्रति दया ममता और सेवा के रूप मे नि सृत होती दष्टिगत होती है, वही उनके गीतों मे आत्मा का रस बनकर प्रस्रवित हुई है। उस करुणा का कारण कुछ भी रहा हो, कि तु वास्तव मे वह प्रियतम के विरह से उद्भूत पीडा का प्रतिफलन प्रतीत होती है। इसी कारण कवयित्री अपने को विरह का जलजात बताती हुई कहती हैं —

'विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में ज म करुणा में मिला आवास।
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात।
जीवन विरह का जलजात।।"

इस विरह-ज य पीडा ने कवयित्री को करुणा की प्रतिमूर्ति बना दिया है और वह करुणा ऐसी है, जो मुक्त हृदय से सबके लिए बरसती है तथा सुख की सिहरन' बन कर खिल उठती है। अपने परिचय मे इसी भाव की व्यजना करते हुए वे कहती हैं—

'मैं नीर भरी दुख की बदली।
× × × ×
विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यही, उमडी कल थी मिट आज चली।।"

उनकी यह करुणा बौद्ध-दशन की प्रभविष्णुता पाकर भ यतर हो गई है।

प्रियतम की चितवन ने पीडा का जो साम्राज्य कवयित्री को दिया है उसे उसने अपनी आत्मा म बसा लिया है अथवा यो कहे कि पीडा उनके प्रियतम का ही प्रतिरूप हो गई है। इसीलिए वे प्रियतम को पीडा में और प्रियतम म पीडा को खोजती हैं— "तुमको पीडा में ढूंढा, तुममें ढूंढूंगी पीडा। जब तक पीडा है तब तक ही प्रियतम

१ आधुनिक साहित्य द्वितीय सस्करण, पृष्ठ २४

के पथ को आलोकित करता हुआ उसका जीवन दीप मधुर मधुर जलता है। अतृप्ति, अभाव वेदना और अवसाद ही तो प्रियतम की ओर निरंतर प्रेरित करते हैं। अतः ये जीवन के वरदान हैं। तभी कवयित्री को ये प्रिय हैं। वे इनमें ही आनन्द का स्रोत पाती हैं। इसी कारण उन्हें अपनी साधना की परिणति के रूप में अमरों का लोक भी नहीं चाहिए—

"ऐसा तेरा लोक, वेदना नहीं, नहीं जिसमें अवसाद।
जलना जाना नहीं, नहीं जिसने जाना मिटने का स्वाद॥
क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार।
रहने दो हे देव! अरे यह मेरा मिटने का अधिकार।"

क्योंकि उसमें जीवन निष्क्रिय पंगु या जड़ बन जायेगा तथा प्रियतम की प्रतीक्षा में जो आनन्द है, उसके विरह की जलन में जो मिठास है, उसके मिलन की झलक में जो उत्साह है वह समाप्त हो जायेगा तथा जीवन भावहीन एवं निस्सार बन जायेगा। इसी से उनका कहना है—'मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ।' उन्हें विरह में ही मिलन की मधुमय कल्पनाएँ सूझती हैं जिनमें विभोर होती हुई वे एकाकी और अपरिचित पथ पर भी 'मोतियों की हाट' और 'चिनगारियों का मेला' लगाती हुई चल सकती हैं। यदि इस जटिल पथ में जीवन दीप बुझ भी जाए तो भी उन्हें चिन्ता नहीं है। वे कहती हैं —

'चिन्ता क्या है हे निर्मम! बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा।"

जिस पीड़ा के राज्य को प्रकाशित करने की उन्हें चिन्ता है, उसकी और किसे होगी। वे अपने 'सूनेपन की मनवाली रानी' हैं तथा 'प्राणों का दीप जलाकर दीवाली' करती रहती हैं। इसीलिए यह सूनापन यह विरह, यह अतृप्ति और यह अभाव उन्हें प्रिय है। वे इस करुण अभाव में ही चिरतृप्ति देखती हैं जीवन का लघु क्षण उन्हें निर्वाण के शत शत वरदान सा प्रतीत होता है और वेदना के क्रम में वे हृदय में प्रियतम का मधुर आभास पाती हैं। यह विरह की पीड़ा ही तो है जो उन्हें मुस्कराते हुए संकेत भरे नभ में प्रियतम के आगमन का आभास देती है यह विरह की पीड़ा ही तो उनके हृदय में यह कामना जगाती है —

"जो तुम आ जाते एक बार।
कितनी करुणा कितने संदेश, पथ में बिछ जाते बन पराग।
गाता प्राणों का तार-तार अनुराग भरा उन्माद राग।
आँसू लेते वे पद पखार।"

इसीलिए उन्हें विरह और उसकी पीड़ा प्रिय है। यह उनका जीवन है और यही उनका

प्रिय है। इस प्रकार महादेवी वर्मा के गीतो मे उनका पीडामय 'आत्म' भलीभाति व्यक्त हुआ है।

रहस्यवाद की सरणियो पर अग्रसर होते हुए भी कवयित्री के गीत उनके 'आत्म भाव' का ही प्रतिबिम्ब है। प्रियतम के साथ अश और अशी का सम्बन्ध स्थापित करते हुए जब वे उन्हे विधु का बिम्ब' और स्वय को 'मुग्धाररश्मि अजान' कहती हैं अथवा 'आत्म' की सवत्र व्याप्ति देखती हुई जब वे 'पात्र भी, मधु भी मधुप भी मधुर विस्मति भी अधर भी हूँ और स्मित की चादनी भी हूँ" की घोषणा करती हैं तब उनके गीत उनकी साधिका अवस्था को अभिव्यक्ति देते हैं। अपने हृदय मे ही प्रियतम की ज्योति का आभास पाकर जब वे कहती हैं —

"तुम मुझ मे प्रिय फिर परिचय क्या ?
चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम, मधुर राग तू म स्वर-सगम।
तू असीम मैं सीमा का भ्रम, काया छाया मे रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?"

तो हम उन्हे प्रियतम मे एकाकार होती हुई पाते हैं। 'आत्म म ही 'परमात्म' की यह अनुभूति कवयित्री के अन्तस के चरम विकास की अभिव्यक्ति है। उनके गीता मे सवत्र उनका अन्तजगत छलकता दष्टिगत होता है। उन्होने स्वय कहा है— बाह्य जीवन की कठोरता, सघष, जय, पराजय सब मूल्यवान हैं, पर अन्तजगत की कल्पना, स्वप्न भावना आदि भी कम अनमोल नहीं।'[1] अपने इसी अन्तजगत को उन्होने अपने गीतो में वाणी प्रदान की है।

गेयता या सगीतात्मकता

गीतिकाव्य का हृदय वीणा से स्वाभाविक उद्रेक होता है। अत गेयता उसका अनिवाय तत्त्व है। यह आवश्यक नहीं कि उसमे शास्त्रीय सगीत की सद्धान्तिकता का आग्रह हो। हृदय के तारो की स्वाभाविक झकृति ही ऐसा स्वर विधान करती है कि वह स्वत ही गेय हो जाता है। काव्य मे भाव व्यजना के लिए शब्दसाधना अपेक्षित है। अथ-गर्भित शब्द ही भाव विधान मे समथ होता है किन्तु गीतिकाव्य मे शब्द साधना के साथ साथ स्वर साधना भी अनिवाय है। सगीत म कवल स्वर के आरोह अवरोह द्वारा भावानुभूति कराई जा सकती है। महादेवी के गीतिकाव्य की यह विशेषता है कि उसमे काव्य का अथ गाम्भीय और सगीत का स्वर माधुय सन्तुलित रूप से समन्वित है। भावना का तीव्र वेग होने के कारण उनके गीतो म जहाँ साहित्यिक सौष्ठव है, वहाँ सगीत का तरल प्रवाह भी है। महादेवी जी ने स्वय कहा है— 'काव्य

१ दीपशिखा चिन्तन के कुछ क्षण पृष्ठ ७

का यही प्र धा गेय कहा जाएगा जो अनुभूति की तीव्रता को संगीत के लिए उपयुक्त शब्द-संयोजना द्वारा व्यक्त कर सके।' उपयुक्त शब्द संयोजना से तात्पर्य ध्वन्यात्मकता म गेय होने से ही है। महादेवी जी का ही ऐसा व्यक्तित्व है जिसम कवि, चित्रकार और संगीतज्ञ का एक साथ संगम है। उन्होंने शास्त्रीय संगीत का ज्ञान होते हुए भी अपने गीतों म संगीत की अपेक्षा काव्य को ही प्रधानता दी है और उनका काव्य विशिष्ट शब्द संयोजना के कारण गेय है। भावों के अनुकूल गीतों की गति और उनका आरोह अवरोह उन्हें संगीतात्मकता प्रदान करता है। यथा—

"मधुर मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग, प्रतिदिन, प्रति क्षण, प्रति पल प्रियतम का पथ आलोकित कर।"

यहाँ शब्दों की आवृत्ति और लघु वर्णों के प्रयोग ने काल की लघुता को क्रमश युग युग तक विस्तृत करते हुए गीत को गति प्रदान की है। संगीत म प्राय 'टेक' के अनन्तर 'अंतरा होता है जो क्रमश गति को आरोह प्रदान करता है। 'टेक' की आवृत्ति संगीत को मधुर बनाती है। महादेवी के अनेक गीतों म यह विशेषता दृष्टिगत होती है —

"क्या पूजन क्या अर्चन रे।
उस असीम का सुंदर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे॥'

इस गीत मे प्रत्येक पंक्ति म 'रे' की आवृत्ति ने संगीत का माधुर्य भर दिया है। उनके 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ' 'नलम मे चापमय वर हूँ' किसी का दीप निष्ठुर हूँ' 'मुस्काता संकेतभरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले हैं' 'जो तुम आ जाते एक बार' इत्यादि अनेक गीत गायकों की वाणी का शृंगार हैं। काव्य और संगीत का ऐसा माधुर्य आधुनिक कवियों म निराला के अतिरिक्त किसी मे नहीं है। डॉ० विनय मोहन शर्मा का तो यह मत है—"प्रसाद के गीतों मे भाव प्रवणता निराला के गीतों मे चिन्तन और महादेवी के गीतों मे दोनों का समावेश है।"[1]

भावाकुलता

गीतिकाव्य तीव्र भावावेग की स्वाभाविक परिणति है। वह हृदय से निकलकर हृदय को प्रभावित करती है। अतएव चिन्तन मनन इतिवृत्त एव सिद्धान्त निरूपण के लिए उसम स्थान नहीं है उसमे भावना का अविरल प्रवाह अपेक्षित है। डॉ० नगेन्द्र कहते हैं—'जब कभी आत्मा भाव की अग्नि से पिघलकर बहने को हुई है, उसके साथ ही वाणी भी द्रवीभूत हो गई है और भाव ने गीत का रूप धारण कर लिया है। अतएव जब जब हमारे जीवन मे भावना का प्राधान्य हुआ है, जब जब हमारा जीवन

संधिनी चिन्तन के क्षण पृष्ठ २३
[1] महादेवी वर्मा—काव्य कला और जीवन दर्शन (स० शचीरानी गुर्टू) पृष्ठ ६०

दशन व्यक्तिपरक अथवा भावपरक हुआ है, काव्य मे गीति का महत्त्व बढ़ गया है।"[1]

महादेवी का समस्त काय ही व्यक्तिपरक या भावपरक है, इसी कारण उनकी अभि यक्ति गीतिमय हुई है। फिर भी महादवी के गीता की भाव गरिमा के सम्बध मे मतैक्य नही है। एक ओर श्री प्रकाशचद्र गुप्त कहते हैं—"महादेवी की कविता भावना प्रधान और कल्पना प्रधान है। कोई निमम बुद्धिवाद इस काव्य की पट भूमि नहीं।"[2] दूसरी ओर श्री लालधर त्रिपाठी प्रवासी का कथन है, "कवयित्री की दृष्टि केवल कला की चमत्कार-सष्टि पर ही न्यस्त है, भावना पीछे ही कहीं छूट गई। गीतिकार की रचना मे शासन भाव का होना चाहिए, बुद्धि का नहीं।"[3] इसका तात्पय यह है कि 'प्रवासी जी महादेवी के अप्रस्तुत विधान को बुद्धि व्यायाम मानते हैं स्वाभाविक नही। वस्तुत यह 'प्रवासी' जी की भ्राति है। वे महादेवी के अप्रस्तुत विधान के कलापूण चमत्कार से ही इतने आक्रा त हो गए हैं कि उसमे निहित भाव धारा म अवगाहन करन का उ हें अवकाश ही नही मिला है। जिस कवयित्री के काव्य मे उस करुणा की अजस्र धारा प्रवाहित है जिसके सम्ब ध म भवभूति ने यहा तक कह दिया है 'एको रस करुण एव' वहाँ भावना का अभाव देखना कुछ समझ मे नही आता। महादेवी जी की तो यह विशेषता है कि उनका भाव कला सौ दय स और भी निखर उठा है। यदि कला के कारण भावोमेष म स देह किया जाए तो तुलसी की 'विनय पत्रिका के अनेक भावपूण सु दर पद गीतिकाव्य से बहिष्कृत करने पड़ेंगे। महादेवी और तुलसी मे अन्तर केवल इतना है कि महादेवी का प्रियतम अ यक्त है और तुलसी के आराध्य व्यक्त राम, किन्तु जो निष्ठा जो आत्मसमपण तुलसी म है वही महादेवा मे भी है। इसीलिए भावना का जसा तीव्र वेग तुलसी म है वैसा ही महादेवी मे भी। डॉ० सच्चिदान द तिवारी ने ठीक ही लिखा है "जिसमे अपने परमप्रिय के प्रति जितनी ही निष्ठा है, उसकी भावना उतनी ही बलवती है और चूँकि महादेवी ने अपने सम्पूण कवित्व का उपयोग अपने रहस्यमय आराध्य की अचना मे ही कर दिया है, इसलिए उनके समान भावावेश अ यत्र नहीं उपल ध होता।'[4] श्री 'प्रवासी' जी ने महादेवी के दो गीता के अशा को लेकर अपन मत की पुष्टि की है। एक पद यह है—

'प्रिय ! सा ध्य-गगन मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धु धला विराग, नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया-सी काया वीतराग, सुधि भीने स्वप्न, रँगीले घन।'

इस सम्ब ध म 'प्रवासी' जी की व्याख्या है—"य अप्रस्तुत काफ़ी मानसिक या बौद्धिक

१ आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ पृष्ठ ७४ ७५
२ महादवी—काव्यकला और जीवन-दशन पृष्ठ ७३
३ गीति-काव्य का विकास पृष्ठ ४८२
४ आधुनिक हिन्दी कविता में गीति-तत्त्व पृष्ठ २५४

श्यामा की अपेक्षा रखते हैं। यहाँ अंतिम पंक्ति में आये प्रस्तुत और अप्रस्तुत पर थोड़ा विचार कीजिए। काया है प्रस्तुत और छाया है अप्रस्तुत। साधारण धर्म कहा गया है वीतरागता' को। वीतराग धर्म है मन का, काया का नहीं। काया में राग कहाँ? यह तो मन में होता है। इसी प्रकार प्रथम चरण में अप्रस्तुत क्षितिज का साधारण धर्म 'धुंधलापन' अवश्य है, किन्तु विराग में धुंधलापन कहाँ? यह तो स्वच्छ, निर्मल और निर्लेप होता है।'[१]

हमारा निवेदन है कि कवयित्री ने अपने जीवन को साध्य गगन कहा है, जिसमें एक ओर वातावरण की धूमिलता छाया का अभाव या उपेक्षा होती है, दूसरी ओर अरुणिमा और बादलों की रंगीनी भी है। कवयित्री का जीवन भी ठीक वैसा ही है। छाया के प्रति जैसे किसी का राग नहीं होता उसके प्रति मन वीतराग होता है, उसी प्रकार कवयित्री को काया से मोह नहीं है वह अपने सौभाग्य की अरुणिमा और स्मृतियों से रंजित कल्पनाओं में मग्न है। उसका विराग अभी वास्तव में धुंधला या अपूर्ण ही है। यदि वह धुंधला नहीं होता तो मिलन की ज्योत्स्ना विकीर्ण हो जाती फिर जीवन साध्य-गगन नहीं रहता। कवयित्री ने अपने जीवन की बहिर्गत उदासीनता और अन्तर के प्रेम-जनित उल्लास की एक साथ व्यंजना की है। भाव को इस अप्रस्तुत योजना से उसने मूर्त कर दिया है। अतएव प्रवासी जी को अपनी पूर्व स्वीकृति को ही मान्यता देनी चाहिए— महादेवी जी की यह विशेषता है कि भावलीनता के क्षणों में भी कला उनका साथ नहीं छोड़ती।[२]

उनके रहस्यवादी गीत जिनमें चिन्तन भी है, भाव भूमि पर ही आधारित हैं। उनका चिन्तन भावाश्रित है। अव्यक्त प्रियतम बुद्धि का विषय न होकर भाव का आधार बन गया है। हृदय में स्थित प्रियतम भी पूजा का पात्र बन गया तथा विभिन्न अनुभाव पूजा के उपकरण हैं, जो भावना की तीव्रता को प्रमाणित करते हैं। उनमें निहित भावना का स्वाभाविक उद्रेक सामान्य धरातल पर आकर ही हुआ है। स्वयं महादेवी जी कहती हैं "मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर पले हैं।'[३] जिसका तात्पर्य यह है कि उनका प्रियतम जो उनकी भावना का सम्बल है, अमूर्त अवश्य है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति सामान्य ही है जिसमें प्रेषणीयता का गुण है।

भावावृत्ति

गीतिकाव्य भाव की प्रवेगपूर्ण स्थिति का परिणाम है। उसमें मथरता नहीं,

---

१ गीति काव्य का विकास, पृष्ठ ४८२-८३
२ गीतिकाव्य का विकास, पृष्ठ ४८०
३ दीपशिखा चिन्तन के कुछ क्षण, पृष्ठ ५७

उत्तेजना होती है। अतएव गीत मे एक भाव अपनी पूर्ण मार्मिकता के साथ अभिव्यक्ति पाता है। प्राय मूलभाव प्रथम पंक्ति म केंद्रित होता है तथा शेष गीत मे उसी का पल्लवन किया जाता है। भाव की एकनिष्ठता, केंद्रीयता और सकुचित सीमा उसे तीर की भाँति तीखा बनाती है।

महादेवी के गीतो में भी भावान्विति का अभाव नही है। उनके गीतो मे करुणा, वेदना, आशा, जिज्ञासा, आत्मनिवेदन जो भी भाव आया है, समग्र गीत मे उसी का पल्लवन हुआ है। लेकिन डॉ० विनयमोहन शर्मा का मत है—"महादेवी क गीतों मे भावों की विच्छिन्नता पाई जाती है। उनका एक गीत ही भाव की पूर्ण परिणति नहीं होता। उसमे कई भाव झलक उठते हैं।"[1] शर्मा जी का यह कथन अशत सत्य है। किन्तु जो अनेक भाव आते भी हैं, उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नही होता, अपितु वे मूल केन्द्रीय भाव के ही पूरक होते हैं तथा उनम पारस्परिक शृंखला रहती है। श्री लक्ष्मी नारायण 'सुधाशु' का मत इस सम्बन्ध म ठीक है—"उनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी भावधारा को एक स्वाभाविक तथा निश्चित क्रम से प्रवाहित होने दिया है, उसमे ज्वार भाटे के कारण तरगो का आवर्त्तन प्रत्यावर्त्तन तो होता रहा है, पर प्रवाह को अपनी सीमा में रखने वाले दोना तट प्राय सुरक्षित रहे हैं।"[2] अनेक भाव उन्ही लहरो की भाँति हैं जो जल के ही विभिन्न रूप हैं, किन्तु वास्तव मे है वह जल ही। इसी प्रकार उनके एक ही गीत मे बिखरे हुए अनेक भाव एक मूल भाव के ही विभिन्न रूप हैं, उसस भिन्न नहीं। प्रियतम के प्रेम पर अग्रसर होती हुई कवयित्री कहती हैं—"पथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।" इस 'टेक मे साधक की दृढता और एकनिष्ठता व्यजित होती है तथा भावी आशकाओं की भी व्यजना हुई है। प्रथम 'अन्तरा' मे पथ के गहन अन्धकार, द्वितीय मे शूल, तृतीय में पथ की दीर्घता और चतुर्थ में भय और प्रलोभन का वर्णन करते हुए सर्वत्र आत्म-विश्वास तथा साहस को अभिव्यजित किया गया है। यही गीत का मूल भाव है जो विभिन्न रूपो में पल्लवित हुआ है। इससे स्पष्ट है कि उनके गीतो में भावान्विति भी है।

सक्षिप्तता

भावान्विति, प्रभाव की तीव्रता तथा गेयता के लिए गीत की सक्षिप्तता वाछनीय है। सक्षिप्तता से गीतो में निहित अनुभूति अखण्ड एव प्रभावपूर्ण रहती है। वह श्रोता या पाठक के हृदय पर त्वरित तथा सीधा प्रभाव डालती है। विस्तार से अनुभूति की अखण्डता में व्याघात उपस्थित हो जाता है, भावना के विशृंखल होने,

१ महादेवी वर्मा—काव्य कला और जीवन-दर्शन पृष्ठ ६०
२ वही, पृष्ठ ४६

आवेग के क्षीण होने तथा गेयता में निविलता आने की आशंका हो जाती है। इसी कारण संक्षिप्तता अपेक्षित है।

महादेवी का गीतिकाव्य इस दृष्टि से पूर्णतया सफल है। उनके गीत अधिक से अधिक छः पदों वाले हैं, किन्तु ऐसे गीतों की संख्या भी कम ही है। अधिकांश गीत चार पदों में ही समाप्त हो जाते हैं। एक-दो लम्बे गीत भी हैं, किन्तु वे भी अपनी मधुरता के कारण गेय हैं और उनमें भी प्रभावान्विति है। जहाँ 'टेक' नहीं है, वे गीत की अपेक्षा काव्य अधिक हैं। पर ऐसे गीतों की संख्या नगण्य ही है।

भावानुकूल भाषा

गीति काव्य का सम्बन्ध स्वर-साधना से होने के कारण भाषा में भावानुकूलता एवं मार्दव अपेक्षित है। महादेवी के गीतों में कोमल भावों की व्यंजना हुई है, अतः वे माधुर्य गुणोपेत हैं। भाव की गति के अनुकूल शब्द भी गतिशील दिखाई पड़ते हैं —

> सिहर सिहर उठता सरिता उर
> खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा भर
> मचल मचल आते पल फिर फिर
> सुन प्रिय की पदचाप हो गई पुलकित यह अवनी।"

यहाँ शब्दों की पुनरावृत्ति से प्रिय के आगमन के उल्लास की मधुर व्यंजना की गई है। ह्रस्व वर्णों के प्रयोग ने माधुर्य को द्विगुणित कर दिया है। इसी भाँति जहाँ साहस और आत्म विश्वास है, वहाँ भाषा में भी ओज दिखाई पड़ता है —

> "दृढ़व्रती निर्माण उन्मद, यह अमरता नापते पद।
> बाँध देंगे अङ्क संसृति से तिमिर में स्वर्ण बेला॥"

यहाँ संयुक्त वर्णों के प्रयोग से भावानुकूल ओज की सृष्टि की गई है।

महादेवी की भाषा की यह विशेषता है कि वह संस्कृत की तत्सम शब्दावली से पूर्ण होते हुए भी मधुर, तरल, स्वाभाविक, प्रवाहमयी एवं लयानुकूल है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी का काव्य गीति-तत्त्व से परिपूर्ण है तथा उनमें एक प्रौढ़ कवयित्री तथा मधुर गीतिकार के दर्शन एक साथ होते हैं।

१३

महादेवी का दीपक-प्रेम

विश्व काव्य की बात नहीं कहता, हिन्दी कविता में दीपक शब्द का जिन्होंने सर्वाधिक प्रयोग किया है, उनमें महादेवी ही कनिष्ठिकाधिष्ठित होंगी। स्वयं महादेवी की कविताओं में भी जो शब्द सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है वह यही 'दीपक' है। काव्य-साधना के पाँचो यामों में महादेवी का जीवन-दीप निष्कम्प निर्वात प्रज्ज्वलित होता रहा है। उनका विराट् व्यक्तित्व यदि किसी लौकिक पदार्थ के साथ एकान्तिक आत्मीयता ढूढ़ पाता है तो वह दीपक ही है। दीपक सचमुच ऐसा सौभाग्यशाली है जिसके साथ वह सामीप्य, सालोक्य ही नहीं वरन् सायुज्य भी स्थापित करती हैं।

वैसे तो महादेवी दीपक का प्रयोग प्राय उपमा या रूपक के रूप में करती हैं, किन्तु इससे बढ़कर दीपक समग्र मानव-जीवन के प्रतीक स्वरूप भी व्यवहृत हुआ है। उपमा या रूपक का अलंकारवत् प्रयोग देखें—

(१) नेत्र के लिए—दृग मेरे दो दीपक झिलमिल।[१]

(२) प्राण के लिए—प्राणों का दीप जलाकर
करती रहती दीवाली।[२]
× ×
तेरे हित जलते दीपक प्राण।[३]

(३) मन के लिए—आलोक यहाँ लुटता है बुझ जाते हैं तारागण,
अविराम जला करता है, पर मेरा दीपक-सा मन।[४]
× ×
स्नेह भरा जलता है झिलमिल
मेरा यह दीपक-मन रे।[५]
× ×

---

१ सान्ध्यगीत पृष्ठ १६
२ नीहार, पृष्ठ १३
३ नीरजा, पृष्ठ ६६
४ नीहार, पृष्ठ २१
५ नीरजा पृष्ठ ६३

मोम-सा तन घुल चुका
अब दीप-सा मन जल चुका है।[1]

(४) जीवन के लिए—दिया क्यों जीवन का वरदान ?
सिकता मे अंकित रेखा-सा
वात विकम्पित दीप शिखा-सा।[2]
× ×
सूने मे सस्मित चितवन से
जीवन दीप जला जाता।[3]

(५) वेदना के लिए—जला वेदनाओं के दीपक
आई उस मंदिर के द्वार।।[4]

(६) आशा के लिए—बुझेगा जलकर आशादीप,
सुला देगा आकर उन्माद।[5]

(७) अंतर्हित अनुराग के लिए—आलोकित करता दीपक-सा
अंतर्हित अनुराग।[6]

(८) अन्तस्तल के लिए—दीपक सा जलता अंतस्तल।[7]

इस प्रकार महादेवी ने अलकारविधान या बिम्ब योजना के लिए दीपक चुना, किन्तु इस प्रकार का प्रयोग साहित्य म चिर नवीन हो, ऐसा मानना भ्रामक होगा। कालिदास की इन्दुमती स्वयंवर म सचारिणी दीप शिखा-सी प्रतीत होती है। तुलसी की सीता भी छविगृह मे दीप शिखा सी बलती देखी गयी। इतना ही नहीं, उन्होंने 'दीप शिखा सम युवती तन' कहा। बिहारी ने भी नायिका के शरीर के लिए दीपक की उपमा दी है। जदपि सुन्दर सुघट पुनि सगुनो दीपक देह' या 'अंग अंग नग जगमग, दीप शिखा-सी देह' जसी पक्तियाँ प्रमाण-स्वरूप हैं। गौतम बुद्ध ने आत्मा के लिए दीपक को उपयुक्त समझा है। वे कहते हैं —

अत्तदीपा अत्तसरणा अनन्नसरणा
धम्मदीपा धम्मसरणा होत।[8]

---

१ दीपशिखा पृष्ठ २३
२ ३ रश्मि, पृष्ठ ६७
४ नीहार पृष्ठ ६६
५ नीहार, पृष्ठ ११
६ रश्मि पृष्ठ १०४
७ नीरजा पृष्ठ २५
८ महापरिनिब्बाण सुत्त पृष्ठ ११

अर्थात् हे भिक्षुओ ! आत्मदीप बनकर विहरो। तुम अपनी शरण जाओ। किसी दूसरे का सहारा मत ढूंढो। केवल धम को अपना दीपक बनाओ। केवल धम की ही शरण जाओ।

इस तरह यद्यपि हम दीपक-सम्बन्धी प्राचीन प्रयोग भी मिलते हैं, किन्तु इतनी व्यापक पृष्ठभूमि म इसका उपयोग दुलभ है सिद्धो ने काया के प्रतीक रूप म तरवर को अपनाया है। कबीर ने घट, चदरिया आदि को। महादेवी न दीपक का केवल तन के लिए नही, वरन् सम्पूण मानव जीवन के लिए ग्रहण किया है। मानस का ताप पूणतः मूक कर, सारा उन्माद सुलाकर, प्राणो को चुपचाप जलाकर, अन्तर्नाद अन्तर में छिपाये, अहर्निश यह जीवन दीप जला सकता है। पता नही, इस दीप ने प्रीति की रीति कहाँ सीखी ? अन्तस्तल मे रहस्य चुराकर, भले प्राण भस्म हो जाए, किन्तु इसके मुह पर आह की एक हल्की लकीर भी नहीं खिचती। गात इसका क्षार भले होता है किन्तु यह मौन रहकर प्रतीक्षा का पथ आलोकित करता है। इसके पास पीडा भी सज्ञाहीन रहती है, उद्गार साधना म डूबी रहती है तथा ज्वाल म निस्तब्ध समाधिस्थ यह प्यार को स्वग बनाता रहता है। चिता ही इसकी प्यारी मीत है, किन्तु कुछ परवाह नही, यह सोने-सा प्यार लुटाकर अन्तर्ध्यान हो जायेगा।

कवयित्री के मन में जिज्ञासा होती है कि उसके जीवन-दीप का निर्माण किन उपकरणो से हुआ ? किस पदाथ का तेल उसम जलता है किसकी वर्तिका है तथा ज्वाला के साथ इसका मेल कराने वाला कौन है ? शून्य काल के पुलिनों पर चुपके-से आकर कौन रहस्यमय इसे लहरो म बहा जाता है ? आदि आदि।

कवयित्री यह नही चाहती कि उसका जीवन-दीप न जले। वह तो मधुर मधुर जलकर युग-युग, प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल प्रियतम का पथ प्रकाशित करता रहे। उसका सौरभ विपुल धूम बन फैल गया है मृदुल मोम की तरह उसका तन घुल रहा है, फिर भी उसकी कामना है कि उसके जीवन का अणु अणु गल-गल कर सवत्र आलोक का अपरिमित अणवदान करे। नभ मे असख्य दीप जलते हैं जलमय सागर का उर भी जलता है बादल भी विद्युत लेकर जलता है सवत्र जलन ही जलन है, दाह ही दाह है, तो फिर उसका जीवन-दीप क्यो न विहँस विहँसकर जले ?

विरोधाभास भी कवयित्री के जीवन का सश्रय पा कृताथ हो जाता है। वह शापमय वर है तथा किसी का निष्ठुर दीप है। किन्तु इससे वह अपने को दीना-हीना कदापि नही मानती, वह तो साम्राज्ञी है ! इस साम्राज्ञी के मुकुट जलती शिखाएँ हैं। उडने वाली चिनगारियाँ शृगारमाला हैं। नाश मे सतत जीवित, वह किसी की सुन्दर साध हैं।

सब बुझ गये हैं अत यह जीवन-दीपक रागिनी जगा लेना चाहती है। किन

उपकरणो का यह दीपक है—यह पुरातन प्रश्न अनुत्तरित न रह जाए, अत वह कहती है कि इसकी लय ही मृदु वर्तिका है हर स्वर लजीली लौ बन गया, स्नेह-गीली झकार आलोक-सी फल रही है, अत इस मरण-पर्व को वह दीपोत्सव बना लेना चाहती है।

कवयित्री का जीवन-दीप साधारण नही, वरन् मन्दिर का पवित्र दीप है। जब रजत शख, घडियाल, स्वणवशी, वीणा की लय समाप्त हो गयी है, जब केवल तिमिर ही तिमिर है और उस मन्दिर मे अकेला इष्ट, तो वह उस अजिर का धूप जलाने मे स्वय जल जाना चाहती है। विश्व-पुजारी भी पल के मनके फर कर सो गया है, प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरो के बीच सो गया है, मुखर कण कण का स्पन्दन रुक गया है, तो वह इस ज्वाला में अपने प्राण पुन ढल जाने देना चाहती है। अभी झझा भी दिग्भ्रा त हो चली है, अत ऐसी वेला मे ज्योति का लघु प्रहरी—उसका लघु जीवन दीप ही पुजारी बनना चाहता है। जब तक दिन की हलचल न लौटे, तब तक उसका जीवन-दीप प्रतिपल जागगा। वह और कुछ नही चाहती, बस इतना ही कि उसका सन्ध्या-दूत प्रभात तक चलने का अधिकार पा जाए।

कवयित्री यह नही चाहती कि उसका प्रियतम थोडी सी साधना से पिघलकर उसके पास चला आय। जब उसका जीवन-दीप बिलकुल थक जाए, जल जाए तभी वह आये। वह अपनी साधना के मध्य मे किसी प्रकार का व्यवधान-व्याघात नही चाहती। रात भर शलभ जल-जलकर अपने को दीपकमय कर देता है। ठीक उसी तरह प्रियतम की दीप-सुधि मे जल-जलकर कवयित्री भी दीपकमय हो जाती है। उत्कट आत्म समपण मे तन मन प्राण का द्वैत सम्भव नही, आश्रय-आलम्बन का द्वत सम्भव नही। अनुखन माधव-माधव रटइत राधा होत मधाई कवयित्री के तन-मन प्राण म उसी अपरूप की रूप-ज्वाला धधक रही है। अत उसका तन दीपक, मन दीपक, प्राण दीपक, जीवन दीपक, प्रियतम की सुधि दीपक, वेदना दीपक—'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' की स्थिति हो गई है। ऐसी आत्मलीनता की स्थिति म प्रियतम की अमाच्छन्न अनुरध्या प्रणयिनी के प्रेम की दीपावली से प्रोद्भासित हो उठती है। यही रहस्य है महादेवी के दीपक-अनुराग का। महादवी को सवत्र दीपकमय यही ही लगता है, जसे—

प्रासादे सा दिशि दिशि सा पृष्ठत सा पुर सा
पय के सा पथि पथि च सा तद्वियोगातुरस्य।
हं हो चेत प्रकृतिपरा नास्ति मे कापि सा सा
सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवाद॥

(अमरुशतकम्)

———

—डॉ० एल० डी० जोशी

१४

महादेवी का काव्य-सौन्दर्य

काव्य-कला की उत्कृष्टता की दृष्टि से महादेवी वर्मा एक बेजोड कलाकार हैं। उन्हें सच्चे कलाकार की दृष्टि प्राप्त है। भावुकता तथा दयाद्रता का अतिरेक होने से उनकी काव्यानुभूतियाँ प्रगाढ एव मार्मिक हैं। उनकी तीव्र सवेदनशीलता, घनीभूत अनभूति एव कुशल-कलात्मक तथा सबल सशक्त अभिव्यक्ति अद्वितीय है। उनके काव्य में भावानभूति की गहराई, व्यापकता तथा अपूव कला-सामथ्य है। तरल भावना स्वानुभूति की सचाई तथा कल्पना जिस कौशल से उनके गीति काव्य में अभिव्यक्त हैं उनकी गहराई को न पा सकने के कारण कतिपय आलोचको ने उन्हें 'फ्रस्टेशन', अभावो की अभिव्यक्ति, असफल जीवन की सफाईपूर्वक विज्ञप्ति, दुःख का रोना और निराशा का क्रदन आदि मान लिया है। विद्वान इस प्रकार की अस्वस्थ समीक्षा भले ही करें, मेरा तो मानना है कि परमात्म तत्त्व की भक्ति भावना और तन्मयता मे महादेवी मीरां से कम नही हैं और रहस्यानुभूति की सहज, स्पष्ट एव सबल अभिव्यक्ति मे वे कबीर से कम श्रेष्ठ नहीं ठहरतीं।

ससार की वेदना, विडम्बना और विषमता को महादेवी ने जिस तीव्रता से हृदयगम किया है और जिस प्रभावशाली ढग से उसे प्रकट किया है वह सवथा श्लाघ्य है। पराई पीडा को 'स्व' की समझ कर उसे जिस स्वाभाविकता से काव्य में गूथा है उसकी उत्कृष्टता इसी पर निभर है कि उस भावना का साधारणीकरण हो जाता है और प्रमाता उसकी सवेदनशीलता से अभिभूत हो उठते हैं। अतिशय भाव प्रवणता के कारण ही महादेवी में विरह तथा दुःख की प्रखर अनभूति पाई जाती है। उनकी करुणा असीम है।

वियोग और पीडा की तीव्र अनुभूति को महादेवी ने सगीतमय, लयवती शब्दावली मे इस प्रकार स्वाभाविकता से सजोया है कि उनका काव्य गेय, सगीतात्मक, प्रभावोत्पादक तथा सजीव स्वरूप धारण कर लेता है। भाव-पक्ष के साथ ही उनका कला पक्ष भी श्रेष्ठ स्वरूप पा गया है। लक्षणा व्यजना, प्रतीक तथा रूपको का प्रयोग इतना अधिक हुआ है कि कही भी खीचतान या बनावटीपन दिखाई नही देता। हाँ प्रतीकों का यह प्रयोग एक ही अथ मे प्रयुक्त नही हुआ और भिन्न स्थलो पर

सदभ के अनुसार भिन्न अथ देता है, अत किसी का उसम दुरुहता भी दीख सकती है। अभिधा का आश्रय महादेवी ने अधिक नहीं लिया, इसलिए वक्रता और उक्ति वचिच्य के कारण उनका काव्य ध्वनि और सकेत प्रधान (Suggestive) बन गया है। यह भी काव्य का एक आवश्यक गुण है।

विदुषी होने के कारण महादेवी ने अपने गीति-काव्य म आत्मनिष्ठता, लाक्षणिकता, दशनपरक तथा अध्यात्ममूलक अनुभूतियो को चित्रोपम, मूर्ति छाया या बिम्ब विधान आदि काव्य विधानो द्वारा अभिव्यजित किया है। उनके कल्पना चित्र रगीन तथा आकर्षक हैं। उनकी कल्पना शक्ति या बिम्बविधान अपना सानी नही रखता। जिस भावना का रूप दशन कवयित्री ने अपने मानस पटल पर अनुभव किया है उसे प्रतीको और रूपको के सहारे प्रकृति की उपमाओ से अलङ्कृत करके सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है। उनकी काव्य गेलेरी म कल्पना के चित्र सुदर तथा आकषक रूप मे चित्रित हुए हैं। उन्होने प्रकृति के विराट् रूप सौदय को नाना उपमाओ एव रूपको से सुशोभित करके स्वर मुखर किया है। लक्षणा और व्यजना शक्तियो से तथा प्रतीको के प्रयोग से समृद्ध होकर महादेवी की सूक्ष्म, कोमल भाव व्यजना सजीव बन गई है। महादेवी के काव्य मे सरलता नही है परन्तु सरसता और प्रवाह तो है ही। उनके काव्य का कल कल प्रवाह सरसता घोलता हुआ पाठक को आनन्द लोक म पहुँचा देता है। इस प्रकार अपने कला-पक्ष की समद्धि द्वारा महादेवी ने अपने भाव-पक्ष की कसक, तीव्र और मधुर अनुभूति को विशेष कला सौष्ठव के सहारे दूसरों तक पहुँचाया है।

नश्वर ससार की निस्सारता एव दुख की अनुभूति से महादेवी लोकोत्तर आलम्बन (अक्षर पूण पुरुषोत्तम अद्वैत ब्रह्म) की ओर उन्मुख हुई और उसके अनुसधान मे उन्हे कभी तृप्ति नही हुई। यही अतृप्ति उनकी वेदना और पीडा का मूल कारण है। परमात्म तत्त्व के विरह की यह वेदना महादेवी को प्रिय रही है। असीम के साथ ससीम की एकरूपता—यही उनका मूल ध्येय है। इसी प्रिय स मिलने की विकलता, विरहजनित पीडा और निराशा के स्वर उनके काव्य म सवत्र मुखर हैं। ससीम आत्म तत्त्व असीम परमात्म तत्त्व म लीन होना चाहता है। महादेवी की यह व्यक्तिगत पीडा और समष्टिगत वेदना दोना उनकी निजी अनुभूति में इस प्रकार गुम्फित हो गए हैं कि पीडा स्वय साकार तथा सबकी अर्थात ससार की बन कर बोल उठती है।

आदिभौतिक और स्थूल पीडा महादेवी के काव्य म बिल्कुल नहीं है। जिस तडप उत्पीडन वेदना और दद का दीदार उनके काव्य म प्रकट होता है वह शत प्रतिशत आध्यात्मिक ही है। इस पीडा का सम्बध दव से है। आत्मा, हृदय और मन की व्यथा ही तन को तडपाती है। स्थूल के बदले सूक्ष्म स्वानुभूति की आवेगपूर्ण

अभिव्यक्ति ही महादेवी के काव्य वैभव की श्री सपत्ति है। अपना आध्यात्मिक भाव बोध उन्होंने जिस तीव्रता, व्यापकता, गहराई और सहज तथा स्वाभाविक ढग से अभिव्यक्त किया है, वह अनन्य है। वस्तुत महादेवी के आँसू तो वे अनमोल मोती हैं जो हृदय सागर के गहनतम पट म से किसी आकस्मिक बडवाग्नि के कारण उलट-पलट कर बरबस बरस और बिखर पड़े हैं। ये शरीर के नही, आत्मा के आँसू हैं। महादेवी स्वय कहती हैं—

"मैं कण-कण मे ढाल रही हूँ अलि, आसू के मिस प्यार किसी का।
मैं पलकों मे पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का।"

यह सुकुमार सपना और प्यार किसी नश्वर प्रियतम का नही वरन् असीम, अक्षर, अद्वत ब्रह्म का ही है। इस अलौकिक प्रिय की रहस्यानुभूति, आत्मा की परमात्मा में लीन होने की आकुलता, इसी के विरह की पीडा तडप और अद्वैत रूप में आत्म-समपण की भावाभिव्यक्ति ही महादेवी के काव्य मे मुखर है।

महादेवी की कविता 'पस्पिरेशन' की नहीं, अपितु शत प्रतिशत 'इस्पीरेशन' की उपज है। हाँ यह 'इस्पीरेशन' बाह्य नही वरन् आतरिक सवेदनशीलता पर आधारित आध्यात्मिक है। जिस रहस्यमय आलोक की अनुभूति महादेवी ने अपनी जीवन साधना मे प्राप्त की है, उसकी सफल एव सबल अभिव्यक्ति द्वारा इस अतमु खी कवयित्री ने समग्र हिंदी भाषी पाठको को भी अनुभूति कराई है। स्व' की भावना को 'सव' की भावना बना देना महादेवी की काव्य कला की सबसे बडी विशेषता है। उनके कवित्व की सफलता यही है कि साकेतिक, अथ प्रधान, वक्र और दुरूह लगने वाली कविता भी पाठक का एक प्रकार की मधुर ध्वनि से अभिभूत कर देती है तथा उसे गाने और गुनगुनाने को प्रेरित करती है। महादेवी के गीतो में कुछ ऐसा तत्त्व अवश्य है कि वह बुद्धिगम्य होने पर भी लोक भोग्य बन जाता है। इसका कारण स्पष्ट है—उनका व्यापक वेदना भाव असख्य व्यक्तियो के दुःख में अपना दु ख मिलाकर व्यक्त हुआ है। वे कहती हैं—' मेरे गीत अध्यात्म के अमूत आकाश के नीचे लोक गीतों की धरती पर पले हैं।" (दीपशिखा, पृष्ठ ६०)

महादेवी की करुणा Lips that fail to kiss begin to sing वाला विफल जीवन का रुदन नहीं है। उनके गीत जीवन की आसक्ति और जीवन के सुन्दरतम रूप की भावना को लेकर चले हैं। सत्य और सौदय का अखण्ड रूप ही इनका आलम्बन है। प्रकृति का विराट रूप सौन्दय इनका उपकरण है। प्रेम और प्रकृति महादेवी के मुख्य विषय हैं। इस बाह्य जगत की अपूणता की उपेक्षा करके एक पूण व्यक्तित्व की कल्पना और उसके प्रति निदोष आत्मसमपण द्वारा पूणता की कामना महादेवी के काव्य का मुख्य स्वर है। आत्मसमपण द्वारा उन्होंने प्रियतम की प्राप्ति

संदर्भ के अनुसार भिन्न अर्थ देता है, अत किसी को उसमे दुरूहता भी दीख सकती है। अभिधा का आश्रय महादेवी ने अधिक नही लिया, इसलिए वक्रता और उक्ति वचित्र्य के कारण उनका काव्य ध्वनि और सकेत प्रधान (Suggestive) बन गया है। यह भी काव्य का एक आवश्यक गुण है।

विदुषी होने के कारण महादेवी ने अपने गीति-काव्य मे आत्मनिष्ठता, लाक्षणिकता, दर्शनपरक तथा अध्यात्ममूलक अनुभूतियो को चित्रोपम, मूर्ति छाया या बिम्ब विधान आदि काव्य विधानो द्वारा अभिव्यजित किया है। उनके कल्पना चित्र रगीन तथा आकर्षक हैं। उनकी कल्पना शक्ति या बिम्बविधान अपना सानी नही रखता। जिस भावना का रूप दर्शन कवयित्री ने अपने मानस पटल पर अनुभव किया है उसे प्रतीको और रूपको के सहारे प्रकृति की उपमाओ से अलकृत करके सुदर स्वरूप प्रदान किया है। उनकी काव्य गेलेरी मे कल्पना के चित्र सुदर तथा आकर्षक रूप म चित्रित हुए हैं। उन्होने प्रकृति के विराट रूप सौंदर्य को नाना उपमाओ एव रूपकों से सुशोभित करके स्वर मुखर किया है। लक्षणा और व्यजना शक्तियो से तथा प्रतीको के प्रयोग से समृद्ध होकर महादेवी की सूक्ष्म, कोमल भाव व्यजना सजीव बन गई है। महादेवी के काव्य मे सरलता नही है, परन्तु सरसता और प्रवाह तो है ही। उनके काव्य का कल-कल प्रवाह सरसता घोलता हुआ पाठक को आनन्द लोक म पहुँचा देता है। इस प्रकार अपने कला-पक्ष की समद्धि द्वारा महादेवी ने अपने भाव पक्ष की सशक्त, तीव्र और मधुर अनुभूति को विशेष कला-सौष्ठव के सहारे दूसरों तक पहुँचाया है।

नश्वर ससार की निस्सारता एव दुख की अनुभूति से महादेवी लोकोत्तर आलम्बन (अगोचर पूर्ण पुरुषोत्तम अद्वैत ब्रह्म) की ओर उन्मुख हुई और उसके अनुसधान मे उन्हें कभी तृप्ति नही हुई। यही अतृप्ति उनकी वेदना और पीड़ा का मूल कारण है। परमात्म तत्त्व से विरह की यह वेदना महादेवी को प्रिय रही है। असीम के साथ ससीम की एकरूपता—यही उनका मूल ध्येय है। इसी प्रिय से मिलने की विकलता, विरहजनित पीड़ा और निराशा के स्वर उनके काव्य म सर्वत्र मुखर हैं। ससीम आत्म तत्त्व असीम परमात्म तत्त्व म लीन होना चाहता है। महादेवी की यह व्यक्तिगत पीड़ा और समष्टिगत वेदना दोनो उनकी निजी अनुभूति में इस प्रकार गुम्फित हो गए हैं कि पीड़ा स्वय साकार तथा सबकी अर्मान ससार की बन कर बोल उठती है।

आधिभौतिक और स्थूल पीड़ा महादेवी के काव्य म विद्यमान नहीं है। जिस तरह उत्पीड़न वेदना और दुःख का दीदार उनके काव्य म प्रकट होता है वह सब प्रतिरूप आध्यात्मिक ही है। इस पीड़ा का सम्बन्ध देव से है। आत्मा हृदय और मन की व्यथा ही मन को तड़पाती है। स्थूल के बदले सूक्ष्म स्वानुभूति का आग्रहपूर्ण

अभिव्यक्ति ही महादेवी के काव्य वैभव की श्री सपत्ति है। अपना आध्यात्मिक भाव-बोध उन्होंने जिस तीव्रता, व्यापकता, गहराई और सहज तथा स्वाभाविक ढग से अभिव्यक्त किया है, वह अनन्य है। वस्तुत महादेवी के आँसू तो वे अनमोल मोती हैं, जो हृदय-सागर के गहनतम पट म से किसी आकस्मिक बडवाग्नि के कारण उलट-पलट कर बरबस बरस और बिखर पड़े हैं। ये शरीर के नही, आत्मा के आँसू हैं। महादेवी स्वय कहती हैं—

"मैं कण-कण मे ढाल रही हूँ अलि, आसू के मिस प्यार किसी का।
मैं पलकों मे पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का।"

यह सुकुमार सपना और प्यार किसी नश्वर प्रियतम का नहीं वरन् असीम, अक्षर, अद्वत ब्रह्म का ही है। इस अलौकिक प्रिय की रहस्यानुभूति, आत्मा की परमात्मा मे लीन होने की आकुलता, इसी के विरह की पीडा, तडप और अद्वत रूप में आत्म-समपण की भावाभिव्यक्ति ही महादेवी के काव्य म मुखर है।

महादेवी की कविता 'पर्स्पिरेशन' की नहीं, अपितु शत प्रतिशत 'इस्पीरेशन' की उपज है। हाँ, यह 'इस्पीरेशन' बाह्य नही वरन् आतरिक सवेदनशीलता पर आधारित आध्यात्मिक है। जिस रहस्यमय आलोक की अनुभूति महादेवी ने अपनी जीवन-साधना में प्राप्त की है, उसकी सफल एव सबल अभिव्यक्ति द्वारा इस अतमु खी कवयित्री ने समग्र हिंदी भाषी पाठको को भी अनुभूति कराई है। 'स्व' की भावना को 'सव' की भावना बना देना महादेवी की काव्य कला की सबसे बडी विशेषता है। उनके कवित्व की सफलता यही है कि साकेतिक अथ प्रधान वक्र और दुरूह लगने वाली कविता भी पाठक का एक प्रकार की मधुर ध्वनि से अभिभूत कर देती है तथा उसे गाने और गुनगुनाने को प्रेरित करती है। महादेवी के गीतों में कुछ ऐसा तत्त्व अवश्य है कि वह बुद्धिगम्य होने पर भी लोक भोग्य बन जाता है। इसका कारण स्पष्ट है—उनका व्यापक वेदना भाव असख्य व्यक्तियो के दुख में अपना दुःख मिलाकर व्यक्त हुआ है। वे कहती हैं—'मेरे गीत अध्यात्म के अमूत आकाश के नीचे लोक-गीतों की धरती पर पले हैं।" (दीपशिखा, पृष्ठ ६०)

महादेवी की करुणा Lips that fail to kiss begin to sing वाला विफल जीवन का रुदन नहीं है। उनके गीत जीवन की आसक्ति और जीवन के सुन्दरतम रूप की भावना को लेकर चले हैं। सत्य और सौन्दय का अखण्ड रूप ही इनका आलम्बन है। प्रकृति का विराट रूप सौन्दय इनका उपकरण है। प्रेम और प्रकृति महादेवी के मुख्य विषय हैं। इस बाह्य जगत की अपूणता की उपेक्षा करके एक पूण व्यक्तित्व की कल्पना और उसके प्रति नि शेष आत्मसमपण द्वारा पूणता की कामना महादेवी के काव्य का मुख्य स्वर है। आत्मसमपण द्वारा उन्होंने प्रियतम की प्राप्ति

अनुभव की है। यहाँ कवयित्री जगत एव प्रकृति के नाना खण्ड रूपो ग
असण्ड और अरूप चेतन तक पहुँची हैं। अखण्ड चेतना से तादात्म्य भी ए
महादवी की साधना का सार है। अत महादवी की करुणा भी भव्य
की भावना से युक्त है। दु ख सुख म सामजस्य की भावना के साथ
प्रकति सौन्दय के गीत गाकर महादेवी न काव्य-कला को अनोखा माधु
प्रदान किया है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर महाप्रयाण ही महादेवी के का
है। इस प्रक्रिया मे मानवीय भावनाओ के परिष्कार का प्रयास मूर्तिमत

महादेवी ने जगत और जीवन मे जो कुछ देखा, परखा अनुभ
कल्पना की उसे अपनी कला और शली म मूर्तिमत भी किया है। उ
क्षमित ने अनेक प्रकार के भाव चित्र प्रस्तुत किये हैं। नीहार (१६३०), र
नीरजा (१६३४), साध्यगीत (१६३६) दीपशिखा (१६४०) आदि क
महादवी ने अपनी भावनाओ के दपण म जो कुछ चित्र दशन किया तथा
की उडान म जो रूप-सौन्दय अनुभूत किया उसी को प्रतिबिबित किया है।
कल्पना और पर' इन सबके व्यापक और गहन अनुभूति चित्र महादव
उनका यह चित्रण प्रेम, विरह, वेदना, करुण अवसाद आदि पर आधा

अटूट विश्वास और गहरी श्रद्धा ही मनुष्य को टूटने और मिटने स
औषधि है। महादेवी के गीतो म यही भावना मुखरित हुई है। वे जगत
से घबराकर जीवन से पलायन नही करती हैं वे जीवन प्रवेश और जी
आस्था रखती हैं। लौकिक दुख एव निराशा मे भी अलौकिक सम्ब
जीवन की कम साधना अन्तिम श्वास तक रह सकती है, यह महादेवी
जीकर बताया है। कवयित्री ने अपने जीवन म केवल निराशापूण रुदन
अपितु अनासक्त कमयोग को अपनाया है। गीता के कमयोग को
अपने जीवन मे मूर्तिमत किया है तो शायद वह केवल महादवी ने ही।
ससद विद्यापीठ तथा अन्य अनेक साहित्यिक एव सामजिक सस्थाओ मे
महादवी न अपना जीवनयात्रा का सफल बनाया है। उनका समूचा जी
स्रोत है जिसमे आडम्बर निराशा और फरियाद या शिकवे के स्वर नही
करुणा श्रद्धा भक्ति और तन्मयता तथा शुद्ध और निमल जीवन का क
साधना है। उन्होने सीमित स्व को असीम 'पर' म इस प्रकार मिल
दोनो मे कोई भेद रेखा ही दिखाई नही देती। व केवल बुद्धि के चमत्क
नही बोलती, उनकी आवाज उनके सात्विक जीवन की शुद्ध एव सरल
है। भावना करुणा रागात्मकता कमठता और विराटता ही उनके
काव्य वभव के आधार स्तम्भ हैं।

'अनुभूतियों से रूप, कल्पना से रग और भाव-जगत से सौंदय बटोर कर महादेवी ने अपने का य-देवता की मूर्ति गढी है।' उनके का य देवता का वैभव अनन्त काल तक न मिटने वाला अक्षय कोप है जिसम सभी प्रकार के सघन तरल, सरस, क्षुब्ध, सुख दु खात्मक, स्थूल सूक्ष्म, लौकिक और अलौकिक रत्न भरे पडे हैं। जिसको जो रत्न रुचे वह उसे ही चुन ले!

डॉ० शिवनन्दन कपूर

१५

महादेवी का भाव-साम्य और काव्य-विशेषताएँ

कविता और महादेवी दोनों ही नारी हैं। समवत इसी कारण वे कविता की अन्तरात्मा मे अवगाहन कर सरस्वती के शृगार म सर्वाधिक सफल हो सकी हैं। नारी को नारी से अधिक सज्जित और कौन कर सकता है ? उनकी कविता मे वनमाला सा अकृत्रिम सौन्य है । छायावादी काव्य म प्रसाद ने यदि प्रकृति तत्त्व मिलाया, पत ने शब्दों को सरस और सुडौल बनाया तो महादेवी ने उसमे प्राण प्रतिष्ठा की। काव्य, सगीत और चित्र की ऐसी अपूव त्रिवेणी इस कलाकार के जीवन मे प्रवाहित हुई है कि प्रयाग आज दुहरे पद का अधिकारी हो गया है।

आपके विभिन्न कविता सग्रहो के शीषक ही का यात्मक नही, उनके विषयों म भी विविधता रही है। नीहार' मे आकषण और पीडा की अनुभूति 'रश्मि' में दाश निक सिद्धा त 'नीरजा' मे विरह-व्यथा 'साध्य गीत मे आत्म तोष और दीपशिखा' मे साधना की गति की विवति है। १९६० म सप्तवर्णी 'सप्तपर्णा प्रकाशित हुई। इसमे सस्कृत के प्रख्यात कवियो की प्रमुख कृतिया के अनुवाद सकलित हैं। वदिक सूक्त से लेकर वाल्मीकि, कालिदास, जयदेव प्रभति सभी कवियो की रचनाओं का रसास्वादन इसमे उपलब्ध है। एडगर एलन पो की 'सौंदय की लयपूण सष्टि' वाली कविता की परिभाषा महादेवी जी की कविताओ पर पूण घटित होती है (Poetry is the rhythmic creation of beauty)। आपकी कविता की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं —

१ वदनाभाव — एको रस करुण एव निमित्तभेदात कह कर कवि भवभूति ने करुण रस को प्रधानता दी। क्रौंच वध ने आदिकवि के हृदय के शोक को श्लोक में परिणत किया शोक श्लोकत्वमाप्नुयात। लागफेलो ने प्रत्येक व्यक्ति के जीवन म करुणा के आपात् की समावना की है—

"In to each life some must fall,
Some days must be dark and dreamy"

जमन कवि गेटे ने भी इन्ही भावनाओं की पुष्टि करत हुए कहा है—

'Who never his bread in sorrow ate,
Who never the mournful midnight hours

weeping on his bed has sate,
he knows you not, ye heavenly power"

कवि शली की दृष्टि मे तो दुखमय भावनाओ के वाहक गीत ही मधुमय होते हैं—"Our sweetest songs are those which tell our saddest thoughts" रवि ठाकुर को इसी करुण भावना के कारण ताजमहल काल के कपोल पर स्थित अश्रु जल सा प्रतीत हुआ था—

"एक बिन्दु अश्रु जल
कालेर कपोल तले शुभ्र समुज्ज्वल,
एइ ताजमहल।"

महादेवी ने भी अपने करुणामय' के वरण हेतु वेदना की वरमाला, वेदना के सूत्र में गुम्फित आँसुओ की माला ग्रहण की है। अपने मन की पीडा, अपने दुखवाद के सबध में उन्होंने रश्मि' की भूमिका मे कहा है "सुख और दुख के धूपछाहीं डोरों से बुने हुए जीवन मे मुझे केवल दुख ही गिनते रहना क्यो इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। ससार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन मे मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा मे सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर दुख की छाया नहीं पड सकी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।"

दुख को अत्यधिक महत्व देते हुए उन्होंने 'यामा' की भूमिका में लिखा "दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे ससार को एकसूत्र मे बाँधने की क्षमता रखता है।" ससार के राग रग से परिपूर्ण उमग से उच्छलित उल्लसित वातावरण में कवयित्री अपने का अपरिचित सा पाती हैं। वह अपने आपसे पूछती हैं "अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गई परदेशिनी री'। पीडा उन्हें सतत प्रिय है। उन्हें तो 'वेदना मे जन्म, करुणा मे मिला आवास।' इस मीठी-सी पीडा में उनके जीवन का प्याला डूबा है। केवल आसुओ की माला लिपटी-सी उतराती है। उसका सवस्व छिपा है इन दीवानी चोटों मे।' उसकी दृष्टि में तो दद सहना प्रिय की प्राप्ति के लिये परमावश्यक है—"क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना।'

जब से उस करुणामय 'मनमोहन' ने मन को मथा, पीडा का नवनीत चारों ओर से सिमट कर उतराया। बस

"जीवन है उन्माद तभी से निधिया प्राणों के छाले।
माग रहा है विपुल वेदना के प्याले पर प्याले॥"

यह पीडा मन में इतनी बनी कि साधिका आराध्य में भी उस पीडा की खोज करने

लगी—'तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुममें ढूँढूँगी पीड़ा।' इस पीड़ा में उसे कष्ट नहीं। वह पीड़ा की चरमता तक पहुँच चुकी है और अन्तिम सोपान पर "मैं का हूँ" से गुजरता है दवा हो जाना।' उसके ही शब्दों में, "है पीड़ा की सीमा यह दुख का चिर सुख बन जाना।" पीड़ा का मूल्य देकर उसने उसे प्राप्त भी कर लिया, "पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में। पीड़ा के पाथेय से पूरित साधना को प्रनष्ट कर यदि देवलोक भी मिले तो त्याज्य है। पीड़ा रहित स्वर्ग की सरस कल्पना को तो वह दूर से ही प्रणाम करती है

"ऐसा तेरा लोक वेदना नहीं नहीं जिसमें अवसाद।
जलना जाना नहीं नहीं जिसने जाना मिटने का स्वाद।
क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार।
रहने दो हे देव, अरे! यह मेरे मिटने का अधिकार।।"

बंगला कवयित्री कामिनीराय ने भी वेदना पर बल देते हुए कहा है,

"यातना यातना यातनाई सार
नर भाग्ये सुख कलनो नाई।"

(किन्तु, कामिनीराय की यह पीड़ा विवशता एवं निराशात्मक भाव से व्याप्त विषाद है। दुख को सुख की भाँति ग्रहण करने की भावना नहीं।)

२. मृत्यु की महत्ता—वियोग से संबद्ध दस दशाओं में मृत्यु की भी गणना की गयी है। विरह की चरम कोटि पर आकुल विरहिणी मरण दशा पर पहुँच जाती है। वैसे भी, पीड़ा विह्वल मन, बंगला कवयित्री कामिनीराय के स्वरों में यही चाहता है, "जाक जाक प्राण, निवुक ए ज्वाला" अर्थात प्राण निकल जायँ, पर यह वेदना तो मिटे। वेदनामयी होने के कारण ही महादेवी ने अपने विषादमय जीवन में मृत्यु को महत्त्व दिया है। उनके जीवन में 'मृत्यु का उत्सव अजर है।' मरण के पर्व को वे दीपावली के रूप में मनाती हैं। उनकी दृष्टि में "अमरता है जीवन का ह्रास, मृत्यु जीवन का चरम विकास।" अन्य कवियों की अपेक्षा उनके चिन्तन में अन्तर है। वे मृत्यु को 'त्यौहार' या आनन्दमय उत्सव ही नहीं, जीवन की सर्वोच्च प्रगति मानती हैं। मरण के माध्यम से उस आराध्य में तन्मय होने की यह उत्कण्ठा इतनी तीव्र है कि तन्मय राधा' बनी उनकी वेदना विश्वात्मा से विनय कर उठती है—

"नहीं अब गाया जाता देव, थकी अँगुली, हैं ढीले तार।
विश्व वीणा में अपनी आज, मिला लो यह अस्फुट झंकार।"

कबीर ने भी कुछ इसी विह्वलता की स्थिति में कहा था—

"कै बिरहिनि कूँ मीच दे, कै आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाइ।।"

रवि ठाकुर ने तो मृत्यु को प्रेम का ईश्वरीय दूत माना था 'प्रेमेर दूत के पठावे नाथ कबे।" बगला कवयित्री गिरीन्द्र मोहिनी ने 'अश्रु कण' शीर्षक कविता म वेदना से उदभूत आँसुओ को हृदय का उन्मत्त आह्वान तथा जीवन और मृत्यु का मिलन मानकर पीडा तथा मृत्यु की एकता स्थापित की है—

"ए शोकाश्रु,
हृदयेर उन्मत्त आह्वान
ए शोकाश्रु,
जीवनेर जन्मान्त आलिंगन।"

३ सुख-दुःख का सामजस्य—प्रसाद तथा पत की भाति महादेवी के काव्य मे भी सुख दुःख का समन्वय प्रमुख रूप से मिलता है। प्रसाद के 'आँसू' मे सुख-दुःख दोनों नाचेंगे, क्योकि है खेल आख का मन का।' पत ने भी जीवन को अति सुख' और 'अति दुःख' दोनो से पीडित बताकर दोनो क समाहार का उल्लेख किया है—

"सुख दुःख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन।'

महादेवी जी न भी नयनो के अश्रु नीर' को 'दुःख से आविल, सुख से पंकिल', और युग युग से अधीर' बहते देखा है। उनकी 'अश्रुमयी हँसती चितवन' है। इसीलिये—

"सुनहले सजील रगीले छबीले,
हसित कटकित अश्रु मकरद गीले।
बिखरते रहे स्वप्न के फूल अनगिन।'

महादेवी का प्रिय उन्हे अश्रुहास के धूपछाही रगो से अनुरजित किये रहता है। कभी इनके आँसू उसकी मुस्कान से, शबनम से, रगीन हो जाते हैं और कभी इनका उल्लास उसकी निठुरता से तरल हो उठता है—

"देते हो तुम फेर हास मेरा,
निज करुणा जल कण से भर।
लौटाते हो अश्रु मुझे तुम,
अपनी स्मिति से रगीमय कर।"

उसके लिये तो दुःख-सुख दोनो समान हैं। प्रिय की अनुराग मधुरिमा में मिल कर सभी मधुर हो गये—

दुख-सुख मे कौन तीखा, मैं न जानी औ न सीखा
मधुर मुझको हो गये सब, मधुर प्रिय की भावना ले।"

अब तो उसकी एकमात्र आकाक्षा दोनो के समन्वय के साथ पीडा के विशेष ग्रहण की है। वह चाहती है यदि कभी मिलन भी हो तो पीडामय दुःख और सुख के

सामंजस्य के साथ मधुमयी पीड़ा मन में करवाती रहे, "आये बन मधुर मिलन क्षण, पीड़ा की मधुर कसक-सा।"

सुख दुःख का सामंजस्य ही तो मानव की साधना भूमि पर शुचिता के सुमन खिलाता है। ताने और बाने से सुख तथा दुःख गूँथ कर, मानवीय आत्मा को एक दिव्यावरण देते हैं

"Joy and woe are woven fine
A clothing for the soul divine

४ चिर वियोग—सच्चा प्रेमी मिलन के लिये समुत्सुक नहीं होता। मिलन में वह तड़प, तलफन, वह विह्वलता वसी तीखी तृषा, चिरंतन ज्वाला कहाँ ? मिलन के एक उद्दाम आवेग में सारी आकुलता प्रेम की प्रबलता और उत्सुकता शीतल हो जाती है। दूध के उफान में ठंडे छींटे पड़ जाते हैं। कालिदास ने 'मेघदूत' में स्पष्ट घोषणा की है कि विरह में स्नेह इष्ट वस्तु के अभोग से पुष्ट होता है—

'स्नेहानाहु किमपि विरहे ध्वसिनस्तेत्वभोगा,
दिष्टेवस्तुयुपचितरसा प्रमराशी भवति॥"

अभीष्ट की पूर्ति के समान मिलन भी हमारे अनुराग की आग बुझा देता है। कहा गया है—

"तुम मिले प्यार की साधना खो गई।
तुम गये भावना को डगर मिल गई।"

महादेवी ने तो मिलन और विरह को समान रूप से जीवन में अपनाया है। उनके अनुसार तो वियोग का रुदन ही मिलन सुख देने में समर्थ है-

"रुदन में सुख की कथा है,
विरह मिलने की प्रथा है।"

इसीलिये तो 'विरह की घड़ियाँ हुई, अलि मधुर मधु की यामिनी-सी।" उनका जीवन 'विरह का जलजात' है। वियोग उनके जीवन में इतना रम, इतना भिद गया है कि वे संयोग की सुखद कामना की कौन कहे संयोग का नाम भी नहीं सुनना चाहती, 'मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ।" वियोग समाधि लगाकर वे प्रिय से तन्मयता का अनुभव करती हैं। तन्मयता के कारण ही—

'मैं मिटी निस्सीम प्रिय में,
वह गया बँध लघु हृदय में,
अब विरह की रात को तू चिर मिलन का प्रात रे कह।"

मिलन में प्रेम के मधु अवसान और सुषुप्ति, तथा विरह में स्नेह के जागरूक एवं सप्राण रहने का संकेत स्वर्गीय रामनरेश त्रिपाठी ने भी किया था

'मिलन प्रेम का मधुर अन्त है और विरह जीवन है।
विरह प्रेम की जाग्रत गति है, और सुषुप्ति मिलन है॥"

५ चिर अतृप्ति—चिरतन वियोग की कामना चिर अतृप्ति की आकाक्षा उत्पन्न करती है। प्रिय की उपलब्धि सभव होने पर भी उससे दूर रहते हुए तडपने का सुख चक्रवाक ही जानता है। किन्तु उसकी भी यह अतप्ति अचिरस्थायिनी होती है। जीवन भर के लिये प्यास का पत्थर गले मे बाँध कर स्नेह की सरिता मे समा जाने का साहस सभी म नही होता।

ब्राउनिग की भाँति महादेवी जी म भी चिर अतप्ति की अभिलाषा है। वे प्रिय को 'पाने मे खोना' और 'खोने म पाना' समझ कर अपनी आँख मिचौनी को चिरन्तन करना चाहती हैं। उनकी मा यता के अनुसार—

"चिर तप्ति कामनाओं का कर जाती निष्फल जीवन।
बुझते ही प्यास हमारा, पल मे विरक्ति जाती बन॥"

इसीलिये तो व अपने आराध्य से अनुरोध करती हैं

"मेरे छोटे जीवन मे देना न तप्ति का कण भर।
रहने दो प्यासी आँखें, भरती आसू के सागर॥"

यह तपर रग रग में रमी है, रोम रोम मे समाई है। अब तो उनका उन्मुक्त घोषणा है 'पी पी मैं चिर दुख प्यास बनी।"

इस प्यास के प्रबल मोह के कारण ही वे चाहती हैं कि, 'यह चिर अतृप्ति हो जीवन, चिर तष्णा हो मिट जाना।"

६ उत्सग की भावना—सच्चा प्रमी प्रतिदान की कामना नही करता। वह तो शकर सा विरह का विषम विष पीता, प्रिय के लिये अपने को विसर्जित कर देता है। महादेवी ने भी 'मैं मिटूं', ज्यों मिट गया घन' कहकर उत्सग की कामना व्यजित की है। यह उत्सग न केवल प्रिय के लिये अपितु प्राणि मात्र के हेतु है। इसा कारण उन्होंने अपने नश्वर जीवन की 'नीर भरी बदली' के रूप म कल्पना की है।

बगला कवयित्री कामिनीराय ने भी १८८० म कुछ इसी प्रकार की प्रख्यात पक्तियाँ लिखी थी। उन्होने भी चडीदास की भाँति, मानव को सर्वोपरि सत्य मानते हुए वसुधव कुटुम्बकम' का आदश अपनाया। उन्होने लिखा था इस पृथ्वी पर कोई भी ऐसा प्राणी नही होगा जो केवल अपने लिये चिन्तित हो। सभी सबके लिये हैं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे क लिये है—

"आपनारे लोये विव्रत रहिते
आसे नाई के ह अवनी परे।
सकलेर तरे सकले आमरा
प्रत्येके आमरा परेर तरे।"

उडिया साहित्य की कुन्तला कुमारी ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। वे कहती हैं संसार सेवा ही मेरे जीवन का लक्ष्य बने । अनेक व्याघातो और शतशत पीडाओ से भी मन क्षण भर भी हताश न हो—

"हऊ विश्व सेवा मो जीवनव्रत,
आसु बाधा, आसु दुःख शत शत,
न हुए जेहे मन खनेक निराशा।"

७ मुक्ति की अनिच्छा—पराथ निःस्वार्थ भाव से काम करने वाला मुक्ति कामना से भी उन्मुक्त रहता है। उसके महान् लक्ष्य के समक्ष मोक्ष का भी महत्त्व नही। वह इसी संसार मे साधना रत रहकर जीवन-यापन करता है। महादेवी अनन्त की साधिका होकर भी मुक्ति नही चाहती। प्रिय का 'सपने म बाँध कर' वे अपने 'सौ सौ लघुतम बधन मे' मुक्ति को भी बाँध लेना चाहती हैं। रवि ठाकुर ने भी सम्पूर्ण बधनो के मध्य ही मुक्ति की माँग की थी सकल बधन माँझे लभिब मुक्तिर स्वाद। महादेवी तो चाहती हैं—"मैं भरी बदली रहूँ", फिर मुक्ति का सम्मान कैसा ?

मुक्ति को वे बधन मानती हैं, बिना पीडा के मुक्ति कैसी ?

"जिसमें कसक न सुधि का दशन
प्रिय मे मिट जाने के साधन ।
वे निर्वाण-मुक्ति उनके
जीवन के शत बधन मेरे।"

मुक्ति के माध्यम से अपने को अपने अस्तित्व को पूर्ण लुप्त कर देना उन्हें रुचिकर नहीं। स्व-सत्ता, निज साधनास्थिति को बनाए रखना उन्हें प्रिय है। कबीर ने भी कहा था,

'हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराय ।
बूँद समानी समुद म सो कत हेरी जाय ॥"

८ उपालम्भ—बाँह छुडाकर निठुरता से चले जाने वाले कृष्ण को सूरदास ने उलाहना दिया था—

"बाँह छुडाये जात हो, निबल जानि के मोहि ।
हिरदय ते जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि ॥"

महादेवी ने भी अपने आराध्य को कम उलाहने नहीं दिये हैं उनका निम्न उपालम्भ ही अपने-आप म सशक्त है—

"भिक्षुक से फिर जाओगे, जब लेकर यह अपना धन ।
करुणामय तब समझोगे इन प्राणों का मँहगापन ॥"

९ अमर सम्बन्ध— बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ' कहकर महादेवी

ने निज प्रिय से अभिनता व्यक्त की है। रवि और रश्मि, बादल और विद्युत् के समान वे भिन्न होकर भी अभिन्न हैं,

'मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं जसे रश्मि प्रकाश,
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यो घन से तडित विलास।"

एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नही। यह एकता यहा तक बढ़ी कि प्रेयसि और प्रियतम के सासारिक सम्बन्ध अभिनव मात्र रह गय 'नीरजा' म इस भावना की अभिव्यजना इस प्रकार हुई है

"चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर-सगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम
काया छाया मे रहस्यमय, प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

इसी कारण वे निरन्तर प्रिय की समीपता का अनुभव करती हैं। यदि 'मीरां' को 'हरि आवन की आवाज' सुनाई देती थी तो महादवी के प्रिय भी 'मानस मे धीरे धीरे आए' हैं।

प्रिय से अमर, अक्षुण सम्बन्ध के कारण ही वे अमर सुहाग भरी' हैं। मीरां ने भी ऐसे ही अमर सम्बन्ध की आकाक्षा की थी,

ऐसे वर को क्या वरूँ जो जन्मे औ मर जाय।
वर वरिये एक सांवरो री म्हारो चुडयो अमर हो जाय।।"

१० स्वप्न मिलन—महादेवी के काव्य मे स्थान-स्थान पर स्वप्न मिलन का भी समावेश हुआ है। यदि मीरां ने गोपाल को सुपने' मे बरा था तो महादेवी के 'स्वर्ण-स्वप्नों का चितेरा' वह नीद के सूने निलय म,' 'सपना बन बन आता रहा'। और फिर पल भर का वह स्वप्न' 'युग युग की पहचान' बन गया। अब तो कवयित्री पलकों में 'सपनो से सेज' बिछाकर किसी भी प्रकार से उस प्रियतम को सदैव के लिये बाँध लेना चाहती हैं। इस स्वप्न मिलन के स्थिर होते ही उसकी तृष्णा, जलन, अतृप्ति सभी तो शान्त हो जायेंगी,

"तुम्हें बाँध पाती सपने मे !
तो चिर जीवन प्यास बुझा लेती इस छोटे क्षण अपने में।"

इन सपनों के लिये तो महादेवी जी जीवन का वरदान लुटाकर 'चिर निद्रा' को भी गले लगाने के हेतु प्रस्तुत हैं। भले ही सांसों का तार टूट जाये, निद्रा चिर निद्रा बन जाये, किन्तु निमीलित नयनों मे नट-नागर का नशीला स्वप्न बना रहे। 'नीहार' में महादेवी जी ने इन्हीं भावनाओ को व्यक्त किया है—

"मेरे जीवन की जागति,
देखो फिर भूल न जाना,
जो ये सपना बन आयें,
तुम चिर निद्रा बन जाना ।।"

११ रहस्यमयता—महादेवी ने लौकिक शृगार के आवरण म आध्यात्मिकता की आशसा की है। इस प्रतिपादन म मधुरिमा है, कांति है, विभा है, जसे जल-चादर के पीछे जगमगाती विद्युत् दीपो की छटा हो ! उनकी कविता म रहस्यवाद की सुर धनु-सी सतरगिणी आभा दृष्टिगत होती है। दूर के सगीत-सा' एक अपरिचित अपनी ओर सतत आकर्षित करता है। मन म जिज्ञासा जागती है—

"शून्य काल से पुलिनों पर आकर चुपके से मौन ।
इसे बहा जाता लहरो मे वह रहस्यमय कौन ।।"

'पत' के मौन निमन्त्रण' म यह आकषण प्रकृति के कोमल तथा कठोर दोनो रूपो म मिलता है। महादेवी जी ने नारी होने के कारण मुख्यत कोमल रूपो म उसका परिचय प्राप्त किया। वे अपने को उस असीम ब्रह्म का एक अश, उस भास्वर भास्कर का एक प्रभामय त्रसरेणु मानने लगती हैं। वह रग रूप हीन इस शरीर मे साकार है—

तुम असीम विस्तार ज्योति के मैं तारक सुकुमार ।
तेरी रेखा रूपहीनता है जिसमे साकार ।।"

'जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है' की भावना उद्भूत होने लगती है। 'सियाराम मय सब जग जानी' की भाँति, या जसे कबीर ने कहा था—

"लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल ।
लाली देखन मै गई, मैं भी हो गई लाल ।।'

आनन्द मग्न होने पर, सब ठौर, उस एक के अतिरिक्त दूसरा दिखाई ही नहीं देता है,

"सदा लीन आनन्द मे सहज रूप सब ठौर ।
दादू देखे एक को दूजा नाही और ।।

महादेवी को प्रकृति मे सवत्र उसी की प्रभा दीखती है। प्राकृतिक सौदय मे उसी को विभुता है। अधोलिखित पक्तियो म इसी विचार की व्यजना है

तेरी आभा का कण नभ को देता अगणित दीपक दान ।
दिन को कनक राशि पहनाता विधु को चाँदी का परिधान ।।"

अब तो 'चिरावकल हैं प्राण मरे कह कर वे उसके प्रति शाश्वत लगन की भी अभि व्यक्ति करती हैं। यही नही, विरह के जलजात' जीवन के लिये उससे अनुनय भी करती हैं—

"जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज ।
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मिति का प्रात ।।"

उसकी अर्चना के लिये वे मंदिर में जाना या देवालय का निर्माण करना नहीं चाहती। धूप दीप अर्घ्य आदि सामान्य उपादान उन्हें तुच्छ प्रतीत होते हैं । 'वह गया बँध लघु हृदय में', फिर 'क्या पूजा क्या अर्चन रे !' यहाँ तो कबीर की सहज समाधि की भाँति सारा पूजन कार्य स्वत सम्पन्न हो रहा है। 'श्वासों का अभिनन्दन,' 'पुलकित रोम के अक्षत', पीडा का चन्दन', स्पन्दन की धूल', 'पलकों के नर्तन' से युक्त होकर वे स्वयं उस असीम का सुन्दर मन्दिर हो उठी हैं। कवि तायुमानवर ने भी इसी प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति की है। तमिल के इस भागवत कवि ने लिखा है कि चिन्तन ही देवालय है। वही सुगन्धि है। अनुराग ही पावन जल है। हे इष्टदेव क्या मेरी अर्चना ग्रहण नहीं करोगे ?

'निनवे कोयिल, निनैवे सुगन्धम, अनबे
मजननीर, पूश कोक्कक्त वाराय परापरमे।"

महादेवी अब निसकोच उद्घोषणा करती हैं— 'प्रिय चिरन्तन है सजनि, क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं।"

प्रिय को आत्मसात कर लेने के उपरान्त तो अब दूत आदि माध्यमों की भी आवश्यकता नहीं, 'प्रिय मुझी में खो गया, अब दूत को किस देश भेजूँ।"

प्रिय से मिलने के लिये मन में उमग उठी। प्रियतमा झूमकर अपने को सजाने लगी प्रिय को रिझाना जो है। अलौकिक प्रियतम होने के कारण उसके शृंगार के साधन भी असामान्य हैं। फिर भी क्या सफलता मिली ?

"शशि के दर्पण में देख देख, मैंने सुलझाए तिमिर केश
गूँथे चुन तारक पारिजात, अवगुंठन कर किरणें अशेष
क्यों आज रिझा पाया उसको, मेरा अभिनव शृंगार नहीं।।"

मन में बसाकर साक्षात करते हुए भी रहस्यवादी कवि विधुरावस्था में उसके विरह का भी अनुभव करते रहे। शृंगार कर प्रतीक्षा करती हुई लौकिक नारी जैसी उपयुक्त व्यजना के समान अभिव्यक्ति कबीर ने भी की है—

"बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम ।
जिव तरस तुझ मिलन कूँ मनि नाहीं विश्राम ।।

प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता'—प्रिय का सौभाग्य पाना ही सौन्दर्य की साथकता है। किन्तु जब वह सौन्दर्य, वह शृंगार, प्रिय को रिझाने में असफल सिद्ध हो तो उससे लाभ ही क्या ? फिर तो वह प्रिय को पाने के लिये आस्था की वेदी

"मेरे जीवन की जागति,
देखो फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवें,
तुम चिर निद्रा बन जाना ।।"

११ रहस्यमयता—महादेवी ने लौकिक शृगार के आवरण मे आध्यात्मिकता की आशसा की है। इस प्रतिपादन म मधुरिमा है, कांति है, विभा है, जसे जल चादर के पीछे जगमगाती विद्युत्-दीपों की छटा हा! उनकी कविता म रहस्यवाद की सुर धनु-सी सतरगिणी आभा दृष्टिगत होती है। दूर के सगीत सा' एक अपरिचित अपनी ओर सतत आकर्षित करता है। मन म जिज्ञासा जागती है—

"शून्य काल से पुलिनो पर आकर चुपक से मौन।
इसे बहा जाता लहरो म वह रहस्यमय कौन ।।"

'पत' के मौन निमन्त्रण' मे यह आकषण प्रकृति के कोमल तथा कठोर दोनो रूपो मे मिलता है। महादेवी जी ने नारी होने के कारण मुख्यत कामल रूपो मे उसका परिचय प्राप्त किया। वे अपने को उस असीम ब्रह्म का एक अश, उस भास्वर भास्कर का एक प्रभामय त्रसरेणु मानने लगती हैं। वह रग रूप हीन इस शरीर म साकार है—

"तुम असीम विस्तार ज्योति के मे तारक सुकुमार।
तेरी रेखा रूपहीनता है जिसमे साकार ।।"

जिधर देखता हू, उधर तू ही तू है की भावना उद्भूत होने लगती है। 'सियाराम मय सब जग जानी' की भांति, या जसे कबीर ने कहा था—

"लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ।।'

आनन्द मग्न होने पर, सब ठोर, उस एक के अतिरिक्त दूसरा दिखाई ही नहीं देता है,

"सदा लीन आनन्द मे सहज रूप सब ठौर।
दादू देख एक को दूजा नाहीं और ।।

महादेवी को प्रकृति म सवत्र उसी की प्रभा दीखती है। प्राकृतिक सौन्दय मे उसी की विभुता है। अधोलिखित पक्तियो मे इसी विचार की व्यजना है,

तेरी आभा का कण नभ को देता अगणित दीपक दान।
दिन को कनक राशि पहनाता विधु को चादी का परिधान ।।"

अब तो चिराकल हैं प्राण मेरे कह कर वे उसके प्रति शाश्वत लगन की भी अभि व्यक्ति करती हैं। यही नहीं, विरह के जलजात' जीवन के लिये उससे अनुनय भी करती हैं—

'जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज ।
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मिति का प्रात ॥''

उसकी अचना के लिये वे मंदिर मे जाना या देवालय का निर्माण करना नहीं चाहती। धूप दीप, अर्घ्य आदि सामान्य उपादान उन्हें तुच्छ प्रतीत होते हैं। 'वह गया बँध लघु हृदय मे' फिर 'क्या पूजा क्या अर्चन रे!' यहाँ तो कबीर की 'सहज समाधि' की भाँति सारा पूजन-कार्य स्वत सम्पन्न हो रहा है। 'श्वासो का अभिनन्दन,' 'पुलकित रोम के अक्षत', पीडा का चन्दन', स्पन्दन की धूल', पलको के नर्तन' से युक्त होकर वे स्वय उस असीम का सुन्दर मन्दिर हो उठा हैं। कवि तायुमानवर ने भी इसी प्रकार के विचारो की अभिव्यक्ति की है। तमिल के इस भागवत कवि ने लिखा है कि चिन्तन ही देवालय है। वही सुगंध है। अनुराग ही पावन जल है। हे इष्टदेव क्या मेरी अर्चना ग्रहण नही करोगे ?

'निनवे कोयिल, निनवे सुगन्धम, अनबे
मजननीर, पूग कोल्कवत वाराय परापरमे।''

महादेवी अब निसकोच उद्घोषणा करती हैं—'प्रिय चिरन्तन है सजनि, क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं।'

प्रिय को आत्मसात कर लेने के उपरान्त तो अब दूत आदि माध्यमो की भी आवश्यकता नहा, 'प्रिय मुझी मे खो गया, अब दूत को किस देश भेजूँ'।''

प्रिय से मिलने के लिये मन मे उमग उठी। प्रियतमा झूमकर अपने को सजाने लगी प्रिय को रिझाना जो है। अलौकिक प्रियतम होने के कारण उसके शृगार के साधन भी असामान्य हैं। फिर भी क्या सफलता मिली ?

''शशि के दर्पण मे देख देख, मैंने सुलझाए तिमिर केश
गूँथे चुन तारक पारिजात, अवगुंठन कर किरणें अशेष
क्या आज रिझा पाया उसको, मेरा अभिनव शृंगार नहीं॥''

मन मे बसाकर साक्षात करते हुए भी रहस्यवादी कवि विमुग्धावस्था मे उसके विरह का भी अनुभव करते रह। शृगार कर प्रतीक्षा करती हुई लौकिक नारी जसी उपयुक्त व्यजना के समान अभिव्यक्ति कबीर ने भी की है—

''बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरस तुझ मिलन कूँ मनि नाहीं विश्राम॥'

प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता—प्रिय का सौभाग्य पाना ही सौन्दय की सार्थकता है। किन्तु जब वह सौन्दय, वह शृगार, प्रिय को रिझाने म असफल सिद्ध हो तो उससे लाभ ही क्या ? फिर तो वह प्रिय को पाने के लिये आस्था की वेदी

पर अस्तित्व का अवसान करने के लिये भी प्रस्तुत है। 'शीश उतारै भुइ धर' वाली भावना मन मे घर कर गयी। अब तो प्रिय की प्राप्ति का यही उपाय है—

'तरी को ले जाम्रो मझधार, डूब कर हो जाओगे पार।
विसर्जन ही है कर्णाधार, वही पहुचायगा उस पार॥'

कुछ ऐसे ही कबीर ने कहा था—

'जो डूबा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ॥"

वैसे महादेवी की साधना मे स्थिरता नहीं है। इसे चाहे विरहिणी की विकलता मानें अथवा बौद्धिक व्यायाम मात्र। उनकी कविता मे कहीं तो द्वैत का स्वर ध्वनित है। यथा—

"तुम सो जाओ मैं गाऊ
मुझको सोते युग बीते, तुमको यों लोरी गाते,
अब आओ मै पलकों मे स्वप्नों से सेज बिछाऊँ।"

इसीलिये तो वे कभी कभी मानिनी की भाँति अपनी सत्ता को समाहित करने के लिये समुत्सुक नही दिखाई देती

"सखि! मधुर निजत्व दे,
कैसे मिलूं अभिमानिनी मैं?"

जब 'बूंद समानी समुद्र मे, तो बिन्दु का निजत्व कहाँ रहेगा?

"जैहे बन बिगरि न वारिधिता वारिधि की,
बूंदता बिलैहे बूंद बिबस बिचारी को।'

'रत्नाकर' की गोपियो सी वे अपनी स्थिति को स्थिर रखती हुई प्रेम के साम्राज्य मे निरन्तर विचरण करना चाहती हैं। कहीं कहीं अद्वैत की गूँज भी है—

(अ) "बीन भी हूँ, मै तुम्हारी रागिनी भी हू।"
(आ) "मै तुमसे हूँ एक, एक हैं जैसे रश्मि प्रकाश।
मै तुमसे हू भिन्न, भिन्न ज्यों घन मे तड़ित विलास॥"
(इ) 'मधुर राग तू मै स्वर सगम।'

कवयित्री ने एक स्थान पर स्वतः स्वीकार किया है 'रहस्यवाद आत्मा का गुण है, काव्य का नहीं। ससार के प्रति विरक्ति अथवा ईश्वरासक्ति के लिये जिस साधना भूमि की अपेक्षा है, उसका उनमे अभाव है। मनोवैज्ञानिक रूप से प्रेरित करने वाली किसी ऐसी निराशा का प्रवेश भी उनके जीवन मे नहीं हुआ। वे स्वतः कहती हैं, "हृदय मे तो निराशा के लिये कोई स्थान नहीं पाती, केवल एक गंभीर करुणा की

छाया देखती हूँ" (आधुनिक कवि) । यह करुणा, यह असीम वेदना आई कहाँ से ? सम्भव है, बौद्ध दर्शन के गहन अध्ययन का प्रभाव हो, अथवा ववाहिक जीवन से उत्पन्न विषमता की विकृति का विष ही विस्तृत एवं विद्रवित होकर प्रवाहित हुआ हो। उन्होंने एक अन्य स्थान पर मित्र का अभाव होने की भी व्यंजना की है, समता के धरातल पर सुख दुःख का मुक्त आदान प्रदान यदि मित्रता की परिभाषा मानी जाए तो मेरे पास मित्र का अभाव है।" भिक्षुणी बनने की उनकी इच्छा भी थी।

गीता में भक्तों की चार प्रकार की कोटियाँ मानी गयी हैं—

"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥"

वे ज्ञानी तो हैं ही, जिज्ञासा वृत्ति भी उनमें प्रबल है। इस जिज्ञासा के संबंध में उन्होंने स्पष्ट कहा है, "मेरी काव्य जिज्ञासा कुछ तो प्राचीन साहित्य और दर्शन मे सीमित रही और कुछ संत युग के रहस्यात्मक आत्मा से लेकर छायावाद के कोमल कलेवर तक फल गयी। करुणा बहुल होने के कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।" (आधुनिक कवि, अपने दृष्टिकोण से, पृष्ठ ३१) इस प्रकार महादेवी जी को जिज्ञासु अथवा ज्ञानी संतो की परंपरा में ले सकते हैं।

महादेवी जी का रहस्यवाद चाहे बौद्ध-दर्शन से प्रभावित हो, अथवा मानसिक प्रेम के (Platonic love) रूप में मात्र बौद्धिक हो, उनके कुछ काव्य-स्थल बुरी तरह खटकते हैं। उदाहरण के लिय अधोलिखित अवतरण ही लें—

"किसको त्यागूं, किसको मागूं, एक मुझे मधुमय विषमय ।
मेरे पद छूते ही होते कांटे कलियाँ प्रस्तर रसमय ॥"

यह तो 'स्थितप्रज्ञ' तथा असीम शक्ति सम्पन्नता की स्थिति है। स्थितप्रज्ञ के संबंध में गीता का कथन है—"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषुविगतस्पृहः ।"

मुझे सन्देह है कि देवी जी पांडित्य की परा कोटि पर पहुँच कर भी 'स्थित प्रज्ञता' प्राप्त कर सकी होंगी। फिर, स्थितप्रज्ञ अथवा कोई भी साधक अपनी सिद्धि की इस प्रकार घोषणा नहीं किया करता। यदि करता है तो, देवी जी क्षमा करें वह आडम्बर (भले ही वाक्याडम्बर वह लें) मात्र है।

१२ *प्रकृति और जीवन का सामंजस्य*—*प्रकृति से महादेवी जी का अविच्छिन्न* संबंध है। उन्होंने अपने काव्य-ग्रन्थों के नाम भी प्राकृतिक उपादानों के आधार पर रखे हैं। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' आदि इसके उदाहरण हैं। देवी जी ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का मानवीकरण किया है। वसंत-रजनी का यह अभिनन्दन मन का अपूर्व रंजन करता है—

"धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी ।
तारकमय नव वेणी बंधन,
शीशफूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन अवगुंठन ।
मुक्ताहल अविराम बिछा दे चितवन से अपनी ।"

सुंदरी वर्षा का यह कोमल रूप भी कितना मनोहर है—

"रूपसि तेरा घन केश-पाश ।
श्यामय श्यामल कोमल कोमल, लहराता सुरभित केश-पाश ।
सौरभ भीना, भीना गीला, लिपटा मृदु अंजन-सा दुकूल,
चल अंचल से झर झर झरते, पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल,
दीपक से देता बार बार, तेरा उज्ज्वल चितवन विलास ।"

प्रकृति के स्वतन्त्र तथा यथातथ्य चित्रण का उदाहरण 'दीपशिखा' का हिमालय भी है। रेखाओं और रंगों की सहायता से (तूलिका नहीं, कलम की) हिमालय पर मेघों का उल्लसित दृश्य अंकित किया गया है—

"तू भू के प्राणों का शतदल ।
सीपी से, नीलम से द्युतिमय
कुछ पिंग अरुण कुछ सित श्यामल
कुछ सुख चंचल कुछ दुख मंथर
फैले तम से कुछ तूल विरल
मँडराते शत शत अलि बादल ।"

'नीहार' में संध्या की एक सौभाग्यशीला, प्रिय की प्रतीक्षा में उत्कण्ठित, नायिका के रूप में कल्पना की गई है। रूपकातिशयोक्ति का सुंदर चमत्कार है—

"गुलाबों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप
विहँसती संध्या भरी सुहाग ।
दृगों से झरता स्वर्ण पराग ॥"

'रश्मि' में, रश्मि को संबोधित कर, कवयित्री प्रकृति के उल्लासमय मनोरम रूप का चित्रण करती है। प्रत्येक छिद्र में मधुपूरित मधु चक्र की भाँति यह गीत मधुरिमा से परिपूर्ण है—

'चुभते ही तेरा अरुण बान ।
बहते कन कन से फूट फूट मधु के निर्झर से सजल गान ।
नव कुंद कुसुम से मेघ-पुंज बन गये इन्द्रधनुषी वितान ।

दे मृदु कलियों की चटक ताल हिम बिन्दु नचाती तरल प्राण ।
धो स्वर्ण प्रात मे तिमिर गात दुहराते अलि निशि मूक तान ।।"

जीवन की विषम परिस्थितियो का छायाभास देते हुए महादेवी जी ने प्रकृति के भयकर रूप का भी चित्रण किया है। मानव मन की भाँति परिस्थितियो की प्रतिकूलता, असहायता आदि का अकन देवी जी ने किया है—

"तरगें उठीं पर्वताकार,
भयकर करतीं हाहाकार ।
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
तरी का करते हैं उपहास,
हाथ से छूट गई पतवार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?"

प्रकृति के मनोरम रूप का अकन करते करते उनका मन एक अदृश्य अलौकिक शक्ति की ओर आकर्षित हो जाता है । उस अनात अपरिचित के प्रति जिज्ञासा भाव तथा प्रकृति की विभुता मे उसका योग भी उन्हें दृष्टिगोचर होता है—

"कनक से दिन मोती सी रात, सुनहली साँझ गुलाबी प्रात ।
मिटाता रगता बारबार, कौन जग का यह चित्राधार ?"

उस ज्योतिमय से सम्बन्ध स्थापित करते करते महादेवी जी की कविता में प्राकृतिक चित्रण के मध्य भी बहुमूल्य रत्न विशेषण या उपमान रूप में बहुलता से आये हैं। कनक और मोती के उपमान ऊपर आ ही चुके हैं। हीरक का भी अभाव नहीं—"वनदेवी के हृदय हार मे, हीरक भरते हरसिंगार के।"

प्रकृति चित्रण मे भी रहस्यमयता का समावेश देवी जी ने किया है। प्रकृति आराधिका एव आराध्य की मिलन भूमि, उनके सयोग की साक्षिणी जो रही है—

"कैसे कहती हो सपना है अलि उस मूक मिलन की बात ।
भरे हुए अब तक फूलों में मेरे आँसू उनके हास ।।"

साक्षिणी ही नही, वह तो 'यामा' में उनकी सौंदर्य वृद्धि म सहायिका होकर उनके शृगार का साधन बनी थी। देवी जी ने सखी से प्रकृति की सामग्रियो को ही शृगार के साधन रूप मे लेने को कहा है—

"रजित कर दे यह शिथिल चरण
ले नव अशोक का अरुण राग ।
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनीगधा का पराग ।
यथी की मीलित कलियों से अलि दे मेरी कबरी सँवार ।

पाटल के सुरभित रंगों से, रँग दे हिम-सा उज्वल दुकूल ।
गूँथ दे रशना में अलि गुंजन से पूरित झरते बकुल फूल ।।
रजनी से अंजन माँग सजनि दे मेरे अलसित नयन सार ।।'

प्रकृति से वे तादात्म्य भी स्थापित करती हैं । प्रकृति एवं साधिका दोनों जैसे एक हो जाते हैं । वह सहचरी मात्र नहीं आराधिका की अभिन्न अंग बन जाती है—

"ओढ़े मेरी छाँह रात देती उजियाला
रज कण मृदु पद चूम हुए मुकुलों की माला ।
मेरा चिर इतिहास चमकते तारे ही हैं ।।'

विराट ब्रह्म का ही एक रूप होने के कारण उस असीम सत्ता की शक्ति प्रकृति के अवयव उनके अंग बन जाते हैं । वह उनके संकेत पर कार्य करती है—

"मेरी निश्वासों में बहती रहती झंझावात,
आँसू में दिन रात प्रलय के घन करते उत्पात ।
कसक में विद्युत अन्तर्धान ।।"

मैं नीर भरी दुख की बदली' विरह का जलजात जीवन', 'मैं बनी मधुमास आली' आदि कविताओं में प्रकृति से महादेवी की पूर्ण अभिन्नता है । एक स्थान पर तो उन्होंने उस अलौकिक सत्ता को प्रकृति के माध्यम से मानवीकरण करते हुए उसे देवांगना का रूप दिया है । सागर-गर्जन में उसका मंजीर, झंझा में अलकावली तथा मेघों में किंकिणि स्वर मुखरित हो उठे हैं—

'अपारि तेरा नर्तन सुंदर ।
रवि शशि तेरे अवतंस लोल,
सीमन्त जटित तारक अमोल,
चपला विभ्रम, स्मिति इन्द्रधनुष,
हिम कण बन झरते स्वेद निकर ।
अपारि तेरा नर्तन सुंदर ।।"

'यामा' में एक स्थान पर उन्होंने बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का आश्रय लेते हुए प्रकृति चित्रण किया है । वे संध्या के वैराग्यमय विषाद-युक्त तथा अश्रु एवं हास से परिपूर्ण सी दृष्टि वाले रूप से अपनी समता करती हैं—

"प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुँधला विराग
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया-सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन ।

महादेवी जी के प्रकृति चित्रण पर विचार करते हुए इतना निःसकोच रूप से कहा जा सकता है कि क्षमता होते हुए भी उन्होंने प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण में अपेक्षा कृत कम रुचि ली है। प्रकृति असीम सत्ता की छवि होने के कारण उनकी अवयव तथा उस विराट तत्व तक पहुँचने म साधना माग की सहायिका रूप म ही अकित हुई है।

१३ प्रतीकात्मकता—रहस्यवादिनी होने के कारण महादेवी जी की कविताओं में प्रतीकों की भी बहुलता मिलती है। प्रतीको म भी दीपक का प्रयोग महादेवी जी ने अधिक कि ा है। 'दीपशिखा' के तो अधिकाश गीत दीप की साधना-गति की विवृति करते हैं। भारतीय साहित्य म दीपक ज्ञान ज्योति का प्रतीक रहा है। वह स्नेह रूप मे क्षण-क्षण अपने को जलाता हुआ साधना मार्ग को प्रज्ज्वलित करता है। महादेवी जी ने कहीं तो इसका प्रयोग शरीर के लिये किया है यथा—

(अ) "किन उपकरणों का दीपक, किसका जलता है तेल,
किसकी वर्ति, कौन कराता इसका ज्वाला से मेल ?"

(आ) "मोम-सा तन घुल चुका अब, दीप-सा मन जल चुका है।"

कबीर ने इसे थोडा और स्पष्ट करते हुए लिखा था—

"यहि तन का दिवला करूँ, बाती मेलौं जीव।
लोहू जारौं तेल ज्यों, तब मुख देखौं पीव।।"

कहीं पर यह दीप करुणा से परिपूर्ण जीवन अथवा एकान्त साधना का प्रतीक बनकर शीशमहल मे जलने दीपक की भाँति सवत्र आलोक-दान करता है—

"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।।"

यह दीप मन का भी प्रतिनिधित्व करने वाला है—'अविराम जला करता है मेरा दीपक-सा मन।' अथवा 'स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे।'

दीपक का जलना आराधना या विश्व हेतु कष्ट सहने का, तेल अनुराग का, अधेरा निराशा तथा विषाद का प्रतीक है। शलभ आत्मा का सूचक है। शलभ और दीपक की भाँति, प्रेम के क्षेत्र म, शमा और परवाने की मान्यता है। उर्दू कवयित्री शोख ने लिखा है,

"शमा की तरह कौन ऐ जाने।
जिसके दिल की लगी हो सो जाने।।"

महादेवी ने दीपक को ईश्वर के प्रतीक रूप में भी लिया है। शलभ यहाँ

आत्मा के प्रतीक रूप मे प्रयुक्त है—

"प्यास यह पानी हुई इस पुलक के उन्मेष मे,
शलभ जल कर दीप बन जाता निशा के शेष मे।"

देवी जी का दूसरा प्रिय प्रतीक 'बदली' है। बदली जीवन की क्षणभगुरता का सकेत करती हुई सेवा भावना तथा विषाद की प्रतीक रही है। अधोलिखित उदाहरण मे 'बदली' विषाद के स्पष्ट प्रतीक के रूप म है—

मैं नीर भरी दुख की बदली।
स्पन्दन मे चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन मे आहत विश्व हँसा,
नयनों मे दीपक से जलते पलकों मे निर्झरिणी मचली।'

इसमे कवयित्री के पीडा, व्याकुलता एव निराशा से पूर्ण जीवन को व्यक्त किया गया है। कही कही वशी अथवा वीणा का प्रतीक भी ग्रहण किया गया है। इन स्थलो पर वीणा जीव अथवा हृदय एव तार भावनाओ का प्रतीक है। यथा—'बीन भी हूँ, मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।"

वीणा समस्त ब्रह्माण्ड के प्रतीक रूप म भी आई है—

"तडित निशीथ मे ले आये
गायक तुम अपनी अमर बीन।
प्राणों मे भरने स्वर नवीन।"

रवि ठाकुर ने भी वशी के रूपक का प्रयोग अपनी कविताओ मे किया है। सभव है, इन दोनो को जलालुद्दीन रूमी की निम्न पक्तियो से प्रेरणा मिली हो। उसने भी उपयु क्त प्रतीको को ग्रहण किया था—

'I rest a flute laid on thy lips,
A lute, I on thy breast recline
Breath deep in me that I may sigh,
Yet strike my strings and tears shall shine"

अन्य प्रतीको म विशेष प्रयोग फूल (सुख), कली (सुन्दरी), पवन (प्रेमी), भ्रमर (मुक्त विलासी) सागर (ससार-चक्र) बुदबुद (क्षण), तरल मोती (आँसू), गोधूलि (मिलन पर्व) बिजली (तडप) लहर (भावावेग) आदि के हुए हैं।

१४ शैली—महादेवी जी ने न तो विषय और न शैली की दृष्टि से अपनी कविता म प्रयोग या परिवर्तन किये। वे गीतो की दीपाली से ही प्रिय की आरती उतारती हुई अर्चना मे लीन रही। आपकी कविता म छदो की अनेकता का अभाव है।

आपका प्रिय छंद रोला से दो मात्रायें निकाल कर बनाया गया है। आपने कहीं-कहीं माधवमालती तथा मालिनी छंदों का भी प्रयोग किया है। एक अन्य स्थान पर सप्तक के आधार पर निर्मित छंदक के साथ, उसी छंद के सपद चरण का सयोग किया है—"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में सप्तकाधार छंदक का प्रयोग सप्तकाधार सपद चरणों के साथ हुआ है—

'मैं बनी मधुमास आली।
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी।
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी
उमड आई री दृगों मे
सजनि कालिन्दी निराली।

११ मात्राओं के छंदक भी हैं, यथा 'ओ पागल संसार।

१५ भाषा—महादेवी जी की भाषा में संगीतात्मकता ध्वन्यात्मकता चित्रात्मकता, वर्णमैत्री, पदमैत्री आदि गुणों का योग है। ध्वन्यात्मक व्यंजना का एक उदाहरण प्रस्तुत है,

"आलोक तिमिर सित असित चीर
सागर गर्जन रुनझुन मंजीर,
उडता झंझा मे अलक जाल
मेघों मे मुखरित किंकिणि स्वर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।

इसी प्रकार चित्र सा अंकित कर देने की अपूर्व शक्ति सध्या के इस वर्णन में है—

"गुलालों से रवि का पथ लीप, जला सध्या में पहला दीप,
विहँसती सध्या भरी सुहाग, दृगों से झरते स्वर्ण पराग।

संस्कृत के सामासिक शब्दों की बहुलता होते हुए भी उसमे बतास, लीप, अनखाना, मरम, बिछलना जैसे मधुर लोकज शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। अरबी फारसी के दाग और बदीखाना भी आ गये हैं। ब्रजभाषा के बैन नैन बयार, हौल आदि शब्दों से मधुरता की वृद्धि हुई है। सामान्यत देवी जी की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित, मधुर पर कहीं कहीं प्रसादगुणरहित हो गई है।

यत्र-तत्र कुछ दोष भी उपलब्ध हैं। उन्होने शेफाली और हरसिंगार को भिन्न माना है। दृग के लिये बाल विशेषण का प्रयोग भी 'बडरी अँखियान' वाले ढंग में जमता नहीं। शब्दगत दोष भी हैं यथा ज्योतिष्मा, नक्षज्योती वर्णाधार अधार, बतास, अँधाकार, अभिलाषें आदि। एक सज्जन ने अभिलाषा का संस्कृत रूप अभिलाष

आत्मा के प्रतीक रूप म प्रयुक्त है—

'प्यास यह पानी हुई इस पुलक के उन्मेष म,
शलभ जल कर दीप बन जाता निशा के शेष मे।"

देवी जी का दूसरा प्रिय प्रतीक 'बदली' है। बदली जीवन की क्षणभगुरता का सकेत करती हुई सेवा भावना तथा विषाद की प्रतीक रही है। अधोलिखित उदाहरण म 'बदली' विषाद के स्पष्ट प्रतीक के रूप म है—

'मैं नीर भरी दुख की बदली।
स्पन्दन म चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन मे आहत विश्व हँसा,
नयनो मे दीपक से जलते पलको मे निर्झरिणी मचली।'

इसमे कवयित्री के पीडा, व्याकुलता एव निराशा से पूर्ण जीवन को व्यक्त किया गया है। कही कही नदी अथवा वीणा का प्रतीक भी ग्रहण किया गया है। इन स्थलो पर वीणा जीव अथवा हृदय एव तार भावनाओ का प्रतीक है। यथा—'बीन भी हूँ, मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।"

वीणा समस्त ब्रह्माण्ड के प्रतीक रूप मे भी आई है—

"तडित निशीथ मे ले आये
गायक तुम अपनी अमर बीन।
प्राणों मे भरने स्वर नवीन।"

रवि ठाकुर ने भी वंशी के रूपक का प्रयोग अपनी कविताओ मे किया है। सभव है इन दोनो को जलालुद्दीन रूमी की निम्न पक्तियो से प्रेरणा मिली हो। उसने भी उपयुक्त प्रतीको को ग्रहण किया था—

'I rest a flute laid on thy lips,
A lute, I on thy breast recline
Breath deep in me that I may sigh,
Yet strike my strings and tears shall shine"

अन्य प्रतीको मे विशेष प्रयोग फूल (सुख), कली (सुन्दरी), पवन (प्रेमी), भ्रमर (मुक्त विलासी) सागर (ससार-चक्र) बुदबुद (क्षण), तरल मोती (आँसू), गोधूलि (मिलन-पर्व) बिजली (तडप) लहर (भावावेग) आदि के हुए हैं।

१४ शैली—महादेवी जी ने न तो विषय और न शैली की दृष्टि से अपनी कविता म प्रयोग या परिवर्तन किये। वे गीतो की दीपावली से ही प्रिय की आरती उतारती हुई अर्चना में लीन रही। आपकी कविता म छन्दो की अनेकता का अभाव है।

आपका प्रिय छन्द रोला से दो मात्रायें निकाल कर बनाया गया है। आपने कहीं-कहीं माधवमालती तथा मालिनी छदो का भी प्रयोग किया है। एक अन्य स्थान पर सप्तक के आधार पर निर्मित छदक के साथ, उसी छद के सपद चरण का सयोग किया है— "बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।"

इसी प्रकार निम्न पक्तियो मे सप्तकाधार छदक का प्रयोग सप्तकाधार सम्पद चरणो के साथ हुआ है—

"मैं बनी मधुमास आली।
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी।
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी
उमड आई रे दृगो मे
सजनि कालिन्दी निराली।

११ मात्राओ के छदक भी हैं, यथा, 'ओ पागल ससार।'

१५ भाषा—महादवी जी की भाषा में सगीतात्मकता, ध्वन्यात्मकता चित्रात्मकता, वर्णमत्री, पदमत्री आदि गुणों का योग है। ध्वन्यात्मक व्यजना का एक उदाहरण प्रस्तुत है,

"आलोक तिमिर सित असित चीर
सागर गजन रुनझुन मजीर
उडता झझा मे अलक जाल
मेघो मे मुखरित किंकिणि स्वर
अप्सरि तेरा नतन सुन्दर।

इसी प्रकार चित्र सा अकित कर देने की अपूर्व शक्ति सध्या के इस वर्णन म है—

'गुलाला से रवि का पथ लीप, जला सध्या मे पहला दीप,
विहँसती सध्या भरी गुलाल, दृगों से झरते स्वर्ण पराग।

सस्कृत के सामासिक शब्दो की बहुलता होते हुए भी उसमे बतास लीप, अन खाना, मरम, बिछलना जसे मधुर लोकज शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। अरबी फारसी के दाग और बदीखाना भी आ गये हैं। व्रजभाषा के बन नन, बयार, हौल आदि शब्दो स मधुरता की वद्धि हुइ है। सामान्यत देवी जी की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित मधुर पर कहीं कहीं प्रसादगुणरहित हो गई है।

यत्र-तत्र कुछ दोष भी उपलब्ध हैं। उन्होने शेफाली और हरसिंगार को भिन्न माना है। दग के लिये वाल' विशेषण का प्रयोग भी 'बडरी अँखियान वाले देश मे जमता नहीं। शब्दगत दोष भी हैं यथा ज्योतिष्मा, नभज्योती, कर्णाधार अधार, बतास, अधाकार, अभिलायें आदि। एक सज्जन ने अभिलाषा का सस्कृत रूप अभिलाष

आत्मा के प्रतीक रूप मे प्रयुक्त है—

'प्यास यह पानी हुई इस पुलक के उन्मेष मे,
शलभ जल कर दीप बन जाना निशा के शेष मे।"

देवी जी का दूसरा प्रिय प्रतीक 'बदली' है। बदली जीवन की क्षणभगुरता का सकेत करती हुई सेवा भावना तथा विषाद की प्रतीक रही है। अधोलिखित उदाहरण में 'बदली' विषाद के स्पष्ट प्रतीक के रूप मे है—

'मैं नीर भरी दुख की बदली।
स्पन्दन मे चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन म आहत विश्व हँसा,
नयनों मे दीपक से जलते पलको मे निर्झरिणी मचली।'

इसम कवयित्री के पीडा, व्याकुलता एव निराशा से पूर्ण जीवन को व्यक्त किया गया है। कही कही नभी अथवा वीणा का प्रतीक भी ग्रहण किया गया है। इन स्थलो पर वीणा जीव अथवा हृदय एव तार भावनाओ का प्रतीक है। यथा—'बीन भी हू, मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।"

वीणा समस्त ब्रह्माण्ड के प्रतीक रूप मे भी आई है—

"तद्रिल निशीथ मे ले आये
गायक तुम अपनी अमर बीन।
प्राणो मे भरने स्वर नवीन।"

रवि ठाकुर ने भी वशी के रूपक का प्रयोग अपनी कविताओ मे किया है। सभव है, इन दोनो को जलालुद्दीन रूमी की निम्न पक्तियो से प्रेरणा मिली हो। उसने भी उपयु क्त प्रतीको को ग्रहण किया था—

'I rest a flute laid on thy lips,
A lute, I on thy breast recline
Breath deep in me that I may sigh,
Yet strike my strings and tears shall shine"

अन्य प्रतीको मे विशेष प्रयोग फूल (सुख), कली (सुन्दरी), पवन (प्रेमी), भ्रमर (मुक्त विलासी), सागर (ससार-चक्र), बुदबुद (क्षण), तरल मोती (आँसू), गोधूलि (मिलन पर्व) बिजली (तडप) लहर (भावावेग) आदि के हुए हैं।

१४ शैली—महादेवी जी ने न तो विषय और न शैली की दृष्टि से अपनी कविता म प्रयोग या परिवर्तन किये। वे गीतो की दीपावली से ही प्रिय की आरती उतारती हुई अर्चना में लीन रही। आपकी कविता म छदो की अनेकता का अभाव है।

आपका प्रिय छंद रोला से दो मात्रायें निकाल कर बनाया गया है। आपने कहीं-कहीं माधवमालती तथा मालिनी छंदों का भी प्रयोग किया है। एक अन्य स्थान पर सप्तक के आधार पर निर्मित छंदक के साथ, उसी छंद के सपद चरण का संयोग किया है— "बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ"।

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में सप्तकाधार छंदक का प्रयोग सप्तकाधार सपद चरणों के साथ हुआ है—

'मैं बनी मधुमास आली ।
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी ।
बरस सुधि के इंदु से छिटकी पुलक की चाँदनी
उमड़ आई रे दृगों में
सजनि कालिंदी निराली ।

११ मात्राओं के छंदक भी हैं, यथा, ओ पागल संसार।

१५ भाषा—महादेवी जी की भाषा में संगीतात्मकता, ध्वन्यात्मकता चित्रात्मकता, वर्णमैत्री, पदमैत्री आदि गुणों का योग है। ध्वन्यात्मक व्यंजना का एक उदाहरण प्रस्तुत है,

"आलोक तिमिर सित असित चीर
सागर गर्जन रुनझुन मंजीर
उड़ता झंझा में अलक जाल
मेघों में मुखरित किंकिणि स्वर
अप्सरि तेरा नर्तन सुंदर ।

इसी प्रकार चित्र सा अंकित कर देने की अपूर्व शक्ति संध्या के इस वर्णन में है—
"गुलालों से रवि का पथ लीप, जला संध्या में पहला दीप,
विहँसती संध्या भरी सुहाग दृगों से झरते स्वर्ण पराग।'

संस्कृत के सामासिक शब्दों की बहुलता होते हुए भी उसमें वेदाग, लाप, बन खाना, मरम, बिछलना जैसे मधुर लोकज शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। अरबी-फारसी के दाग और बदीखाना भी आ गये हैं। ब्रजभाषा के बन, नन, बयार, हौर आदि शब्दों से मधुरता की वृद्धि हुई है। सामान्यतः देवी जी की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित, मधुर पर कहीं कहीं प्रसादगुणरहित हो गई है।

यत्र तत्र कुछ दोष भी उपलब्ध हैं। उन्होंने शेफाली और हरसिंगार को भिन्न माना है। दग के लिये बाल विशेषण का प्रयोग भी 'वहरो वैष्णवान' वाले ढंग में जमता नहीं। शब्दगत दोष भी हैं यथा ज्योतिष्मा, मधुरिमा, आगार, अधार, बतास, अधाकार, अभिलाषें आदि। एक सज्जन ने अभिलाषा का स्पष्ट रूप अभिलाष

बताकर, बहुवचन के रूप में 'अभिलायें' को शुद्ध घोषित किया है ! किन्तु सम्भवत उन्हें यह ध्यान नहीं रहा कि हिन्दी म अभिलाष नहीं, अभिलाषा का ही प्रचलन है और अभिलाषा का बहुवचन 'अभिलाषायें' ही उपयुक्त होगा ।

'आज न सज अलको से हीरे जसे नवीन क्रिया प्रयोग भी हैं। 'मधु या मधुर', 'तुहिन' तथा 'मय' (जलमय, मधुमय, तममय) शब्दों का प्रयोग आपने अधिकता से किया है । द्विरुक्ति की प्रवृत्ति ने अथ सौन्दय में वृद्धि की है । 'मधुर मधुर, 'पुलक पुलक' 'सिहर सिहर, 'जल जल 'भर भर, 'मचल मचल' जसे ही प्रयोग हैं। 'कन कन' का अति प्रयोग देवी जी को प्रिय है ।

१६ अलकार—महादेवी जी को कुछ अलकार विशेष प्रिय रहे हैं--

१—सांग रूपक—

(अ) 'अप्सरि तेरा नतन सुदर ।

(ब) ''प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती ।

(स) 'धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसत रजनी ।

(द) 'इन हीरक के तारों को कर चूर बनाया प्याला ।
पीडा का सार मिलाकर, प्राणों का आसव ढाला ॥"

२—समासोक्ति—

(अ) निशा को धो देता राकेश,
चाँदनी म जब अलकें खोल ।

३—अन्योक्ति—

(अ) 'शलभ मैं शापमय वर हूँ ।'

(ब) 'कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो ।'

४—विशेषण-विपयय—

(अ) 'किरनो के प्यासे चुम्बन मे ।

(ब) 'आँखो की नीरव भिक्षा मे ।

५ – उपमा—

(अ) 'पीडा मेरे मानस से भीगे पट सी लिपटी है ।'

(ब) 'मोम सा तन घुल चुका अब दीप-सा मन जल चुका है ।'

(स) 'चकित से विस्मित से दृग बाल,
अकारण यह शशव सा हास ।

६—प्रतीप—

(अ) 'नसचन्द्रों की ज्योति लजाती थी नक्षत्रों के आलोक ।'

(व) 'जिन अधरों की मन्द हँसी थी, नव अरुणोदय का उपमान ।'

आपकी अप्रस्तुत योजना म छायावाद की सभी विशेषतायें—अमूर्त्त की अमूर्त्त से, मूर्त्त की मूर्त्त से मूर्त्त की अमूर्त्त से, अमूर्त्त की मूर्त्त से तुलना है।

वस्तुत महादेवी की कविता असहाय नारी के अभिशप्त जीवन का एकान्त रुदन है। उन्हें अज्ञात पुरुष की उपासिका कह कर मीरां से तुलना करना मीरां और भक्ति दोनों का अपमान है। आधुनिक रहस्यवादियों के सम्बन्ध मे गेटे का कथन उपयुक्त ही है, "आधुनिक कवि अपने मसि-पात्र मे जल का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग करते हैं।"



रमेशचन्द्र गुप्त

१६

महादेवी का भाषा सौन्दर्य

शब्द और अर्थ के सामंजस्य का नाम ही साहित्य है अतः किसी कृति का मूल्यांकन करते समय उसके भाव सौंदर्य का अवलोकन करने के साथ साथ भाषागत सजीवता पर विचार करना भी आवश्यक है। भाषा की प्रेषणीयता और स्थायित्व के अतिरिक्त अस्पष्ट सपनों को निश्चित आकार प्रदान करने में सहायक होने के कारण भाषा का महत्त्व और भी अधिक है। यह भी ज्ञातव्य है कि साहित्य अथवा काव्य की भाषा का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता। युग विशेष के अनुरूप काव्य प्रवृत्तियों में परिवर्तन के साथ साथ भाषा में भी नवीन विशेषताओं की उद्भावना होती रहती है। पूर्ववर्ती काव्य की तुलना में छायावादी काव्य भाषा की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—सांकेतिकता (लाक्षणिकता प्रतीकात्मकता, वक्रोक्तिगत सौंदर्य) तथा माधुर्य। महादेवी के काव्य के भाषा सौंदर्य पर विचार करते समय हमने इन दोनों विशेषताओं की ओर संकेत करने के साथ साथ उनके काव्य में प्रयुक्त विविध शब्द रूपों (तत्सम, तद्भव, देशज एवं स्थानीय, विदेशी अनुकरणमूलक) शब्द मोह तथा पुनरुक्त शब्दावली का विवेचन तथा कतिपय काव्य दोषों की चर्चा की है।

अभिव्यक्ति की सांकेतिकता

स्तर की दृष्टि से भाषा के सामान्यतः दो रूप हो सकते हैं—व्यावहारिक अथवा बोलचाल की भाषा एवं साहित्यिक भाषा। व्यावहारिक भाषा की शब्दावली प्रायः अभिधार्थ का बोध कराती है, किन्तु साहित्यिक भाषा में सूक्ष्म शब्द-चयन तथा सांकेतिकता की प्रधानता होती है। आलोच्य कवयित्री ने इस अन्तर की ओर संकेत करते हुए प्रतिपादित किया है कि "किसी हाट में क्रय विक्रय के कार्य के लिए आवश्यक शब्दों की संख्या अधिक नहीं होती, परन्तु जब हम अपने भाव-जगत् विचार-मंथन, सौन्दर्य-बोध आदि को आकार देने बैठते हैं तब हमें ऐसी शब्दावली की आवश्यकता पड़ती है जो भाव के हर हल्के गहरे रंग को व्यक्त कर सके।"[1]

वस्तुतः आनन्दोद्रेक की स्थिति में सामान्य शब्दावली कवि की सूक्ष्म अनुभूतियों को प्रमाता तक संप्रेषित करने में प्रायः सक्षम नहीं होती। अतः जब कवि-कर्म सूक्ष्म

---

१ क्षणदा पृष्ठ १०२

की ओर उन्मुख होता है तब वह साधन के रूप मे सवरण की प्रवृत्ति अथवा साकेतिक शली ग्रहण करता है जिससे शब्द अभिधय रूप म प्रस्तुत न होकर अन्य रमणीय अर्थों की कल्पना म मुखर हो उठते हैं। साकेतिकता के विधान के लिए प्राय लक्षणा-व्यजना प्रतीक वक्रोक्ति आदि की सहायता ली जाती है। महादेवी ने भी इन साधना द्वारा अपने भावो को पर्याप्त साकेतिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। वास्तविकता तो यह है कि समृद्ध साकेतिकता के कारण उनका काव्य अन्य कवियो की तुलना म दुरूह भी हो गया है। यहा यह भी ज्ञातव्य है कि सकेतमयी अभिव्यजना द्वारा भाषा को सशक्त बनाने का यह अभिप्राय नही है कि कवि अभिधा का एकान्त तिरस्कार करे। अभिधेयाथ की प्रतीति के उपरान्त ही लक्षणा एव व्यजना शक्तियाँ अपना काय करती हैं। अत इनकी आधार भित्ति होने के कारण अभिधा की सत्ता नितान्त अनिवाय है। महादेवी के काव्य मे भी अभिधा पर आश्रित पक्तियाँ कहा कही मिल जाती हैं—

गए तब से कितने युग बीत,
हुए कितने दीपक निर्वाण।
नहीं पर मैंने पाया सीख,
तुम्हारा-सा मनमोहन गान।"[1]

किन्तु अधिकाश रूप म आलोच्य कवयित्री का अभिव्यक्ति साकेतिक रही है अत उसी का विश्लेषण करना अपेक्षित होगा।

१ लाक्षणिक-सौन्दर्य

छायावादी काव्य भाषा की सवप्रमुख विशेषता थी लाक्षणिक भगिमाओ द्वारा सौन्दय का प्रतिपादन। यह कहना उपयुक्त होगा कि छायावादी काव्य 'लक्षणा और 'ध्वनि का काय है। यहाँ 'वाच्याथ अधिकाश मे अनभिप्रेत है। 'लक्षणा के सहारे मूर्तिमत्ता आयी है और विच्छित्ति की तडप भी।[2] महादेवी के गीतो से लक्षणा पर आश्रित प्रयोगों के राशि राशि उदाहरण अनायास ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं। अधिक विस्तार म न जाकर हम कवल दो प्रसग लेंगे। 'कौन वह है सम्मोहन राग, खींच लाया तुमको सुकुमार ?[3]—इन पक्तियो म राग द्वारा किसी का खींचे जाने की बात कही गयी है जिसम मुख्याथ बाधित है। खींचना किसी प्राणवान् व्यक्ति का धम है राग तो निर्जीव है। किन्तु कवयित्री का अभिप्राय है कि जिस प्रकार किसी को अपनी ओर खींचने स वह वस्तु या व्यक्ति निकट आ जाता है उसी प्रकार राग के माधुय के वशीभूत होकर व्यक्ति विशेष उसस दूर नहीं हो पा रहा। इसी

---

१ यामा पृष्ठ १
२ छायावाद की काव्य साधना (प्रा० क्षेम) आमुख पृष्ठ ११
३ यामा, पृष्ठ ६१

प्रकार 'घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय"[1] म व्यक्ति विशेष बादल कैसे बन सकता है? अत यहाँ भी मुख्याथ अभिप्रेत नहीं है, वरन् लक्षणा द्वारा अन्य रमणीय अथ की प्रतीति कराई गई है। जिस प्रकार बादल वर्षा की बूँदों के रूप म पृथ्वी को शीतलता प्रदान करता है, उसी प्रकार कवयित्री अपने मानस म करुणा के बादलों की अपेक्षा करती है जिससे वह दीन दुखियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण द्रवित हो सके।

मुहावरो के माध्यम से भी भाषा म लाक्षणिकता का विधान किया जाता है। इनका वास्तविक अथ साकेतिक अथ से भिन्न होने के कारण ये अभिधा की अपेक्षा लक्षणा के आश्रित रहते हैं। मुहावरो के प्रयोग द्वारा अपनी काव्य भाषा को सजीव, व्यावहारिक एव प्रभाव-सक्षम बनाने की दिशा में महादेवी उदासीन नहीं रहीं, यद्यपि इसमे सन्देह नही कि उनके काव्य में इनको अधिक स्वीकृति नहीं है। यह भी ज्ञातव्य है कि उन्होंने कवि 'प्रसाद' के समान अनेक मुहावरों को प्रचलित रूप म ग्रहण न करके उनमे शब्द-परिवतन कर दिया है। पथ देखना (राह देखना),[2] आँखों में रात बिताना (आँखो मे रात काटना),[3] मानस भर आना (दिल भर आना),[4] आदि ऐसे ही मुहावरे हैं।

२ प्रतीकात्मक सौन्दय

सांकेतिकता के लिए महादेवी ने प्रतीको का भी उन्मुक्त प्रयोग किया है। प्रतीको के माध्यम से कवि प्रमाता के सम्मुख एक बिम्ब सा खड़ा कर देता है, जिससे अभिव्यक्ति अधिक सवेद्य हो जाती है। इसी कारण महादेवी ने आत्मा परमात्मा विषयक रहस्यवादी भावो की प्रस्तुति के लिए प्राय दीपक झझा वात वीणा, तरी पतवार, नीरदमाला रश्मि, तरल मोती जसे अनेक प्रतीको को ग्रहण किया है जो क्रमश साधक, विघ्न बाधा हृदय, मानव जीवन, साहस, अश्रु प्रवाह ज्ञान की ज्योति तथा आँसुओ के लिए प्रयुक्त हुए हैं। कवयित्री के गीतो का आलम्बन सूक्ष्म एव निराकार है, अत इस रहस्यमय अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए इन साकेतिक प्रतीकों की सहायता लेना उचित ही था। लौकिक क्षेत्र से चुने गए प्रतीकात्मक शब्दो के द्वारा प्रमाता सहज ही कवि की अनुभूति के मूल का स्पश कर लेता है। चुभते ही तेरा अरुण बाण"[5] अथवा बिंध गया अजान आज किसका मृदु-कठिन तीर'[6] जसी अभिव्यजनाओ मे ईश्वर से विरह की वेदना को 'बाण' के प्रतीकत्व द्वारा व्यक्त करने से प्रभाव वृद्धि के साथ साथ सप्रेषणीयता मे भी सहायता मिली है।

---

१ यामा, पृष्ठ १५३
२ ३ ४ यामा पृष्ठ ४ ६ ८४
५ यामा पृष्ठ ६१
६ दीपशिखा, पृष्ठ १०६

सामान्यत महादेवी के सभी गीतो में प्रतीको की स्थिति रही है, किन्तु आधिक्य की दृष्टि से 'दीपशिखा' के गीत उल्लेख्य हैं। इसमे अनेक अन्य प्रतीको की सह स्थिति मे जीवन हृदय अथवा आत्मा के लिए दो प्रतीको—दीपक तथा वीणा—का प्रयोग बारम्बार किया गया है। 'आज तार मिला चुकी हूँ'[1] 'मदिर हर तार है मेरा',[2] 'गूजती क्यो प्राण वशी'[3] 'दीप मेरे जल अकपित', 'जब यह दीप थके तब आना'[5] 'यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो,'[6] जसी पक्तियाँ इसी तथ्य की परिचायक हैं।

प्रस्तुत प्रसग में यह ज्ञातव्य है कि प्रतीको के प्रयोग से महादेवी को सूक्ष्म भावो की प्रस्तुति मे सहायता अवश्य मिली है, किन्तु प्रतीक बहुलता के कारण उनकी भाषा अनावश्यक रूप से गम्भीर एव दुरूह भी हो गई है। यही कारण है कि छायावाद के चारों प्रमुख कवियो (प्रसाद पन्त, निराला, महादेवी) म उनकी भाषा सर्वाधिक जटिल है।

३ वक्रोक्तिगत सौन्दय

प्रतीक की भाँति वक्रोक्ति भी साकेतिकता का एक महत्त्वपूर्ण विधायक तत्त्व है। इसके अन्तगत वर्णों के विशिष्ट विन्यास, विशेषणों के आयोजन सवृति, लिंग-परिवतन, प्रत्यय के विशिष्ट प्रयोग आदि के माध्यम से कथन में चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। महादेवी वर्मा ने वक्रोक्ति के विभिन्न भेदो मे से वर्णविन्यास, विशेषण, निपात आदि से सम्बद्ध वक्रताओ का विशेष प्रयोग किया है। एक, दो अथवा अनेक वर्णों की आवृत्ति द्वारा वर्णविन्यास वक्रता का सौन्दय तो उनके प्राय सभी गीतों म लक्षित किया जा सकता है। यथा—

(अ) "झुक झुक झूम झूम कर लहरें, भरतीं बूँदों के मोती।।"[7]
(आ) 'तुम हो सुधाधारा सदा, सूखे हुए मनुराग को।'[8]
(इ) 'उस पर गीले गान बिछाता, नित गाता-गाता ही जाता।'[9]
(ई) 'इस क्षण के हित मत्त समीरण, करता शत-शत फेरे!'[10]

महादेवी ने अनेक स्थानो पर भावपूर्ण विशेषणों के प्रयोग से विशेष्य म अपूर्व चमत्कार की सृष्टि की है। कल्पना के आवेग मे भावों को अधिक संवेदनशील मूर्त्त और सहज ग्राह्य बनाने के लिए उन्होंने निठुरकाल, मतवाली वीणा, प्यासी आँखें, मूक वेदना, सहज शफाली शीतल चुम्बन, अलसित रजनी, तन्द्रिल पल, मृदुल दपण, कोमल

---

१ २-३ ४ ५ ६ दीपशिखा पृष्ठ ८५ ६२, ११० ७३ ६४ ६५
७-८ ९ १० यामा पृष्ठ १४, ५५, १२३ २०१

व्यथा सजल निमेष, सुनहले आँसू जैसे विशेषणों का उन्मुक्त प्रयोग किया है।[1] यहाँ यह द्रष्टव्य है कि कवयित्री होने के कारण महादेवी के अधिकांश विशेषण नारी-सुलभ हैं, उनमें पौरुष नहीं है।

'हाय,' 'हा', 'री' अरे आदि अवयवरहित अव्ययों के प्रयोग द्वारा निपात वक्रता के माध्यम से भी महादेवी ने सांकेतिक अर्थ-व्यंजना की है। हा' और हाय' निपातों द्वारा अवसाद के द्योतन का केवल एक एक उदाहरण प्रस्तुत है—

(अ) 'देख कर काला सिन्धु अनन्त,
हो गया हा साहस का अन्त।'[2]

(आ) "मिट गई उससे तड़ित सी
हाय, वारिद की निशानी!'[3]

भाषा-समृद्धि अथवा शब्द-संग्रह

वर्तमान कविता की शब्द-योजना संस्कृत की तत्सम शब्दावली तथा उनके तद्भव रूपों से अनुप्राणित रही है। महादेवी ने भी भावाभिव्यक्ति के लिए अधिकतर इन्हीं की सहायता ली है। तत्सम एवं तद्भव शब्दों के अतिरिक्त उन्होंने देशज, विदेशी तथा अनुकरणमूलक शब्दों का भी प्रयोग किया है जिससे भाव-स्पष्टीकरण एवं स्वाभाविकता की रक्षा हुई है। शब्दों के इस सम्पूर्ण वैविध्य का सौन्दर्य इस प्रकार लक्षित किया जा सकता है—

(अ) तत्सम शब्द—छायावादी काव्यधारा के प्रायः सभी कवि भाषा के साहित्यिक स्तर के संरक्षक थे, अतः उनकी काव्य भाषा अधिकांशतः तत्सम शब्दावली की ऋणी रही है। महादेवी की यह तत्सम शब्दावली दो प्रकार की है—एक तो इस प्रकार के शब्द जिनसे हिन्दी का पाठक परिचित है, तथा दूसरे वे शब्द जो अपेक्षाकृत नवीन एवं दुरूह हैं। उदाहरणार्थ नक्षत्र, उद्गार उन्मीलन अकिंचन तृषित, मन्द्र निस्तरंग जैसे तत्सम शब्द[4] हिन्दी में अपरिचित नहीं हैं किन्तु अशन अखिल, वानीर, यूथी, रशना, स्वन, पिंग जैसे शब्द[5] अपेक्षाकृत कठिन हैं। काव्य की क्लिष्टता के लिए

---

१ देखिए (अ) यामा, पृष्ठ १५, २३ ७५ ९८ १३१ १४१, १८२ २०७ २२३
(आ) दीपशिखा पृष्ठ ८२ १०१ १३३

२ यामा, पृष्ठ २८

३ यामा पृष्ठ १७६

४ देखिए (अ) 'यामा' पृष्ठ १८,२१ ४३ ६५,१२६
(आ) दीपशिखा, पृष्ठ ११६, १३१

५ देखिए (अ) 'यामा' पृष्ठ ५४ १२३, १३१ २११ २११
(आ) दीपशिखा, पृष्ठ ७७, १४६

य निश्चय ही उत्तरदायी रहे हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि महादेवी के गीतो मे प्राय सुपाच्य तत्सम शब्द ही ग्रहण किये गए हैं फिर भी उनके गीतो के अर्थ-बोध मे प्रमाता को जो कठिनाई होती है वह भाव गाम्भीर्य के कारण है। भाषागत दुरूहता की दृष्टि से उनके काव्य पर आक्षेप नही किया जा सकता।

(आ) तदभव शब्द—तद्भव शब्द सस्कृत के तत्सम शब्दो के विकृत रूप हैं जो उच्चारण की सरलता अथवा प्रयत्न-लाघव के कारण प्रचलित हो जाते हैं। हिंदी शब्दावली मे इस प्रकार के शब्दो की सख्या बहुत अधिक है। महादेवी ने भी अति सस्कृतता से बचने और स्वाभाविकता की रक्षा के लिए तद्भव शब्दो को उन्मुक्त रूप म ग्रहण किया है। आँसू (अश्रु), साँस (श्वास), मोल (मूल्य), पात (पत्र), बीन (वीणा), सूना (शून्य), पाँत (पंक्ति), उजाला (उज्ज्वल), धरती (धरित्री), आदि तद्भव शब्द[1] इसी तथ्य के परिचायक हैं। इनके प्रयोग से भाषा लोक-व्यवहार से हट कर अति सस्कृत नहीं बन पाई है। वस्तुत महादेवी ने अनेक गीतों मे लोकगीतो की लय को अपनाया है। उनकी स्वीकारोक्ति भी इसी ओर इगित करती है – 'मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोक गीतों की धरती पर पले हैं।'[2] इसी कारण उनके गीतों की भाषा भी सहज सामान्य रही है।

(इ) देशज एव स्थानीय शब्द—आलोच्य कवयित्री की भाषा मे अनुकरण मूलक शब्दों के अतिरिक्त देशज एव स्थानीय शब्दो को स्वीकृति अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा कुछ अधिक रही है। इसके मूल में महादेवी की लोकगीतो की ओर झुकने की प्रवृत्ति है। अँकवारु, बिरानी, बिछलना रिसना, दहली, भेंटना, झिपना, खूँटी जसे अनेक देशज एव स्थानीय शब्द[3] उनके गीतों में सहज उपलब्ध हैं।

(ई) विदेशी शब्द—भाषा के साहित्यिक स्तर का सयोजन करने वाले छाया वादी कवियो म निराला के अतिरिक्त अन्य कवियो की दृष्टि प्राय विदेशी भाषाओ के शब्दों की ओर नही थी। कहीं-कहीं उन्होंने उर्दू के अतिप्रचलित शब्दो को ही ग्रहण किया है। महादेवी के गीतों मे भी साकी अरमान दाग, बेहोश परदा, बेहाल निशानी, तूफान आदि उर्दू अथवा फारसी के अनेक शब्द मिल जाते हैं।[4]

(उ) अनुकरणमूलक शब्द—अनुकरणमूलक शब्दो का प्रयोग नाद-सौन्दर्य और

---

१ देखिए (अ) 'यामा', पृष्ठ १४, २१, ७१, १२० १८६ १६२ २३१
(आ) दीपशिखा, पृष्ठ ११६, १३२

२ दीपशिखा, पृष्ठ ६०

३ देखिए (अ) 'यामा', पृष्ठ १६३, १७६, १८५, १८७
(आ) दीपशिखा, पृष्ठ ८८ ६० १०६, १२३

४ देखिए 'यामा', पृष्ठ ८, ११ १२, २४, २५, ८६ १४६, १७०

विशेषण की सरसता के लिए किया जाता है। गीतकार के लिए तो इनका प्रयोग अत्यन्त उपादेय है, क्योंकि इनसे गीत के प्रवाह को अनायास ही बल मिलता है। महादेवी के गीतों में भी इनकी स्वीकृति रही है। झिलमिल, झरझर, मर्मर, किंकिणि, रुनझुन आदि शब्द उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं।[1]

शब्द-मोह

महादेवी की काव्य भाषा की एक अन्य विशेषता यह है कि उन्होंने कतिपय शब्दों का अनियन्त्रित प्रयोग किया है। कवि विशेष द्वारा माधुर्य अथवा लय-सौन्दर्य की दृष्टि से कुछ शब्दों के पुनः पुनः प्रयोग को अनुचित नहीं कहा जा सकता किन्तु यदि वे शब्द कवि के 'तकियाकलाम' बन जाएँ तो एकरसता के कारण यह प्रवृत्ति श्रेयस्कर नहीं होगी। छायावादी काव्य में यह शब्द मोह इतना बढ़ गया था कि छायावाद के बाद की कविता में प्रयत्न-पूर्वक उन शब्दों का बहिष्कार किया गया ताकि छायावादी शब्दों से मुक्ति मिले।[2] इन शब्दमोही कवियों में प्रसाद और पन्त का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने अपने प्रिय शब्दों—मधुर, मधु, मृदु, चिर, नव, स्वर्णिम आदि का इतना अधिक प्रयोग किया कि उनका सौन्दर्य, चमत्कार एवं व्यंग्यार्थ प्रायः नष्ट हो गया।[3] महादेवी भी इसकी अपवाद नहीं हैं। उनके गीतों में नव, मधु, मधुर, मृदु, चिर, चल, लघु आदि शब्दों का प्रयोग बारम्बार हुआ है। कुछ प्रयोग देखिए—

(अ) नव[4]—नव घन, नव उत्पल, नव कम्पन, नव अशोक, नव किसलय, नव प्रभात।

(आ) मधु[5]—मधु पराग, मधु आसव, मधु प्रभात, मधु दिन, मधु राग।

(इ) मधुर[6]—मधुर क्रय, मधुर विस्मृति, मधुर मिलन, मधुर वेदना, मधुर जात, मधुर आवास, मधुर राग।

(ई) मृदु[7]—मृदु तरी, मृदु भार, मृदु बादल, मृदु गात, मृदु ज्वर, मृदु लहर, मृदु प्याला, मृदु चरण।

---

१ देखिए 'यामा', पृष्ठ ६ ७४ १३० १३० १४६

२ छायावाद युग (श्री शम्भूनाथसिंह) पृष्ठ ३४५ ३४६

३ देखिए 'कामायनी की भाषा' (रमेशचन्द्र ... १४३ १४४

४ देखिए 'यामा', पृष्ठ १७८ १६२, १६ ... ४७

५ देखिए 'यामा', पृष्ठ १३४, ८२ ८८ ... ८

६ देखिए ' ' पृष्ठ १३५ १३६, १४६

७ ... ०७ २१०, २१०, १

(उ) चिर[1]—चिर नूतन चिर मिलन चिर निद्रा, चिर पूर्ति, चिर जाग्रत, चिर सुन्दर चिर विरति, चिर मुक्ति।

(ऊ) चल[2]—चल क्षण, चल परिमल, चल दुकूल।

(ए) लघु[3]—लघु पल, लघु बंधन, लघु सुख, लघु बाल, लघु प्राण, लघु क्षण, लघु उर लघु पलक।

पुनरुक्त शब्दावली

महादेवी के सम्पूर्ण काव्य की रचना गीतिकाव्य के रूप में हुई है। गीत के लिए एक आवश्यक प्रतिबंध यह है कि उसमे संगीतात्मकता तथा लय का अबाध प्रवाह होना चाहिए। भाषा की इस प्रवाहशीलता के लिए कवयित्री महादेवी ने अपने अधिकांश गीतो मे शब्द द्वित्व अर्थात पुनरुक्त शब्दो का प्रयोग किया है। कन कन, लुट लुट फैला फैला धीरे धीरे, चूम चूम बुन बुन, पी पी, गिन गिन, छलक छलक, कोमल-कोमल बन बन करुण करुण, तिल तिल, मर मर, हार हार जैसे अनेक युग्म उनके गीतो म बिखरे पडे हैं। कहीं कही तो एक ही पद मे इन युग्मो का एकत्रित प्रयोग करके कवयित्री ने अपनी काव्य भाषा मे अदभुत प्रवाह की सष्टि की है। निम्नस्थ पंक्तियां उदाहरण-स्वरूप ली जा सकती हैं—

"सिहर सिहर उठता सरिता उर,
खुल-खुल पडते सुमन सुधा भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर।"[4]

यह तात्पर्य है कि महादेवी ने शब्द द्विरव की यह प्रवत्ति कहीं-कहीं कथन की निश्चयात्मकता की ओर संकेत करने की दृष्टि से भी ग्रहण की है, किन्तु अधिकांशत इसके मूल में भावागत प्रवाह का सयोजन ही रहा है।

शब्द-माधुर्य

भावाभिव्यक्ति के समय कवि प्राय लालित्य कोमलता एवं माधुर्य की दृष्टि से आनुस्वारिक शब्द चयन, सयुक्त वर्णों के बहिष्कार दीर्घाकार के स्थान पर ह्रस्व मात्राओं के प्रयाग, 'श' की अपेक्षा 'स' जसे वर्ण परिवर्तन आदि के माध्यम से भाषा

१ देखिए यामा पृष्ठ १६०, १८७ ४६ ७५ १५५ २२० २२२ २३६
२ देखिए 'यामा', पृष्ठ २०३ १६३ १३०
३ देखिए यामा', पृष्ठ २०१ ८६, ८६ १०४ ११३ १३५ २४३, २५४
४ देखिए यामा', पृष्ठ १५ ४१ ५२, ६ , ६६, ७१ ६६, ११६ १२७ १४० १५४, १८६, २२१, २३१ २५३
५ यामा पृष्ठ १३०

को रमणीय बनाते हैं। छायावादी कवि इस प्रकार के परिवतनों से खड़ी बोली को मधुर स्वरूप प्रदान करने के प्रति विशेष सजग थे। डॉ॰ नामवरसिंह के अनुसार "भाषा की कोमलता छायावाद का पहला दावा था और कहना न होगा कि उसने इसे पूरा कर दिखाया।"[1] महादेवी की काव्य भाषा म भी ऐसे शब्दों की सहज स्थिति रही है जिनके कारण गीतों के अनुरूप भाषा माधुय मे सहायता मिली है। कुछ शब्द प्रस्तुत हैं—भीर (भीड़), पखुरियाँ (पखुड़ियाँ), करतार (कर्तार) रजनि (रजनी), कन (कण), सपने (स्वप्न), दुख (दु ख), बिन (बिना),[2] । इसी प्रकार उन्होंने आनुस्वारिक शब्दों के चयन द्वारा भी लालित्य का विधान किया है—

(अ) "जब इन फूलों पर मधु की,
पहली बूँदें बिखरी थीं,
आँखें पकज की देखीं,
रवि ने अनुहार भरी सीं !"[3]

(आ) "अलि गु जित पदमों की किंकिणि,
भर पद गति मे अलस तरंगिणि।"[4]

काव्य-दोष

महादेवी विदुषी कवयित्री हैं, अत उनकी भाषा व्याकरण की दृष्टि से प्राय शुद्ध रही है। किन्तु कहीं कहीं उनके गीतों मे लिंग सम्बन्धी कुछ ऐसी अनवधानता रह गई है जो काव्य सौन्दय मे क्षणिक व्यवधान अवश्य उत्पन्न करती है। निष्पक्ष विवेचन के लिए दोष दशन भी आवश्यक है इसी कारण हम उस पर भी विचार करेंगे।

१ वचन एव लिंग सम्बन्धी अशुद्धियां—महादेवी के काव्य म कहीं कहीं बहुवचन के स्थान पर एकवचन और स्त्रीलिंग के स्थान पर पुल्लिंग का प्रयोग अथवा इनकी विपरीत स्थिति मिलती है। 'लौटते यह श्वास फिर फिर,'[5] "अनबीधे मोती यह दृग के'[6] अथवा क्षण गूजें औ यह कण गावें' जसी पक्तियों म एकवचनसूचक 'यह' के स्थान पर बहुवचन 'ये' का प्रयोग किया जाना अधिक उचित था। इसी प्रकार निम्नलिखित पक्तियों म कवयित्री ने, पलक, अवगु ठन बूद तथा झझावात शब्दों

१ छायावाद पृ ठ १०४
२ देखिए (अ) यामा' पृष्ठ १२६, १५१ ३०, १३४, ७०
(आ) दीपशिखा पृष्ठ ८ ११ ३१
३ यामा पृष्ठ ४५
४ यामा, पृष्ठ १३०
५, ६ यामा पृष्ठ १३५ १८४
७ दीपशिखा पृष्ठ १२१

को प्रचलित रूप की अपेक्षा विपरीत लिंग मे प्रयुक्त किया है—

(अ) "मेघों के बूँदों के तीर ।"[1]

(आ) 'मेरे गीले पलक छुओ मत ।'[2]

(इ) "अपनेपन की अवगुंठन ।"[3]

(ई) "बहती रहती झंझावात ।"[4]

२ शब्द विकृति—कवयित्री ने कही कही शब्दो म वण अथवा मात्रा का परिवतन करके उन्हें अनावश्यक रूप से विकृत किया है। भाषा माधुय की दृष्टि से किये गए परिवतनो का समथन तो किया जा सकता है किन्तु अभिलाषें (अभिलाषाएँ), मलार (मल्हार) स्वाती (स्वाति), धूली (धूलि), दीपाली (दीपावली) अथवा वारती (वर्तिका) जसे शब्दो[5] का प्रयोग उचित नही है, क्योकि इनसे भाषा माधुय में किसी प्रकार की सहायता नही मिलता। इसके विपरीत इनके कारण मूल शब्द का पहचानने मे कठिनाई अवश्य हो गई है।

३ ग्राम्यत्व—सुसस्कृत समाज म व्यवहृत होनेवाली भाषा मे अशिष्ट शब्दों का प्रयोग ग्राम्यत्व की कोटि मे आता है। कवि लेखकों को ऐसी शब्दावली के प्रयोग से बचना चाहिए। छायावादी कवि भाषा के साहित्यिक स्तर के विशेष सरक्षक थे, अत वे सामान्यत ऐसे शब्दो के प्रति सजग रहे हैं। कुछ अपवाद अवश्य हैं, जिनमे महादेवी द्वारा चू पडना, 'पथ रूँधना, 'आन समाया', 'बालना' (जलाना) जसे ग्राम्यताबोधक शब्दों का प्रयोग विचारणीय है—

(अ) 'सजल बादल का हृदय-कण,
चू पडा जब पिघल भू पर।"[6]

(आ) "न पथ रूँधतीं ये गहनतम शिलाएँ।[7]

(इ) "मधुर कसक सा आज हृदय मे आन समाया कौन।[8]

(ई) 'क्या न तुमने दीप बाला।"[9]

४ अन्य अशुद्धियाँ—भावावेग की स्थिति मे महादेवी ने एक ही सज्ञा के लिए कभी 'तेरे' और कभी 'तुम' सवनामो का व्यवहार कर दिया है—

(अ) "तुम जन्म देती हो सजनि !
आसक्ति को वैराग्य का !

---

१ २ ३ ४ यामा पृष्ठ ८३ १५० १६६, १६१

५ देखिए (अ) यामा पृष्ठ ५ १६६ १७८ १६३
(आ) दीपशिखा पृष्ठ ८२ १४३

६ यामा पृष्ठ १७६

७ दीपशिखा, पृष्ठ १४६

८ यामा, पृष्ठ १३३

९ यामा, पृष्ठ २०५

तेरे बिना संसार में,
मानव-हृदय श्मशान है।'
(आ) "तुम सो जाओ मैं गाऊँ!
× ×
पथ की रज में है अंकित,
तेरे पद चिह्न अपरिचित।'"

इसी प्रकार "उसमें ते नित बुदबुदे दान" अथवा 'मैं आज चुपा आई चातक।' जैसी पंक्तियों में कुछ प्रयोग विचित्र प्रतीत होते हैं। इसी भाँति 'मैं प्रिय पहचानी नहीं' तथा 'मेरे सब सब में प्रिय तुम' में भाव पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाता।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि महादेवी का काव्य पूर्णतः निर्दोष नहीं है। यदि वे इस दिशा में अधिक सजग रहने का प्रयास करतीं तो उनके काव्य की गुण सम्पदा और भी प्रखर बन जाती।

निष्कर्ष

महादेवी की काव्य भाषा के सौन्दर्य विधायक तत्वों का पृथक् पृथक् विवेचन करने के उपरान्त कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उनकी अभिव्यंजना-पद्धति सशक्त एवं काव्योपयुक्त है। लाक्षणिक विच्छित्ति, प्रतीक सम्पन्नता एवं वक्रोक्तिगत सौन्दर्य के कारण सामान्य पाठक के लिए वह भले ही क्लिष्ट हो, किन्तु प्रबुद्ध रस मर्मज्ञ को वह सहजता-सम्पन्न ही प्रतीत होगी। वस्तुतः महादेवी का उद्देश्य भाषा को आग्रहपूर्वक जटिल बनाना नहीं रहा, अपितु रहस्यात्मक भावों की प्रस्तुति करते समय उसमें अनायास ही सांकेतिकता का विधान हो गया है। तद्भव शब्द रूपों देशज एवं विदेशी पदावली तथा पुनरुक्ति के माध्यम से उन्होंने भाषा को अतिसंस्कृतमयी बनने से बचाया है।

महादेवी के गीतों की भाषा में युग की गीतिमत्ता का पुट भी सुरक्षित रहा है। कोमल एवं अनुस्वारमय शब्द चयन तथा भावपूर्ण विशेषणों की संयोजना के कारण ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके गीतों की भाषा जनमाल साँचों में ढली हुई है। यद्यपि उनकी भाषा में कतिपय काव्य दोष भी रह गये हैं, किन्तु भावावेग की स्थिति में उनका रह जाना स्वाभाविक था। साथ ही गुणों की समृद्धि के सम्मुख वे नगण्य प्रतीत होते हैं। वास्तविकता तो यही है कि खड़ीबोली को मसृणता, सौष्ठव और गाम्भीर्य प्रदान करने की दृष्टि से कवयित्री महादेवी वर्मा का महत्त्व अविस्मरणीय रहेगा।

—

१, २, ३, ४, ५, ६ यामा, ५४, ५५, १६८, १६, २१०, १४८, १७२

१७

महादेवी का काव्योन्मेष

भारतीय काव्य साहित्य की सबसे प्रमुख विशेषता दर्शाते हुए कहा गया है कि इस देश के समस्त काव्य साहित्य मे आस्तिकता की एक प्रबल धारा विद्यमान है जो इसे सदव ही एक प्रकार का गौरव प्रदान करती रही है। महादेवी का का य भी बुद्धि समन्वित भावुकता दार्शनिकता और सक्रिय आस्तिकता का काव्य है। उनम सगीतज्ञ, चित्रकर्त्री तथा कवयित्री की त्रिवणी का सुदर सामजस्य है। इसी स उनके गीतों मे सगीत के सुरावरोह एव सूक्ष्मतम अनुभूतियाँ साकार हो पाई हैं। साधनापूत आस्तिक माता से प्राप्त भावुकता को दार्शनिक पिता स चितन मिला। सासारिक वैपरीत्य, सामाजिक सघष और अध्ययन से अतप्त आकाक्षा से करुणा को परिपोष मिला। इसके परिणामस्वरूप उलझन अधकार तथा विकलता ने उनमे एक विशिष्ट यक्तित्व का निर्माण किया।

महादेवी मे स्थित इस विचित्र व्यक्तित्व ने जिस वेदना की कवयित्री को जन्म दिया उसकी काव्य रचना का प्रारम्भ माता की अचना व आराधना से अनुप्रेरित होकर हुआ है। उन्होने स्वय कहा है "माँ से पूजा आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के सगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा रचना आरम्भ की थी।" इस प्रकार प्रारम्भ से ही उनम अव्यक्त के प्रति आकषण उपासना, कौतूहल, रहस्यात्मकता और अन्तस्य विकलता दिखाई देती है। अन्य कुछ भक्तो या कवियो की भाँति रहस्यवाद के लिए उन्हे किंचित् भी प्रयास नही करना पडा। उनका यह रहस्यवाद प्राचीन भक्त कवियो के रहस्यवाद से सवथा भिन्न है क्योंकि इसमे साधना अथवा योग का जरा भी भाव नही है जो कि प्राचीन रहस्यवाद का एक प्रमुख तत्व माना गया है। महादेवी का रहस्यवाद स्वाभाविक और शुद्ध भावात्मक रहस्यवाद है। रूप रजन के अनुसार भावात्मक रहस्यवाद के चार प्रमुख भेद (प्रेम और सौन्दय समन्वित रहस्यवाद, दार्शनिक रहस्यवाद उपासना प्रसूत रहस्यवाद एव प्रकृतिपरक रहस्यवाद) हैं। उन सबका सुमग समन्वय प्रारम्भ से ही उनकी कविताओं मे पूण रूप से देखा जाता है।

'नीहार' कवयित्री का प्रथम काव्य सग्रह है। इस काव्य सग्रह का हिन्दी साहित्य क्षेत्र में सादर अभिनन्दन करते हुए परिचय लेखक श्री 'हरिऔध' जी ने उनमें

तेरे बिना संसार में,
मानव-हृदय श्मशान है।'[1]
(ग) "तुम सो जाओ मैं गाऊँ!
× ×
पथ की रज में हैं अंकित,
तेरे पद चिह्न अपरिचित।'[2]

इसी प्रकार "उलझते नित युद्बुदे शत" अथवा 'मैं आज चुपा आई चातक।' जैसी पंक्तियों में कुछ प्रयोग विचित्र प्रतीत होते हैं। इसी भाँति 'मैं प्रिय पहचानी नहीं'[3] तथा 'मेरे सब सब में प्रिय तुम'[4] में भाव पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाता।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि महादेवी का काव्य पूर्णतः निर्दोष नहीं है। यदि वे इस दिशा में अधिक सजग रहने का प्रयास करतीं तो उनके काव्य की गुण सम्पदा और भी प्रखर बन जाती।

निष्कर्ष

महादेवी की काव्य भाषा के सौन्दर्य विधायक तत्त्वों का पृथक् पृथक् विवेचन करने के उपरान्त कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उनकी अभिव्यंजना-पद्धति सशक्त एवं काव्योपयुक्त है। लाक्षणिक विच्छित्ति, प्रतीक सम्पन्नता एवं वक्रोक्तिगत सौन्दर्य के कारण सामान्य पाठक के लिए वह भले ही क्लिष्ट हो किन्तु प्रबुद्ध रसमर्मज्ञ को वह सहजता सम्पन्न ही प्रतीत होगी। वस्तुतः महादेवी का उद्देश्य भाषा को आग्रहपूर्वक जटिल बनाना नहीं रहा अपितु रहस्यात्मक भावों की प्रस्तुति करते समय उसमें अनायास ही सांकेतिकता का विधान हो गया है। तद्भव शब्द रूपों देशज एवं विदेशी पदावली तथा पुनरुक्ति के माध्यम से उन्होंने भाषा को अतिसंस्कृतमयी बनने से बचाया है।

महादेवी के गीतों की भाषा में युग की गीतिमत्ता का पुट भी सुगुम्फित रहा है। कोमल एवं अनुस्वारमय शब्द चयन तथा भावपूर्ण विशेषणों की संयोजना के कारण ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके गीतों की भाषा अनमोल सांचों में गढ़ी हुई है। यद्यपि उनकी भाषा में कतिपय काव्य दोष भी रह गये हैं किन्तु भावावेग की स्थिति में उनका रह जाना स्वाभाविक था। साथ ही गुणों की समृद्धि के सम्मुख वे नगण्य प्रतीत होते हैं। वास्तविकता तो यही है कि खड़ीबोली को मसृणता, सौष्ठव और गाम्भीर्य प्रदान करने की दृष्टि से कवयित्री महादेवी वर्मा का महत्त्व अविस्मरणीय रहेगा।

---

१ २ ३ ४ ५ ६ यामा, ५४ ५५ १६८ १६०, २१० १४८ १७२

महादेवी के काव्योन्मेष में बड़ी स्पष्टता और स्वाभाविकता के साथ हुआ है। इसलिए डाक्टर देवराज ने कवयित्री की एक कविता की आलोचना करते हुए कहा है "महादेवी की आत्मा जीवन के विशिष्ट दिव्य क्षणों में, या यों कहिए अपनी उन्मुक्तावस्था में सत चिन्मय तत्व के साथ तादात्म्य की अनुभूति में अनुप्राणित हो उठी। उसे समझ में आया अब तक मैं कितनी भूल में था। यदि हम दुनिया को और इसकी सारी हलचल को अपने प्रिय से मिलकर देखें तो कहाँ दुःख, कहाँ ससीम और असीम। सारा विश्व एक आनन्दोल्लास से थिरकता-सा दिखलाई पड़ेगा। वह मौलिक सत पदार्थ, जिसे आत्मा ने अपनी उन्मुक्तावस्था में देखा था, उसको पूर्ण अभिव्यक्ति इसी रूप में हो सकती थी, जिस रूप में वह काव्य-शरीर धारण कर खड़ी है।" इस सम्बन्ध में डाक्टर नगेन्द्र के ये शब्द भी सर्वथा उचित लगते हैं कि महादेवी ने छायावाद पढ़ा नहीं, अपितु अनुभव किया है।

उनके काव्य में आरम्भ से ही रहस्यवाद और छायावाद की सभी विशेषताओं का समावेश पाया जाता है। यही नहीं उनके वेदनापूर्ण काव्य विहार की नींव भी यहीं से पड़ गई है। 'नीहार' का नामकरण भी कदाचित इसी के कारण बन पड़ा है। प्रकृति में प्रभात होने से पहले जो एक धुँधलापन या तुषार छाया रहता है उसी को नीहार कहते हैं। कवयित्री के जीवन में भी किसी अज्ञात के प्रति गहन वेदना और निराशा के भाव भरे हैं। उन्हें अपने उस अज्ञात प्रियतम की ओर प्रेरित करने वाली प्रेरणा तो प्राप्त होती है, किन्तु वहाँ तक पहुँचने का मार्ग अनिर्दिष्ट है। इसीलिए इसमें एक कुतूहल मिश्रित वेदना आदि से अन्त तक परिलक्षित होती है। उनके प्रथम काव्य-संग्रह में तो सचमुच ही यह भावना बड़े उत्तम ढंग से अभिव्यक्त हुई है यद्यपि इस प्रथम काव्योन्मेष में कहीं-कहीं आरम्भिक खुरदरापन भी दिखाई देता है। जैसे—

'विश्व में हे फूल! तू सबके हृदय भाता रहा!
दान कर सवस्व फिर भी हाय हर्षाता रहा!'[1]

और बाल-सुलभ कुतूहल से इसके त्यागरण तथा सांसारिक निष्ठुरता को देखकर कवयित्री कह उठती हैं

"जब न तेरी ही दशा पर दुःख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन! हमसे मनुज निःसार को।"[2]

परन्तु इसमें मिलन विरह की क्रीडा के समावेश से यही कुतूहल रहस्यपूर्ण बन गया है और भावना में तरलता आ गई है। अपने इस प्रथम काव्योन्मेष में ही महादेवी को आभास मिल गया है कि उनकी अनुभूति-वीणा के तारों की अस्फुट झंकृति विश्व

१ नीहार पृष्ठ ४४
२ वही

प्रतिभा बीज का साक्षात्कार पा लिया था और इसीलिए लिखा था, 'यह ग्रन्थ कवयित्री का प्राथमिक ग्रन्थ है फिर भी इसमें उनकी प्रतिभा का विलक्षण विकास देखा जाता है। ग्रन्थ सर्वथा निर्दोष नहीं है किन्तु इसमें अनेक इतनी सजीव और सुन्दर पंक्तियाँ हैं कि उनके मधुर प्रवाह में उधर दृष्टि जाती ही नहीं। ग्रन्थ की भावुकता और मार्मिकता उल्लेखनीय है। उसका कोमल शब्द विन्यास एवं रहस्यात्मकता भी अल्प आकर्षक नहीं।" नीहार' की कविताओं को पढ़ने से स्वतः प्रतीत हो जाता है कि अभी महादेवी की अनुभूति के क्षितिज ने केवल ऊषा की लालिमा का स्पर्श पाया है। इस रक्तिम आभा में मध्याह्न के सूर्य की प्रखरता का आभास भले ही न मिलता हो किन्तु कवयित्री के चित्त की सक्रियता, ऊर्मि तथा संवेदना के स्वरूप की झाँकी अवश्य मिलती है। स्वयं महादेवी ने अपने इस काव्योन्मेष के स्वरूप को स्पष्ट रूप से परखते हुए लिखा है नीहार के रचना काल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी, जैसे किसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।"

'नीहार' के वर्ण्य विषयों में कहीं पर 'कहाँ ?' और 'कौन ?' कुतूहल है तो कहीं नीरव भाषण' 'प्रतीक्षा' 'स्मृति' एवं 'स्वप्न' का उल्लेख है। एक स्थान पर 'मिटने का खेल' है तो अन्यत्र 'आँसू की माला पिरोई गई है। कहीं 'मुरझाया फूल' व 'समाधि के दीप' से अनुभूति सक्रिय बनी है तो कहीं पर 'चाह' 'सन्देह' 'अनुरोध' और 'विसर्जन' मुखरित होता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार उनके प्रारम्भिक वर्ण्य विषयों में ही अन्तर्मुखता स्पष्ट हो जाती है। कवयित्री के भावों का आलम्बन स्थूल संसार की अपेक्षा व्यक्तिगत सूक्ष्म भाव-जगत् अधिक रहा है। इससे स्वाभाविक रूप से ही उनके काव्य ने अंग्रेजी साहित्य के रोमांसवाद की विशेषताओं को समाहित कर लिया है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध आलोचक एबरक्रोंबी ने रोमांसवाद की परिभाषा देते हुए लिखा है "Romanticism is that attitude of the mind in which it withdraws itself from commerce with the outer world, and turns in upon things it finds within itself"

इस अन्तर्मुखी जीवन दृष्टि का उत्स रोमांसवाद अध्ययन आकर्षण में है, ऐसा नहीं कहा जा सकता और न ही इसमें परम्परा यान्त्रिकता, शब्द-मोह या व्याकरणगत शुद्धता के आग्रह के प्रति क्रान्ति का उन्मेष है। वस्तुतः यह तो एक स्वयं प्रसूत स्रोत है जो संस्कारजन्य व परिस्थिति से उत्प्रेरित होता है, जिसने काव्य को आकार दिया है और जो रोमांसवाद की गोलाई तरलता रमणीयता और भावोच्छ्वास को अपने में समाहित कर सका है। आध्यात्मिक स्तर का प्रकृति प्रेम उदार मानवतावाद तथा काव्य की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति प्रणाली रोमांस की ये तीनों ही प्रमुख प्रवृत्तियाँ हिन्दी के छायावाद तथा रहस्यवाद में प्रकट हुई हैं। इन सबका सुन्दर समन्वय

वेदना का आनन्द और अधिक लिया जा सके—

"आज आए हो हे करुणेश !
इन्हें जो तुम देने वरदान,
गलाकर मेरे सारे अंग
कर दो आंखों का निर्माण ।'[1]

वस्तुत यह बडी सुकुमार और भावुक कल्पना है जो स्वत ही कवयित्री की अनुभूति की गहराई का ज्ञान करा देती है । इस प्रकार इस पृथ्वी की ओर जीवन की चाह पाकर अब उन्हें स्मृति कोष की सम्पत्ति पर जीवन यतीत करना है। वहाँ भी हृदयस्पर्शी अनुभूतियो का बाहुल्य है । ऊषा का सिन्दूर चुराकर उनका प्रात मुस्कराता है तो कोई उस लाली म छिपाकर सुनहला प्याला लाता है । वह कौन है ?' का जिज्ञासामूलक प्रश्न प्राणो म प्रतिध्वनित होता है तो वहाँ मडराता हुआ उन्माद है और साथ ही चिरतन व्यथा की चिर पिपासा भी है। प्रम व्यथा के इस घूंट से भावस्रोत का उदगम पान की अभिलाषा जाग उठती है । इसी अभिलाषा ने काव्य स्रोत का पथ प्रदशन किया है । मुग्धावस्था म ब्रीडायुक्त ललचाई पलको के उस प्रथम दशन की स्मृति व प्रियतम के निरन्तर स्मरण ने जीवन निधि भर दी है । इस स्मृति-चवणा ने भावना की तरलता तथा रागात्मक द्रव तयार किया है, अत अब वे दढता से कह सकती हैं—

'मेरी आहें सोती हैं इन ओठों की ओटों में,
मेरा सवस्व छिपा है इन दीवानी चोटो म !"[2]

इस मूक अ तव्यथा स समद्ध कोष ने अनैक्य के भाव को नष्ट करके अब एकता की भावना जगा दी है । तभी तो विश्वासपूवक कवयित्री कहती हैं—

'चिन्ता क्या है, हे निमम ! बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही पीडा का राज्य अंधेरा !'[3]

प्रियतम की अव्यक्त सत्ता की खोज की चाह अब उसके अस्तित्व के विश्वास का अभाव पाती है। शकाए विरम जाती हैं और आत्मा अपने आपको दिव्य वातावरण मे पाकर सात्विक आश्वासन पाती है। अब चारो ओर उसी का स्पन्दन है व उसी के अश का अस्तित्व है । यह वही है जो उनके अन्तर मे निवसित है उन्हे अपने आतर स्वत्व मे एव बाह्य सात्विक प्रसार म अभिन्नता दिखाई देती है । इसी एकत्व

---

१ नीहार पृष्ठ ७०
२ नीहार, पृष्ठ २१
३ वही

वीणा से मल नहीं रख पाएगी। इसीलिए वे इसे विश्ववीणा म विसर्जित कर दने की अभिलाषा व्यक्त करती हैं। सम्भवत इसी के उत्तर मे उनको मधुमय मुरली की तान सुनाई दी। वह भी कहाँ ? सिहरते हुए नीरव कूल पर रात्रि के तमस मे और हृदय की तरलावस्था मे। जब कभी जीवन मे मिलन का क्षण आया तो उसम चल चितवन के दूत ने उनकी निर्निमेष पलको मे ऐसे उत्पात मचाये कि उन्हें बरबस कहना पड़ा—

"जीवन है उन्माद तभी से निधियाँ प्राणों के छाले,
माग रहा है विपुल वेदना के मन प्याले पर प्याले !"[1]

मिलन के इस क्षण के चिरगामी प्रभाव ने 'दिव्य मिलन का सा काय किया है। अब उन्हें प्रकृति की क्रीडाओ म भी प्रतीक्षामय सकेत मिलने लगते हैं। मधुमास निजन म बिखरा है तो म द वतास सूना कोना खोज रहा है। फूलो की पलकें न जाने किसका पथ देखती हैं। इस प्रकार समस्त सृष्टि ही किसी की प्रतीक्षा म लीन है।

परिवर्तित ससार के दृश्य देखकर उनक मन म एक विचित्र सी भावना पदा होती है। कभी उन्हे निशावसान मे बुझते तारो के नीरव नयनों के हाहाकार म ससार की अस्थिरता का आभास मिलता है तो कभी ऊषा काल मे सुनहरे अचल मे रोली बिखरते देखकर, लहरो की बिछलन पर मचलती और नाचती किरणो को देखकर, पल्लव के सुकुमार घूँघट उठाकर छलकी हुई पलको से बहती हुई कलियो से ससार की मादकता' की मादकता का स देश मिलता है। किन्तु साथ की पवन को सौरभदान देकर भी आँखो म धूल पाने वाले फूलो का ममर रुदन सुनकर 'ससार की निष्ठुरता' का आभास भी उपलब्ध होता है फलत प्रकृति मे प्रतीक्षा एव सासारिक परिवतन मे निस्सारता पाकर कवयित्री अन्तमुखता का ही आश्रय ग्रहण करती हैं। उन्हें वेदना, सताप तथा वियोगावस्था के प्रति एक अदभुत प्रेम हो जाता है। इसी वेदना, अवसाद व जलन के कारण उन्हें इस पृथ्वी की चाह उत्प न हो गई है। यदि प्रिय को करुणा के उपहार के रूप मे वेदनाहीन अमरो का लोक भी मिलता हो तो वह भी उन्हें स्वीकाय नही। इसीलिए वे कहती हैं—

"क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।"[2]

महादेवी को इस वेदना म इतना अधिक आनन्द प्राप्त होता है कि वे अपनी कामना प्रकट करती हुई कहती हैं कि उनका सारा शरीर ही नेत्र बन जाये, जिससे

१ नीहार पृष्ठ १२
२ नीहार पृष्ठ १७

वेदना का आनन्द और अधिक लिया जा सके—

"आज आए हो हे करुणेश !
इन्हें जो तुम देने वरदान,
गलाकर मेरे सारे अंग
कर दो आखों का निर्माण ।[1]

वस्तुत यह बड़ी सुकुमार और भावुक कल्पना है जो स्वत ही कवयित्री की अनुभूति की गहराई का ज्ञान करा देती है। इस प्रकार इस पृथ्वी की ओर जीवन की चाह पाकर अब उन्हे स्मृति कोष की सम्पत्ति पर जीवन व्यतीत करना है। वहाँ भी हृदयस्पर्शी अनुभूतियों का बाहुल्य है। ऊषा का सिन्दूर चुराकर उनका प्रात मुस्कराता है तो कोई उस लाली में छिपाकर सुनहला प्याला लाता है। 'वह कौन है ?' का जिज्ञासामूलक प्रश्न प्राणो म प्रतिध्वनित होता है तो वहाँ मडराता हुआ उन्माद है और साथ ही चिरतन व्यथा की चिर पिपासा भी है। प्रम-व्यथा के इस घूँट से भावस्रोत का उदगम पान की अभिलाषा जाग उठती है। इसी अभिलाषा ने काव्य स्रोत का पथ प्रदर्शन किया है। मुग्धावस्था म ब्रीडायुक्त ललचाई पलको के उस प्रथम दर्शन की स्मृति व प्रियतम के निरन्तर स्मरण ने जीवन निधि भर दी है। इस स्मृति-चर्वणा ने भावना की तरलता तथा रागात्मक द्रव तयार किया है, अत अब व दृढता से कह सकती हैं—

मेरी आहें सोती हैं इन ओठों की ओटो में,
मेरा सवस्व छिपा है इन दीवानी चोटो मे ! "[2]

इस मूक अन्तर्व्यथा से समृद्ध कोष ने अनक्य के भाव को नष्ट करके अब एकता की भावना जगा दी है। तभी तो विश्वासपूर्वक कवयित्री कहती हैं—

'चिन्ता क्या है, हे निमम ! बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही पीडा का राज्य अँधेरा !'[3]

प्रियतम की अव्यक्त सत्ता की खोज की चाह अब उसके अस्तित्व के विश्वास का अभाव पाती है। शकाए विरम जाती हैं और आत्मा अपने आपको दिव्य वातावरण मे पाकर सात्विक आश्वासन पाती है। अब चारो ओर उसी का स्पन्दन है व उसी के अश का अस्तित्व है। यह वही है जो उनके अन्तर मे निवसित है उन्हे अपने आतर स्वत्व मे एव बाह्य सात्विक प्रसार मे अभिन्नता दिखाई देती है। इसी एकत्व

१ नीहार पृष्ठ ७०
२ नीहार, पृष्ठ २१
३ वही

की घोषणा करते हुए वे गाती हैं—

में कंपन हूँ तू करुण राग
में आँसू हूँ तू है विषाद,
में मदिरा तू उसका खुमार
में छाया तू उसका आधार।"[1]

वे उभय के एकत्व की घोषणा करती हुई भी द्वतजन्य संयोग और वियोग का वर्णन करती हैं। अद्वत स्थिति मे रागात्मक सम्बन्ध का विनाश हो जाने के कारण वे मायाबद्ध द्वतभाव को ही पसन्द करती हैं। उनकी दुःखी आत्मा उस अज्ञात प्रियतम का सान्निध्य तो चाहती है किन्तु साथ ही उसे यह भय भी रहता है कि कहीं आत्मज्ञान की उपलब्धि पाकर वह अद्वैत स्थिति न प्राप्त कर ले। इस प्रकार की दुविधापूर्ण स्थिति मे न जाने कितने ही सन्दर्भों मे उन्होंने एकत्व की घोषणा की है। कवयित्री ने अपनी मानवीय विवशता म व प्राकृतिक व्यापारो की विशालता म एक अलक्षित शक्ति के प्रभाव तथा अस्तित्व की कल्पना को मूतरूप दिया है। उनके हृदय की भावक्रीडा ने केवल ससीम की सीमाओ मे अथवा आकुलता मे ही सीमित न रहकर दिव्य अनुभूति तक प्रसार पाया है। भावावेश म दिव्य अनुभूति पाकर पार्थिव अस्तित्व से ऊपर उठकर अपार्थिव महा अस्तित्व के साथ एकात्म का अनुभव करने लगा है और अज्ञात रूप से ही उनकी 'बुद्धि का श्रेय हृदय का प्रेय' बन गया है।

अपने प्रारम्भिक काव्योन्मेष मे ही महादेवी को प्राकृतिक व्यापारो मे सजीवता दिखाई देती है जिससे वे अपने सूक्ष्म आलम्बन का सवत्र प्रसार देखने लगती हैं। इससे प्रभावित अन्त प्रकृति म उद्वेलन की अनुभूति उनकी सवस्व है। वे तो इसी को अपना प्रमुख शस्त्र व लक्ष्य बताते हुए कहती हैं—

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणो की क्रीडा,
तुमको पीडा मे ढूँढ़ा तुममे ढूँढ़ूँगी पीडा।"

उनकी यह भावुकता काव्य के प्रारम्भिक उन्मेष मे मिलनाकांक्षा, कुतूहल मिश्रित वेदना, विरहजनित क्षीणता वियोग की तडप आदि विविध रूपो मे अभिव्यक्त हुई है, इसी से उनकी यह संवेदना पाठक के मम को छू सकने मे पूण रूप से समथ हो सकी है। कवयित्री के निजी सुख दुःख की भावावेशमयी अवस्था के ये चित्र स्वरसाधना के उपयुक्त बनने का प्रयास करते हुए पाये जाते हैं। इनमे स्वानुभूति आरम्भिक वातावरण के सृजन के बाद प्रकाशित होती हुई चरम सीमा पर पहुचती है। इससे कहीं-कहीं भावावृत्ति में शिथिलता का आभास भी मिल जाता है। आरम्भिक वातावरण-सृजन के लिए अधिकाश गीतो मे प्राकृतिक परिपाश्व को ही चुना गया है। गीत के अनुकूल

१ नीहार, पृष्ठ ४७

प्राकृतिक व्यापार के चैतन्यपूर्ण दर्शन के पश्चात् उनकी अनुभूति इसी मे पिरोई गई है, जो क्रमश बढ़ती हुई चरमसीमा पर पहुचती है। अनुभूति की इस सच्चाई व भावावेग को सरल शब्द योजना, सुमधुर वर्णविन्यास, छन्दो के कम्पन तथा अनुप्रासादि अलकारो ने समुचित योगदान दिया है। इसी के फलस्वरूप उत्कृष्ट गीत रचना की कवयित्री की क्षमता की झाँकी यहीं से मिल जाती है। प्रतीकात्मकता, मूर्तविधान, अलकरण एव लाक्षणिक प्रयोगो ने उनकी अनुभूति को यथावत् आकार देने मे पर्याप्त सहयोग दिया है।

इस प्रकार महादेवी का यह काव्योन्मेष उनके ससीम की विकलता, सक्रियता तथा स्वानुभूति से युक्त है। यह विकलता प्रमुखत ससीम के घेरे म ही बधी रही है, किन्तु इसने असीम का कुछ आभास अवश्य पा लिया है जो भावी दार्शनिक योग का यहीं से सकेत करने लगी है। युग की बौद्धिकता ने उनकी भावाभिवृत्ति को शिथिल नही होने दिया है, इसका कारण उनकी चिन्तनशील अन्तर्वैयक्तिकता एव अन्तर्जगत की गहरी तहों की गहनता है। स्वतन्त्र और मौलिक छन्द चयन ने भी उनकी कविता को सफल बनाने म उचित योग दिया है।



डॉ० रामकुमार सिंह

१८

महादेवी की कल्पना तथा काव्य दर्शन

काव्य अनुभूति की आभिव्यक्तिक प्रसूति होता है यह एक मान्य तथ्य है। अभिव्यक्ति पक्ष को लेकर उसके अन्य अनेक सौन्दर्याधायक उपादान भावानुरूप उसकी सहज प्रभविष्णुता स्वाभाविकता और माहक कलात्मकता के अनपगी विषय होते हैं। अनुभूति प्राथमिक एव अतिसूक्ष्म होती है तथा कृति म व्यजित विस्तृत भाव राशि का मूलरूप होती है जो अनकूल परिस्थितियो म बीज रूप म कवि के अन्तराल मे अकुरित होती है। अनुभूति की आतर गुज आगे प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के माग पर विस्तार लेती हुई अग्रसर होती है। स्पष्टत भावानुभूति के आभिव्यक्तिक उपादानो मे माध्यम रूप में भाषा का प्र ख स्थान है जो अपने सहज निराले कलात्मक अलकरणो तथा लय छद आदि से युक्त होकर उसे भावानुकूल सहृदय सवेद्य आच्छादन देती है और काव्य को प्रत्यक्षत सप्रेषणीय बनाती है। कवि मानस की अनुभूत्यात्मक तरगावलियो की उठान से लेकर उसके सप्रेषणीय सामर्थ्य के अभिव्यजनात्मक दार्शनिक विकास तक एक अविच्छिन्न सहज सजनात्मक सपूण प्रक्रिया होती है। किन्तु अनुभूति अपने आन्तर अनुगुजनात्मक रूप म ही अभिव्यक्त होकर सपूण काव्य नही हो जाती वरन प्रत्यक्ष व्यजना के अवसर पर वह अपने मूलाधार पर आत्म विस्तार भी करती है जो कवि की तत्कालीन उद्बुद्ध सजनशील प्रवृत्ति के साथ स्थूल अथवा सूक्ष्म साम्य अथवा वषम्य धर्मी सिद्ध होता है, जिसका प्रमुख अवलम्ब विशेषत कवि की प्रातिभ सक्रियता द्वारा सहजभाव से खीची हुई अनूठी कल्पना या कल्पनायें होती हैं उनकी निश्चयात्मक दार्शनिक सूक्तियाँ होती हैं। का यालोचन की दृष्टि से उनका विशिष्ट महत्त्व है।

सामान्यत कल्पना कवि की वह प्रतिभा शक्ति है जो पूर्वोक्त साम्य अथवा वैषम्यमूलक, सूक्ष्म अथवा स्थूल प्राकृत एव मानवीय सहज व्यापारो क सहायक रूप मे भावानुकूल सब ध प्रस्तुत करते हुए मानस चित्र मूत एव स्पष्ट करती है। कालरिज के अनुसार कल्पना मन की उस सजनात्मक प्रज्ञा को कहते हैं जो पदार्थों की पृष्ठभूमि तथा उनके अन्तराल में निहित आतरिक सम्ब धो को खोजकर उनके सहारे नव निर्माण का काय सम्पन्न करता है।" इस प्रकार काव्य-सष्टि मे भाव विस्तार के निमित्त कल्पना की अनिवाय महत्ता है और कलात्मक सजना म मूल अनुभूति के सकेत वाक्य के आगे कृति का अधिकाश उसी से मडित होता है। पुन एक चरम भावुकता के आवेश

में उसी क्रम में दार्शनिक निष्पत्तियाँ भी आविर्भूत हो जाती हैं। प्रस्तुत निबन्ध में इस दृष्टि से हम महादेवी जी के कार्यद्वय पर विचार करना चाहेंगे।

महादेवी जी छायावादी युग की प्रमुख प्रगीतिकार हैं। प्रगीतों की सृष्टि विशुद्ध भावुकता पर आधारित होती है जिसमें कथात्मक आधार सर्वथा अवांछित होता है। सृजन-क्रम में प्रगीत की प्रथम पंक्ति मूल सकल्पात्मक आन्तर उद्वेलन (अनुभूति) का प्रथम सूत्रात्मक संकेत देकर आगे कल्पनात्मक विस्तृति लेने लगती है और कवि सामर्थ्यानुसार एक समुचित सीमा तक प्रसरित होकर अपेक्षित भावोद्वेलन के उपरान्त कवि मानस को वांछित सतुष्टि प्रदान करती हुई परिसमापन की स्थिति में आ जाती है। महादेवी जी वेदना प्रधान सूक्ष्म संवेदना की भावुक गायिका हैं। उनके किसी भी प्रगीत में कल्पना विस्तृति के स्पष्ट रूपों से उपयुक्त कथन की सिद्धि संभव है। उदाहरणार्थ 'प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन' प्रगीत लीजिए। प्रस्तुत पंक्ति अभिव्यंजनीय विशाल भाव की मूल अनुभूति का प्रथम सूत्र-संकेत उपस्थित करती है। तदुपरान्त उसको विस्तृति देने वाली अन्य संबंधित कल्पनायें उभरती हैं—

> यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
> नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग,
> छाया-सी काया वीतराग,
> सुधि भीने स्वप्न रंगीले घन।

इन परवर्ती पंक्तियों में सान्ध्यकालीन आकाश के अनेक संघटनात्मक दृश्य अनुपंगी कल्पनाओं के रूप में कवयित्री के अपने जीवन में सान्ध्य-गगन की मान्यता को पुष्ट करते हैं। इसी प्रकार प्रथम अनुभूत्यात्मक मधुर मधुर दीपक के जलने की सार्थकता को सिद्ध करने वाली कल्पनात्मक प्रसिद्ध पंक्तियों को लिया जा सकता है। उस गीत के सभी चरण दीपक के चतुर्दिक अपनी कोमल कल्पनाओं का समाहार करते हुए मूल अनुभूति की पुष्टि एवं गीत को पूर्णता प्रदान करते हैं। इस प्रकार काव्य सृष्टि में मूल अनुभूति के साथ साथ कल्पना-व्यापार का विशेष योग होता है। महादेवी जी के प्रगीतों में प्रायः अनुभूति का एक दुःखात्मक स्वरूप ही प्रमुख है। चाहे वह किसी भी प्रतीकात्मक स्थिति में प्रकट हुआ हो, किन्तु उनका कल्पना-व्यापार इतना विशद विरल और बहुल है, इतना सूक्ष्म स्पर्शी, मर्मस्पर्शी एवं अनुभूति के अनुकूल है कि वह उनकी एक स्थायी काव्यात्मक वेदना-सृष्टि को प्रचुर प्रगीतों में चटुल मवरंगों में रंजित करने में सफल हुआ है। प्रत्येक प्रगीत झरते वेदना वारिदा के अंचल में नव इन्द्रधनुप-सा खिल गया है—

> नव कुन्द-कुसुम-से मेघ-पुंज, बन गये इन्द्रधनुषी वितान।
> दे मृदु कलियों को चटक ताल, हिम बिन्दु नचाती तरल प्राण।
> धो स्वर्ण प्रात में तिमिर गात, दुहराते अलि निशि मूक तान॥

डॉ० रामकुमार सिंह

१८

महादेवी की कल्पना तथा काव्य-दर्शन

काव्य अनुभूति का आभिव्यक्तिक प्रसूति होता है यह एक मान्य तथ्य है। अभिव्यक्ति पक्ष को लेकर उसके अन्य अनेक सौन्दर्याधायक उपादान भावानुरूप उसकी सहज प्रभविष्णुता स्वाभाविकता और ग्राहक कलात्मकता के अनुषंगी विषय होते हैं। अनुभूति प्राथमिक एवं अतिसूक्ष्म होती है तथा कृति में व्यंजित विस्तृत भाव राशि का मूलरूप होती है जो अनुकूल परिस्थितियों में बीज रूप में कवि के अन्तराल में अंकुरित होती है। अनुभूति की आतर गुंज आगे प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के मार्ग पर विस्तार लेती हुई अग्रसर होती है। स्पष्टतः भावानुभूति के आभिव्यक्तिक उपादानों में माध्यम रूप में भाषा का प्रमुख स्थान है जो अपने सहज निराले कलात्मक अलंकरणों तथा लय छंद आदि से युक्त होकर उसे भावानुकूल सहृदय संवेद्य आच्छादन देती है और काव्य को प्रत्यक्षतः सम्प्रेषणीय बनाती है। कवि मानस की अनुभूत्यात्मक तरंगावलियों की उठान से लेकर उसके सम्प्रेषणीय सामर्थ्य के अभिव्यंजनात्मक, दार्शनिक विकास तक एक अनिच्छद सहज सर्जनात्मक संपूर्ण प्रक्रिया होती है। किन्तु अनुभूति अपने आन्तर अनुगुंजनात्मक रूप में ही अभिव्यक्त होकर संपूर्ण काव्य नहीं हो जाती वरन् प्रत्यक्ष व्यंजना के अवसर पर वह अपने मूलाधार पर आत्म विस्तार भी करती है जो कवि की तत्कालीन उद्बुद्ध सर्जनशील प्रवृत्ति के साथ स्थूल अथवा सूक्ष्म साम्य अथवा वैषम्य धर्मी सिद्ध होता है जिसका प्रमुख अवलम्ब विशेषतः कवि की प्रातिभ सक्रियता द्वारा सहजभाव से खींची हुई अनूठी कल्पना या कल्पनायें होती हैं उनकी निश्चयात्मक दार्शनिक सूक्तियाँ होती हैं। काव्यालोचन की दृष्टि से उनका विशिष्ट महत्व है।

सामान्यतः कल्पना कवि की वह प्रतिभा शक्ति है जो पूर्वोक्त साम्य अथवा वैषम्यमूलक, सूक्ष्म अथवा स्थूल प्राकृत एवं मानवीय सहज व्यापारों के सहायक रूप में भावानुकूल सब व प्रस्तुत करते हुए मानस चित्र मूर्त एवं स्पष्ट करती है। कालरिज के अनुसार "कल्पना मन की उस सृजनात्मक प्रज्ञा को कहते हैं जो पदार्थों की पृष्ठभूमि तथा उनके अन्तराल में निहित आंतरिक सम्बन्धों को खोजकर उनके सहारे नव निर्माण का कार्य सम्पन्न करता है।"[1] इस प्रकार काव्य-सृष्टि में भाव विस्तार के निमित्त कल्पना की अनिवार्य महत्ता है और कलात्मक सर्जना में मूल अनुभूति के संकेत वाक्य के आगे कृति का अधिकांश उसी से मंडित होता है। पुनः एक चरम भावुकता के आवेग

में उसी क्रम म दार्शनिक निष्पत्तियाँ भी आविर्भूत हो जाती हैं। प्रस्तुत निबन्ध मे इस दृष्टि से हम महादेवी जी के काव्यदर्शन पर विचार करना चाहेंगे।

महादेवी जी छायावादी युग की प्रमुख प्रगीतिकार हैं। प्रगीतो की सृष्टि विशुद्ध भावुकता पर आधारित होती है जिसम कथात्मक आधार सर्वथा अवांछित होता है। सर्जन क्रम म प्रगीत का प्रथम पंक्ति मूल सकल्पात्मक आन्तर उद्वेलन (अनुभूति) का प्रथम सूत्रात्मक सकेत देकर आगे कल्पनात्मक विस्तृति लेने लगती है और कवि सामर्थ्यानुसार एक समुचित सीमा तक प्रसरित होकर अपेक्षित भावोद्वेलन के उपरान्त कवि मानस को वांछित सतुष्टि प्रदान करती हुई परिसमापन का स्थिति म आ जाती है। महादेवी जी वेदना प्रधान सूक्ष्म सवेदना की भावुक गायिका हैं। उनके किसी भी प्रगीत म कल्पना विस्तृति के स्पष्ट रूपो से उपयुक्त कथन की सिद्धि सभव है। उदाहरणार्थ प्रिय साध्य गगन मेरा जीवन प्रगीत लीजिए। प्रस्तुत पंक्ति अभिव्यंजनीय विशाल भाव की मूल अनुभूति का प्रथम सूत्र-सकेत उपस्थित करती है। तदुपरान्त उसको विस्तृति देने वाली अन्य सबधित कल्पनायें उभरती हैं—

यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग,
छाया-सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन।

इन परवर्ती पंक्तियो मे साध्यकालीन आकाश के अनेक सघटनात्मक दृश्य अनुषगी कल्पनाओ के रूप मे कवयित्री के अपने जीवन के साध्य-गगन की मान्यता को पुष्ट करते हैं। इसी प्रकार प्रथम अनुभूत्यात्मक मधुर मधुर दीपक के जलने की सार्थकता को सिद्ध करने वाली कल्पनात्मक प्रसिद्ध पंक्तियो को लिया जा सकता है। उस गीत के सभी चरण दीपक के चतुर्दिक अपनी कोमल कल्पनाओं का समाहार करते हुए मूल अनुभूति की पुष्टि एव गीत को पूर्णता प्रदान करते हैं। इस प्रकार काव्य सृष्टि म मूल अनुभूति के साथ साथ कल्पना-व्यापार का विशेष योग होता है। महादेवी जी के प्रगीतों मे प्राय अनुभूति का एक दुखात्मक स्वरूप ही प्रमुख है। चाहे वह किसी भी प्रतीकात्मक स्थिति मे प्रकट हुआ हो, किन्तु उनका कल्पना-व्यापार इतना विशद विरल और बहुल है, इतना सूक्ष्म स्पर्शी, मर्मस्पर्शी एव अनुभूति के अनुकूल है कि वह उनकी एक स्थायी काव्यात्मक वेदना-सृष्टि को प्रचुर प्रगीतो मे चटुल नवरगो म रंजित करने मे सफल हुआ है। प्रत्येक प्रगीत झरते वेदना वारिदो के अचल म नव इन्द्रधनुष सा खिल गया है—

नव कुन्द-कुसुम-से मेघ-पुंज, बन गये इन्द्रधनुषी वितान।
दे मृदु कलियों की चटक ताल, हिम बिन्दु नचाती तरल प्राण।
धो स्वर्ण प्रात मे तिमिर गात, दुहराते अलि निशि मूक तान॥

कालिदास का यह कथन 'क्षण क्षण यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयतायाः' केवल प्राकृतिक पदार्थों मे निहित रमणीयता का ही विवेचन नही करता, प्रत्युत कवि हृदय की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए भी वह उतना ही सत्य है और जिसका परिचय कवि की नूतन भाव-सर्गवत कल्पनात्मक व्यापकता एव विशदता से मिलता है। बहुत कुछ सरस कल्पना-चयन के कारण ही काव्य रसिकों के लिए 'ज्यो ज्यो निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यो त्यों खरी निखर सी निकाई' की उक्ति चरितार्थ होती हुई प्रतीत होती है—

मधुरिमा के मधु के अवतार,
सुधा से सुषमा से छविमान,
आसुओं मे सहम अभिराम,
तारकों से हे मूक अजान,
सीख कर मुस्काने की बान
कहाँ से आये हो छविमान ?

आचार्यों ने नवनवो मेषशालिनी प्रज्ञा को प्रतिभा कहा है जो काव्य के क्षेत्र म कवि का विशेष प्रकृत गुण सिद्ध होती है। मौलिक कल्पनाओ की सूक्ष्म एव उनकी सरस व्यजना कवि की प्रशस्त सजनात्मक प्रतिभा की द्योतक होती है। इस दृष्टि से महादेवी जी के काव्य म कल्पना चयन सवथा सभी प्रकार से श्लाघ्य है।

कल्पना जहाँ एक आर, कालरिज के अनुसार, पदार्थों के आन्तर सम्बन्धों की स्थापना द्वारा नवनिर्माण का काय सम्पन्न करती है वहाँ उसका सम्बन्ध मूल अनुभूति और उसके सहृदय श्लाघ्य अभिव्यक्तिक पक्ष स भी होता है। कल्पना भाव-सौन्दर्य को अबातर सम्बन्धो का सत्याधार दते हुए विस्तत, अलकृत एव सहज गरिमा-मडित करती है और भाषा के लिए सहज सरस शब्द चयन, प्रसन्न प्रवाह का पथ प्रशस्त करती है। अनूठी कल्पना अनूठी काव्य भाषा का अपेक्षित शृगार करती है तभी कविता मनोज्ञ होती है। कृति का भाव सौन्दय भली से रग, गध मधु और पराग पूरित प्रफुल्ल मुकुल बन जाता है तथा कल्पना सौन्दय और सहज समलकृत भाषा दासी के सौन्दय से सहृदय सवदा जगमगाती सपूर्णता प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ—

क्यों प्रम्, न हो शृगार मुझे ?
मधु हृदय तुम्हारा भ्रमर छन्द,
स्पदन म स्वर-लहरी अमद
हर स्वप्न स्नेह का चिर निबन्ध
हर पुलक तुम्हारा भाव बध
निज साँस तुम्हारी रचना का

लगती अखंड विस्तार मुझे
हर पल रस का ससार मुझे ।

उपयुक्त उद्धरण म क्या अश्रु न हो शृगार मुझे' कवि हृदय की अनुभूति का प्रस्थान बिन्दु है, तत्पश्चात कल्पना-चयन सम्बन्धाधिकार स भाव की विस्तत व्याख्या करता है । प्रत्यक पक्ति की प्रत्यक नवीन कल्पना जहाँ कवयित्री को अज्ञात कलाकार प्रियतम को प्रकृत कलाओ म आत्मलीन एकाकार सिद्ध करती है अथवा कवयित्री प्रत्यक निसगजात भौतिक घटना से अभिमत स्वय का उसी के अनुरूप ढलना मानती है, एकात्मकता म विषमता का स्वप्न भूल जाती है वही प्रत्येक कल्पनात्मक पक्ति का सानुकूल अभिव्यक्तिक पक्ष भी उतना ही सफल और मनोज्ञ बन पडा है । सुबोध लघु शब्दावली, ध्वनि गुज लयात्मक छद बद्धता और मुक्त सगीत का अद्भुत समाँ बाँधते हैं । अभिव्यक्ति अत्यन्त ही तरल सरस सबल और पूण है । इस प्रकार कल्पना की रगीनी कवि मानस मे सानुकूल छद-लय प्रवाह, शब्द योजना का बल देते हुए अपनी अपेक्षित शक्ति, नियोग और प्रभविष्णुता तथा मूल भाव के साथ अनुभूत्यात्मक सबन्ध की सुरक्षा करती है । कल्पना और अभिव्यक्ति का यह सम्बन्ध विचारणीय है ।

किरणो की रेखाओ के माध्यम स अपन व्यापक हृदय के प्रतीक अनन्त आकाश पटल पर समतल रगीन बादलो तथा अन्य रूपो की उर्मिल भगिमाओ के द्वारा कवयित्री का वह अनन्त प्रियतम उसके सामने न जाने कितन कलात्मक मोहक दृश्य प्रस्तुत करता रहता है जिनमें डूब कर वह स्वय एकाकार हो जाया करती है । यह एक व्यापक हार्दिकतापूर्ण कल्पना है जो प्रियतम के विशिष्ट मोहक रूप और कला-सामथ्य का परिचय दती है। रूपवान प्रियतम की मोहक कलाकारिता कितनी मादक हो सकती है— यह केवल सहृदया के अनुभव का ही विषय है किन्तु मिलन के अभाव म वह आसुओ का शृगार करने म ही सुख मानती हैं । यहा मूल भाव-सकेत की पक्ति को साथक एव सबल बनाने वाली सजक कल्पना की विस्मृति ही है । इस प्रकार दोनो का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है । जहाँ कल्पना की अभिव्यक्ति भाव एव शिल्प को समृद्धि प्रदान करती है वही वह कवयित्री की उत्कृष्ट सवेदनशीलता का स्पष्ट निदशन भी प्रस्तुत कर रही है ।

काव्य के कल्पना वभव को श्री समृद्धि प्रदान करन वाला काव्य का एक अतिरिक्त गुण उसका दशन होता है जो काव्य के भावातिरेक क सहज निष्पन्न रूप म कवि एव काव्य का एक विशिष्ट अग बन कर कृति को विशिष्ट दिव्यालोक स मडित कर दता है । काव्य के मनोवज्ञानिक पक्ष मे दाशनिकता उसकी चरम सीमा है साथ ही कवि और सहृदय के परम सतोष का विषय भी । कवि द्वारा उस परम सत्ता की अभिव्यक्ति और पाठक द्वारा उस अनुपम तथ्य की उपलब्धि दानो के हृदयो को परम

परितोषकारिणी होती है। जहाँ रचयिता रचना के उक्त अश के पुनर्वाचन के अवसर पर प्रसन्न हो उठता है, वहाँ सहृदय पाठक उस सूत्रवत अपनी स्मृति का अग बनाकर प्राय गुनगुनाता रहता है। कल्पना की चरम व्यजना के उपरान्त ही हार्दिक सवेदन के चरम चतन्य से उसका सूक्तिवत जन्म होता है, परन्तु यह काव्य दशन सामान्य दशन से भिन्न होता है।

सामान्य दशन जीवन और जगत के सम्बन्ध मे शुष्क बौद्धिकताजन्य तात्त्विक विश्लेषण और दीघ समय सापेक्ष गूढ़ तार्किक चिन्तन का प्रतिफलन होता है। मनुष्य बुद्धि प्रधान प्राणी है। अपने बुद्धि बल से वह युक्तिपूवक अपना तथा ससार का यथाथ ज्ञान प्राप्त कर सकता है। वही दशन कहलाता है। मनुष्य क्या है, उसके जीवन का लक्ष्य क्या है, यह ससार क्या है, क्या इसका कोई सृष्टा भी है अथवा नही मानव जीवन का जागतिक सम्बन्ध किस प्रकार का होना चाहिए आदि ऐसे अनेक तात्त्विक चिन्तन सापेक्ष प्रश्न हैं जिन्हे मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही दाशनिक मनीषियों ने सुलझाने की चेष्टा की है और साम्प्रतिक जगत म भी यह श्रम अनवरत है। इसी को सम्यक दशन या दशन कहा जाता है—

सम्यक दशन सम्पन्न कमभिन्न निबद्धयते।
दशनेव विहीनस्तु ससार प्रतिपद्यते? (मनुसहिता, ६/७४)

सम्यक दशन अपने विशुद्ध स्वाभाविक रूप मे जीवन, जगत, सष्टि और सष्टि कर्ता स सम्बन्धित अनेक विस्मय समाधानकारी प्रश्नो का हल खोजते हुए तकपूण, शुष्क, बौद्धिक अथवा विचारात्मक चितन होता है जबकि काव्य दशन इस परिभाषा मे नही ब धा जा सकता। काव्य दशन तो काव्य सष्टि की चरम रागात्मकता मे एक निष्कर्षात्मक, तात्त्विक सरस, सूक्ष्म उदगार होता है जो कल्पना के अतिरेक मे कवि प्रतिभा से तात्कालिक रूप म अभिव्यक्ति पा जाता है और सूक्ति के रूप मे प्रमाता का हृदयहार बन जाता है। वह किसी परम्परागत सिद्धान्तजन्य नही, वरन कवि की भाव-सवेदना की चरम रागात्मक चेतना स उदगीरित भावसत्य होता है जो रससिक्त काव्यात्मकता स युक्त होकर पाठकों के लिए एक अत्यन्त ही सरस, प्रभावशाली उपलब्धि सिद्ध होता है। काव्य की उदात्त सिद्धि म भाव और भाषा की गरिमा से उसका महत्त्व अधिक होता है और प्रत्येक उदात्त काव्य रचना मे कवि की प्रातिभ उच्चता वहाँ तक किसी न किसी रूप मे पहुचती अवश्य है। उसे ही हम यथाथ, परम्परा विरहित, पूण स्वच्छन्द काव्य दशन कह सकेंगे। यहाँ दो एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(अ) कभी तो अब तक पावन प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार।
हुई मुझको ही मदिरा आज,
हाय, क्या गगाजल की धार— —,पंत)

(आ) नहीं समय का पहिया रुकता, इंतजार की घड़ियों पर।
बिछुड़ी हुईं भुजायें मिलतीं मिलते बिछुड़े हुए अधर।

× × ×

निशा मिलन मे किसने सोचा बिछुड़न बेला आयेगी।
निममता के साथ विदा का परवाना दिखलायेगी।

× × ×

जीवन के ताने बाने मे क्या नवीनता मिलती है।
नई कली सौ बरस पुरानी कलियों-सी ही खिलती है। —(पुश्किन)
(अनुवादक—बच्चन)

इस प्रकार के स्वच्छन्द दार्शनिक काव्यस्फुरण का कोई अन्त नहीं और न उनका किसी प्रकार का सद्धान्तिक अथवा वैषयिक वर्गीकरण ही सम्भव है। काव्य सृष्टि की अनेक मानसिक परिस्थितियों की चरम भावुकतापूर्ण स्थितियों मे कभी भी और कहीं भी उस प्रकार का जीवन जगत, परोक्ष सत्ता आदि से सम्बंधित किसी भी अंतर्बाह्य सत्य का उदघाटन सभव हो सकता है। यदि हम इस दृष्टि से महादेवी जी के काव्य पर विचार करें तो कवयित्री का लगभग प्रत्येक गीत हमें वसी कोई न कोई दार्शनिक सूक्ति दे देता है—

(क) कितनी बीतीं पतझारें, कितने मधु के दिन आये
मेरी मधुमय पीड़ा को पर कोई ढूँढ न पाये।

(ख) जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार

(ग) क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना।

(घ) विकसते मुरझाने को फूल, उदय होता छिपने को चद
शून्य होने को भरते मेघ, दीप जलता होने को मद,
यहाँ किसका अनन्त यौवन ? अरे अस्थिर छोटे जीवन !

(ङ) छिपा है जननी का अस्तित्व, रुदन मे शिशु के अर्थ विहीन,
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान, चित्र की जड़ता मे ही लीन !

इन उद्धरणों म कवयित्री के जीवन मे उत्थान पतन के प्रतीक कितने ही दिन आये और अतीत बन गये किंतु उसकी गहन मर्म-पीड़ा को परखन म असमर्थ रहे, प्रगाढ होते होते प्राथमिक प्यार एक जबदस्त बंधन बन जाता है हृदय म कठोर पीड़ा सहने के उपरान्त ही किसी का गलहार होना सभव है – कवयित्री की यह अभिव्यक्तियाँ विश्वजनीन मानव हृदय के चरम सत्य की उद्घाटक हैं। इनम भाव सत्य की अनुपम

परितोषकारिणी होती है। जहाँ रचयिता रचना क उक्त अश के पुनर्वाचन के अवसर पर प्रसन्न हो उठता है, वहाँ सहृदय पाठक उसे सूक्तवत अपनी स्मृति का अग बनाकर प्राय गुनगुनाता रहता है। कल्पना की चरम व्यजना के उपरान्त ही हार्दिक सवेदन के चरम चतन्य स उसका सूक्तिवत जन्म होता है, परन्तु यह काव्य दशन सामान्य दशन से भिन्न होता है।

सामान्य दशन जीवन और जगत के सम्बन्ध मे शुष्क बौद्धिकताजन्य तात्त्विक विश्लेषण और दीघ समय सापेक्ष गूढ तार्किक चिन्तन का प्रतिफलन होता है। मनुष्य बुद्धि प्रधान प्राणी है। अपने बुद्धि बल से वह युक्तिपूवक अपना तथा ससार का यथाथ ज्ञान प्राप्त कर सकता है। वही दशन कहलाता है। मनुष्य क्या है, उसके जीवन का लक्ष्य क्या है, यह ससार क्या है, क्या इसका कोई सृष्टा भी है अथवा नहीं मानव जीवन का जागतिक सम्बन्ध किस प्रकार का होना चाहिए आदि ऐसे अनेक तात्त्विक चिन्तन सापेक्ष प्रश्न हैं जिन्हें मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही दाशनिक मनीषियो ने सुलझाने की चेष्टा की है और साम्प्रतिक जगत म भी यह क्रम अनवरत है। इसी को सम्यक दशन या दशन कहा जाता है—

सम्यक दशन सम्पन्न कमभिन्न निबद्धयते।
दशनेव विहीनस्तु ससार प्रतिपदयते? (मनुसहिता, ६/७४)

सम्यक दशन अपने विशुद्ध स्वाभाविक रूप में जीवन, जगत, सृष्टि और सृष्टि कता से सम्बन्धित अनेक विस्मय समाधानकारी प्रश्नो का हल खोजते हुए तकपूण, शुष्क, *बौद्धिक अथवा विचारात्मक चिंतन होता है जबकि काव्य दशन इस परिभाषा म नहीं* बँधा जा सकता। काव्य दशन तो काव्य सष्टि की चरम रागात्मकता मे एक निष्कर्षात्मक, तात्त्विक सरस, सूक्ष्म उदगार होता है जो कल्पना के अतिरेक मे कवि-प्रतिभा से तात्कालिक रूप मे अभिव्यक्ति पा जाता है और सूक्ति के रूप म प्रमाता का हृदयहार बन जाता है। वह किसी परम्परागत सिद्धान्तजन्य नहीं वरन कवि की भाव-सवेदना की चरम रागात्मक चेतना से उदगीरित्त भावसत्य होता है जो रससिक्त काव्यात्मकता से युक्त होकर पाठकों के लिए एक अत्यन्त ही सरस प्रभावशाली उपलब्धि सिद्ध होता है। काव्य की उदात्त सिद्धि म भाव और भाषा की गरिमा से उसका महत्त्व अधिक होता है और प्रत्येक उदात्त काव्य रचना म कवि की प्रातिभ उच्चता वहाँ तक किसी न किसी रूप मे पहुचती अवश्य है। उसे ही हम यथाथ परम्परा विरहित, पूण स्वच्छन्द काव्य दशन कह सकेंगे। यहाँ दो एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(अ) कभी तो अब तक पावन प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार।
हुई मुझको ही मदिरा आज,
हाय, क्या गगाजल की धार— —,पत)

एकता मे अपनी अनजान,
समाया था सारा ससार ।

× ×

उसी का मधु से सिक्त पराग,
और पहला वह सौरभ भार,
तुम्हारे छूते ही चुपचाप,
हो गया था जग मे साकार ।

ऋग्वेद के इस सूक्त के अनुसार सष्ट जगत के पूर्व हिरण्यगभ की स्थिति थी ।[1] वह एक ओर प्रथम था और वही उत्पन्न जगत का रक्षक, पालक, पति था । उसी स प्रकृति, लोक समूह सूय, पृथ्वी आदि व्यक्त हुए । कवयित्री का भावबोध भी उसी के अनुरूप व्यक्त हुआ है जिसमे ठेठ दशन की शुष्कता का लेश भी नहीं है । यहा दशन का तार्किक सत्य कवि हृदय की रस स्निग्ध भावुकता की प्रसूति बन गया है जिसम सहज तन्मयकारी मोहकता है । यथातथ स्थूल दशन काव्य मे तभी खप सकता है जबकि वह अपनी वैयक्तिक विभाजक रेखाओ स परे काव्य की कल्पना, सहज अलकृत काव्य भाषा और सगीत की स्वाभाविक दशाओ मे डूबकर नूतन प्राण रस से आप्लावित हो जाये । इस सम्बन्ध म महादेवी जी का भावुक सुकोमल नारी हृदय किसी भी छाया वादी कवि म अधिक सफल है । उदाहरणाथ मुण्डकोपनिषद् के निम्नलिखित श्लोक को लीजिए—

यथोणनाभि सजते गृह्णते च यथा पथिव्यामोषधय सम्भवन्ति ।
यथा सत पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतही विश्वरम ।

(मु०उ०, प्रथम खड, ७)

और इस आधार पर निराला जी की रचित इन पक्तियो को देखिए—

"बहु सुमन, बहुरग, निर्मित एक सुदर हार,
एक ही कर से गुँथा उर एक शोभा भार ।' (गीतिका)

इनसे महादेवी जी की इन पक्तियो की तुलना कीजिए तो अन्तर स्वय स्पष्ट हो जायेगा—

स्वणलता-सी कब सुकुमार,
हुई उसम इच्छा साकार ?
उगल जिसने तिनरगे तार
बुन लिया अपना ही ससार !

---

[1] (क) हिरण्यगभ समवतताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत् । ऋग्वेद १०।१२
(ख) अतोऽभूत उदितं रजोभ्यो यथा पृथिवी अप्रथताम । ऋग्वेद १०।१४।६।७

उपलब्धि है और इनमें व्यक्त दार्शनिकता कोरी कल्पनाओं का विषय नहीं है। इसी प्रकार अगले उद्धरण में यौवन और जीवन की क्षणभंगुरता, कृति में कृतिकार के व्यक्तित्व की निहिति (सृष्टि में सृष्टिकर्त्ता की व्याप्ति) आदि की मौलिक उद्भावनाएँ परम्परा पोषित दर्शन की नीरस अभिव्यक्तियों से नितान्त भिन्न हैं।

इसमें संदेह नहीं कि सैद्धान्तिक परम्परा भूमि पर प्रतिष्ठित स्थूल दर्शन को भी काव्य में आश्रय मिलता है किन्तु यह कवि का प्रातिभ शक्ति का विषय है कि वह उसका पद्यात्मक निबंधन मात्र करने में समर्थ हो अथवा उसे सहृदयता के मधुरस से सिक्त कर उसकी शुष्कता में आर्द्रता और हरीतिमा का सावन लहरा दे। यहाँ दोनों ही प्रकार के उदाहरण द्रष्टव्य होंगे। 'पंत' जी के काव्य संकलन 'कला और बूढ़ा चाँद' की ये पंक्तियाँ लीजिए—

मुझे अपना धारोष्ण प्रकाश
अनामय अमृत पिलाओ।
अपनी शक्ति
अपना जव दो
मुझे उस पर खड़ी मानवता के लिए
सत्य का बोहित्य
खेना है   —पंत (धेनुए)

पंत जी की उपर्युक्त 'धेनुए' शीर्षक रचना एक वैदिक छंद का अनुवाद है जिसमें सूर्य की किरणों की 'धेनुओं' के रूप में कल्पना की गई है। एक उदात्त कल्पना पर प्रतिष्ठित होने के कारण यह यथार्थ अनुवाद पठनीय है, अन्यथा इसमें कवि हृदय की व्यक्तिगत मधुरता के मिश्रण का सर्वथा अभाव है अतएव यह रचना शुष्क है जब कि पंत जी के अन्य ऐसे भावानुवाद अत्यन्त ही सफल हैं। उदाहरणार्थ मुण्डकोपनिषद के प्रसिद्ध सूत्र—'ब्रह्मैवेन्ममृत' (२।२।११) का भावानुवाद पंत ने इस प्रकार किया है—

चूम सुख दुख के पुलिन अपार
छलकती ज्ञानामृत की धार।"   'पल्लव'

किन्तु महादेवी जी की रचनाओं के सम्बन्ध में किसी परम्परागत दर्शन के अनुवाद अथवा भावानुवाद का प्रश्न उठाना ही व्यर्थ होगा। उन्होंने छायानुवाद अवश्य किया है जो उनकी सहज भावुकता की तरंगों में नहाकर माधुर्य का स्वरूप ही हो गया है। उदाहरणार्थ 'ऋग्वेद' के हिरण्यगर्भ सूक्त के आधार पर इन पंक्तियों की अभिव्यंजना द्रष्टव्य है—

छिपाये थी कुहरे से नींद,
काल की सीमा का विस्तार,

नागरिक शिष्ट समाज के समान कोई उन्हें पचास रुपया फीस देकर गलेबाजी के लिए नहीं बुलाता था इसी से अर्थ की दृष्टि से कवि ठाकुरदीन सुदामा ही रह गए। किसी ने मैली पिछौरी के खूट में थोडा सातिल-गुड बाध कर उदारता प्रकट की। किसी ने पथरौटी मे सत्तू पर नमक के साथ हरी मिर्च रख कर आतिथ्य सत्कार किया। किसी ने सुलगते हुए कण्डो पर दो भौंरिया सेंकने का अनुरोध करके काव्य-ममज्ञता का परिचय दिया।"

महादेवी जी की एक पात्री गूगी होने के कारण 'गुगिया' नाम पा गई थी। इसी प्रसग मे उन्होंने ग्रामा म 'यथा नाम तथा गुण' सूक्ति की सार्थकता का चित्रण 'स्मृति की रेखायें' म इस प्रकार किया है —

'जो 'लबार' नाम से पुकारा जाता है वह इस नाम के उपयुक्त विशेषण से शून्य नहीं हो सकता। जो 'गुजरिया' कही जाती है वह वेश भूषा की रगीनी मे गुडिया से कम नहीं होती। जो 'कोयली' की सज्ञा पाती है उसका श्यामागिनी होने के साथ-साथ मधुरभाषिणी होना आवश्यक है। जो 'नत्थू' कह कर सम्बोधित किया जाता है उसे जन्म लेते ही नाक में बाली पहिननी पडी होगी। जो घूरे का उपनाम पा चुका है उसने बचपन मे कठोर उपेक्षा का अनुभव किया होगा।"

लोक-विश्वासो पर भी उनकी दृष्टि गई है। गुगिया के जन्म लेने पर 'जच्चा बच्चा के स्वास्थ्य को नजर से बचाने के लिए न जाने कितने टोने-टोटके किये गए।"

और गूगी सिद्ध होने पर—"जन्तर मन्तर का सहारा लिया गया झाड-फूक का उपचार हुआ। मानता, पूजा, अनुष्ठान आदि की शक्ति परीक्षा भी हुई।'

उनके ग्रामीण स्त्रियों की वेश भूषा के चित्रण भी बिल्कुल स्वाभाविक जान पडते हैं। "किसी की मोम लगी पाटियों के बीच एक अगुल चौडी सिंदूर रेखा अस्त होते सूर्य की किरणों मे चमकती रहती है और किसी के कडवे तेल से भी अपरिचित रूखी जटा। किसी की सावली मगदार चूडियों के नग रह रह कर हीरे से किसी के दुबल कलाई पहुँचे पर लाल की पीली मली चूडियाँ काले पत्थर पर चन्दन की मोटी लकीरें। कोई अपने गिलट के कडे युक्त हाथ घडे की ओट में और कोई चांदी के पछेली-ककना की झनकार के साथ ही बात करती है। किसी ने कान में लाख की पसे वाली तरकी किसी की ढारें लम्बी जजीर से किसी के गुदना गुदे गेंहुए परों में और किसी की फली उगलियां और एडियों के साथ मिली हुई स्याही रंगे और कांसे के कडों को लोहे की सांप की टूटी बेडियां बना देनी हैं।

डॉ० श्यामसुन्दर बादल'

महादेवी के काव्य-शिल्प में लोक-तत्त्व

रहस्यवादी कवियो मे सुश्री महादेवी वर्मा का एक विशिष्ट स्थान है। वे गद्य और पद्य दोनो पर समान अधिकार रखती हैं। उन्होने अपने रहस्यवाद के सम्बन्ध मे आधुनिक कवि (१) की भूमिका के रूप मे लिखे गए 'अपने दृष्टिकोण से' शीर्षक लेख मे लिखा है "इतना निश्चित है कि इस वस्तुवाद प्रधान युग मे भी वह अनादृत नहीं हुआ। चाहे इसका कारण मनुष्य की रहस्योन्मुखी प्रवृत्ति हो और चाहे उसकी लौकिक रूपको मे अभिव्यक्ति।"

लौकिक रूपको मे सुन्दरतम अभिव्यक्ति उसी की रचनाओ मे स्थान पायेगी जिसने लोक का प्रत्यक्ष दर्शन किया हो। महाभारत मे व्यास जी ने एक स्थल पर लिखा है— 'प्रत्यक्षदर्शी लोकाना सर्वदर्शी भवेन्नर'। प्रत्यक्ष दर्शन ही सर्वदर्शन की कुंजी है। महादेवी जी इसी कारण सफल रहस्यवादिनी कवियत्री सिद्ध हो सकीं क्योंकि उन्होने लोक जीवन को निकट से देखा है। उनकी गद्य रचनाएँ 'अतीत के चलचित्र' 'शृंखला की कड़ियाँ' तथा 'स्मृति की रेखाएं' उक्त कथन की स्पष्ट प्रमाण हैं। उनकी ये रचनाए काव्यगुणो से भी पूर्ण हैं। रसगगाधर की काव्य परिभाषा 'रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द काव्यम्' तथा साहित्यदर्पण की 'वाक्यम रसात्मक काव्यम्' की कसौटी पर इन्हे कसा जा सकता है। मैथ्यू आर्नोल्ड का कथन है 'कविता जीवन की समीक्षा है।' इस दृष्टि से भी देखा जाए तो प्राय उक्त गद्यात्मक कृतियो मे ऐसा एक भी संस्मरण न होगा जिसमे सुमधुर आलंकारिक भाषा मे लोकजीवन की झाँकी प्रस्तुत न की गई हो। अत काव्य गुणो से पूर्ण गद्य को हम काव्य से पृथक नही कर सकते। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' ऐसी ही रचनाएँ हैं जिनके कारण आचार्यों द्वारा 'गद्य कवीनाम निकषा वदन्ति' की घोषणा की गई।

अत सर्वप्रथम हम क्यों महादेवी जी के गद्य में ही लोक तत्त्वों का निरीक्षण क्यो न करलें? एक लोक-कवि की दुरवस्था का चित्रण करते हुए उन्होंने लोक आतिथ्य के तौर-तरीका का वर्णन तथा आधुनिक कवियों की गलेबाजी पर जो व्यंग किया है उसे 'स्मृति की रेखायें' की निम्न पंक्तियों मे देखिए

नागरिक शिष्ट समाज के समान कोई उन्हें पचास रुपया फीस देकर गलेबाजी के लिए नहीं बुलाता था इसी से अर्थ की दृष्टि से कवि ठाकुरदीन सुदामा ही रह गए। किसी ने मली पिछौरी के खूट में थोडा सातिल-गुड बाध कर उदारता प्रकट की। किसी ने पयरौटी मे सत्तू पर नमक के साथ हरी मिच रख कर आतिथ्य सत्कार किया। किसी ने सुलगते हुए कण्डा पर दो भौंरियाँ सेंकने का अनुरोध करके काव्य-ममज्ञता का परिचय दिया।"

महादेवा जी की एक पात्री गूगी होन के कारण 'गूगिया' नाम पा गई थी। इसी प्रसग मे उन्होने ग्रामा म 'यथा नाम तथा गुण' सूक्ति की साथकता का चित्रण 'स्मृति की रेखायें' मे इस प्रकार किया है —

'जो 'लबार' नाम से पुकारा जाता है वह इस नाम के उपयुक्त विशेषण से शून्य नहीं हो सकता। जो 'गुजरिया' कही जाती है वह वेश भूषा की रगीनी मे गुडिया से कम नहीं होती। जो 'कोयली' की सज्ञा पाती है उसका श्यामागिनी होने के साथ-साथ मधुरभाषिणी होना आवश्यक है। जो 'नत्थू' कह कर सम्बोधित किया जाता है उसे जन्म लेते ही नाक मे बाली पहिननी पडी होगी। जो 'घूरे' का उपनाम पा चुका है उसने बचपन में कठोर उपेक्षा का अनुभव किया होगा।"

लोक-विश्वासो पर भी उनकी दृष्टि गई है। गुगिया के जन्म लेने पर "जच्चा बच्चा के स्वास्थय को नजर से बचाने के लिए न जाने कितने टोने-टोटके किये गए।"

और गूगी सिद्ध होने पर—"जन्तर मन्तर का सहारा लिया गया भाड फूक का उपचार हुआ। मानता पूजा अनुष्ठान आदि की शक्ति परीक्षा भी हुई।'

उनके ग्रामीण स्त्रियो की वेश भूषा के चित्रण भी बिल्कुल स्वाभाविक जान पडते हैं। "किसी की मोम लगी पाटियों के बीच एक अगुल चौडी सिन्दूर रेखा अस्त होते सूय की किरणा मे चमकती रहती है और किसी के कडवे तेल से भी अपरिचित रूखी जटा। किसी की सावली नगदार चूडियों के नग रह रह कर हीरे से किसी के दुबल काले पहुँचे पर लाख की पीली मली चूडियाँ काले पत्थर पर चन्दन की मोटी लकीरें। कोई अपने गिलट के कडे युक्त हाथ घडे की ओट मे और कोई चाँदी के पछली-ककना की झनकार के साथ ही बात करती है। किसी ने कान मे लाख की पसे वाली तरकी किसी की ढारें लम्बी जजीर से किसी के गुदना गुदे गेंहुए परा म और किसी की फली उगलियो और एडियों के साथ मिली हुई स्याही राग और कांसे के कडों को लोहे की साफ की हुई बेडियाँ बना देती हैं।'

डॉ० श्यामसुन्दर बादल'

१६

महादेवी के काव्य-शिल्प में लोक-तत्त्व

रहस्यवादी कवियों में सुश्री महादेवी वर्मा का एक विशिष्ट स्थान है। वे गद्य और पद्य दोनों पर समान अधिकार रखती हैं। उन्होंने अपने रहस्यवाद के सम्बन्ध में आधुनिक कवि (१) की भूमिका के रूप में लिखे गए 'अपने दृष्टिकोण से' शीर्षक लेख में लिखा है 'इतना निश्चित है कि इस वस्तुवाद प्रधान युग में भी वह अनादृत नहीं हुआ। चाहे इसका कारण मनुष्य की रहस्योन्मुखी प्रवृत्ति हो और चाहे उसकी लौकिक रूपकों में अभिव्यक्ति।"

लौकिक रूपकों में सुन्दरतम अभिव्यक्ति उसी की रचनाओं में स्थान पायेगी जिसने लोक का प्रत्यक्ष दर्शन किया हो। महाभारत में व्यास जी ने एक स्थल पर लिखा है—'प्रत्यक्षदर्शी लोकाना सर्वदर्शी भवेन्नर।' प्रत्यक्ष दर्शन ही सर्वदर्शन की कुंजी है। महादेवी जी इसी कारण सफल रहस्यवादिनी कवियत्री सिद्ध हो सकीं क्योंकि उन्होंने लोक जीवन को निकट से देखा है। उनकी गद्य रचनाएँ अतीत के चलचित्र शृंखला की कड़ियाँ' तथा 'स्मृति की रेखाएं' उक्त कथन की स्पष्ट प्रमाण हैं। उनकी ये रचनाए काव्यगुणों से भी पूर्ण हैं। रसगंगाधर की काव्य परिभाषा 'रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द काव्यम्' तथा साहित्यदर्पण की 'वाक्यम रसात्मक काव्यम्' की कसौटी पर इन्हें कसा जा सकता है। मैथ्यूआर्नाल्ड का कथन है 'कविता जीवन की समीक्षा है।' इस दृष्टि से भी देखा जाए तो प्राय उक्त गद्यात्मक कृतियों में ऐसा एक भी संस्मरण न होगा जिसमें सुमधुर आलंकारिक भाषा में लोकजीवन की झांकी प्रस्तुत न की गई हो। अत काव्य गुणों से पूर्ण गद्य को हम काव्य से पृथक नहीं कर सकते। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' ऐसी ही रचनाएं हैं जिनके कारण आचार्यों द्वारा 'गद्य कवीनाम निकषा वदन्ति' की घोषणा की गई।

अत सर्वप्रथम हम यहाँ महादेवी जी के गद्य में ही लोक तत्त्वों का निरीक्षण क्यों न करलें? एक लोक-कवि की दुरवस्था का चित्रण करते हुए उन्होंने लोक आतिथ्य के तौर-तरीकों का वर्णन तथा आधुनिक कवियों की गलेबाजी पर जो व्यंग किया है उसे स्मृति की रेखायें' की निम्न पंक्तियों में देखिए

'नागरिक शिष्ट समाज के समान कोई उन्हें पचास रुपया फीस देकर गलेबाजी के लिए नहीं बुलाता या इसी से ग्रथ की दृष्टि से कवि ठाकुरदीन सुदामा ही रह गए। किसी ने मैली पिछौरी के खूट मे थोडा सातिल-गुड बाध कर उदारता प्रकट की। किसी ने पथरौटी में सत्तू पर नमक के साथ हरी मिर्च रख कर आतिथ्य सत्कार किया। किसी ने सुलगते हुए कण्डा पर दो भौरियाँ सेंकने का अनुरोध करके काव्य-ममज्ञता का परिचय दिया।"

महादेवी जी की एक पात्री गूगी होने के कारण 'गुगिया' नाम पा गई थी। इसी प्रसग मे उन्होंने ग्रामा म 'यथा नाम तथा गुण' सूक्ति की सार्थकता का चित्रण 'स्मृति की रेखायें' मे इस प्रकार किया है —

'जो 'लबार' नाम से पुकारा जाता है वह इस नाम के उपयुक्त विशेषण से शून्य नहीं हो सकता। जो 'गुजरिया' कही जाती है वह वेश भूषा की रगीनी मे गुडिया से कम नहीं होती। जो 'कोयली' की सज्ञा पाती है उसका श्यामागिनी होने के साथ-साथ मधुरभाषिणी होना आवश्यक है। जो 'नत्थू' कह कर सम्बोधित किया जाता है उसे जन्म लेते ही नाक में बाली पहिननी पडी होगी। जो घूरे का उपनाम पा चुका है उसने बचपन मे कठोर उपेक्षा का अनुभव किया होगा।"

लोक विश्वासो पर भी उनकी दृष्टि गई है। गुगिया के जन्म लेने पर 'अच्छा बच्चा के स्वास्थय को नजर से बचाने के लिए न जाने कितने टोने-टोटके किये गए।"

और गूगी सिद्ध होने पर—"जतर मतर का सहारा लिया गया, झाड-फूक का उपचार हुआ। मानता, पूजा अनुष्ठान आदि की शक्ति परीक्षा भी हुई।'

उनके ग्रामीण स्त्रियों की वेश भूषा के चित्रण भी बिल्कुल स्वाभाविक जान पडते हैं। "किसी की मोम लगी पाटियों के बीच एक अगुल चौडी सिन्दूर रेखा अस्त होते सूर्य की किरणों मे चमकती रहती है और किसी के कडवे तेल से भी अपरिचित रूखी जटा। किसी की सावली नगदार चूडियों के नग रह रह कर हीरे से किसी के दुबले काले पहुँचे पर लाख की पाली भरी चूडियाँ काले पत्थर पर चन्दन की मोटी लकीरें। कोई अपने गिलट के कडे युक्त हाथ घडे की ओट मे और कोई चाँदी के पछली-ककना की झनकार के साथ ही बात करती है। किसी ने कान में लाख की पसे वाली तरकी किसी की दारें लम्बी जजीर से किसी के गुदना गुदे गेंहुए परा मे और किसी की फली उगलियों और एडियों के साथ मिली हुई स्याही रंगे और घिसे म वडों को लोहे की साफ की हुई बढ़िया बना देती हैं।

उपर्युक्त चित्रण में जो गुरुता का उल्लेख किया गया है उसका वर्णन लोक गीतों में प्रचुरता से हुआ है। चित्रण के लिए बुन्देली में लोक कवि ईसुरी की निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं —

'गुदना सरस भौंह बिच दीनो परत चन्द्र में टौनो।
कवि ईसुरी सम जात नजर ना पट घूंघट न दीनो।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी जी का गद्य तो लोक-तत्त्वों से परिपूर्ण है ही, उनके गीतों में भी उसका अभाव नहीं है। उसे खोजने के लिए थोड़ा बुद्धि व्यायाम अवश्य करना पड़ता है। सर्वप्रथम उनके बाह्य कलेवर—भाषा को ही ले लें तो देखेंगे कि उसमें लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है तथा उनके आध्यात्मिक एवं करुण हृदय की अभिव्यक्ति लौकिक रूपकों में बड़े आकर्षक ढंग से हुई है।

कबीर, तुलसी, सूर और मीरा हिन्दी साहित्य के इतिहास के सुप्रसिद्ध लोक कवि भी हैं। इन सभी की अभिव्यंजना शैली का वह अनुसरण जहाँ स्वभावतः लोक तत्त्व के दर्शन होते हैं तो महादेवी जी में मिलता ही है, उनकी मौलिक भावाभिव्यक्तियों में भी लोक तत्त्व की कमी नहीं है। इसके निरीक्षण के लिए जो बुद्धि व्यायाम की बात कही गई है वह इस अर्थ में कि उनका गीति काव्य अपने समसामयिक छायावादी या रहस्यवादी कवियों की भाँति गहन एवं दुर्बोध है, जैसे कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है —

"इस मानव-समष्टि में जिस में सात प्रतिशत साक्षर और एक प्रतिशत से भी कम काव्य के मर्मज्ञ हैं हमारा बौद्धिक निरूपण कुण्ठित और कलात्मक सृष्टि पक्ष हीन है। शेष के पास हम अपनी प्रसाधित कलात्मकता और बौद्धिक ऐश्वर्य छोड़ कर *व्यक्तिमात्र होकर ही पहुंच सकते है। बाहर के संघर्ष और संघर्ष से व्यक्ति मेरे* जीवन को जिन क्षणों में विश्राम मिलता है उन्हीं को कलात्मक कलेवर में स्थिर कर मैं समय समय पर उनके पास पहुँचाती रहती हूं जिनके निकट उनका कुछ मूल्य है।"

स्पष्ट है कि उनका बौद्धिक निरूपण और कलात्मक सृष्टि उन संवेदनशील मनीषियों के लिए है जो महादेवी जी कि अनुभूतियों की गहराई तक पहुँच सकें। ऐसी रचनाओं में लोक तत्त्व का अन्वेषण करना व्यर्थ है फिर भी जो लोक-तत्त्व अनायास ही उनके गीतों में आ गये हैं उन्हें परखना ही होगा। उनके इन्हीं गहन भावों से अनुप्राणित गीतों में लोक प्रिय शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। उदाहरणार्थ—बौर गई, वार देती, रीते गली, आन हाट गगरी, बान चटक, पसार, सँवार, अपनाव आदि ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग मध्ययुगीन कवियों ने बहुलता से किया है। इस प्रकार महादेवी के गीतों के बाह्य कलेवर पर तो लौकिकता की छाप है ही, उनका आभ्यन्तर

भी देखा जाना चाहिए। अपनी रहस्यवादिता भावाभिव्यक्ति एव मौलिक उदभावनाओ की अभिव्यक्ति भी व लौकिक रूपकों को लेकर जिस मधुर एव आकर्षक रूप म कर सकी हैं वह बडी प्रभावोत्पादिका है।

सर्वप्रथम हम उनका प्रकृति चित्रण लें, जिसमे लोक तत्त्व छलके पडते हैं। सन्ध्या उन्हें मदिरा भरा कलश लिए आती हुई कोई लोकनायिका जान पडती है और वे इसी रूप म उस चित्रित कर देती हैं—

"सज केसर पट तारक बेंदी,
दृग अजन मृदु पद मे मेहदी,
आती भर मदिरा से गगरी,
सन्ध्या अनुराग सुहाग भरी।"

काव्य शास्त्र के अन्तगत दोषो के वणन के प्रकरण मे एक ग्राम्य दोष का भी उल्लेख किया गया है। जो साहित्यकार इस दोष की छाया से भी बचने के प्रयत्न में रहे वे अपनी रचनाओ मे लौकिकता न ला सके। महादेवी जी ने ऐसा प्रयास कम किया है, तभी उनका नायक अपनी प्रेमिका से प्रेम का मूल्य पूछ बठता है जो सामान्य लोक के व्यवहार की बात है न कि विदग्ध समाज की—

कली से कहता था मधुमास
बता दो मधु मदिरा का मोल।'

पवन के रूप म वे मायावी एव कृतघ्न ससार के प्रति कहती हैं—

"देकर सौरभ दान पवन से,
कहते जब मुरझाए फूल।
जिस के पथ मे बिछ वही—
क्यों भरता इन आंखो मे धूल ?"

आँखो में धूल भरना' धोखा देने के अथ मे एक लोक प्रचलित मुहावरा है। अपनी करुण दशा का वे नीर भरी बदली का रूपक देकर चित्रण करती हैं—

मैं नीर भरी दुख की बदली।'

सूर की गोपियाँ कहती हैं—

'निस दिन बरसत नन हमारे।
सदा रहत पावस रितु हम पर जब ते स्याम सिधारे।'

आँखों से सावन भादो की बरसा का वणन निश्चय ही अतिशयोक्तिपूर्ण है और महादेवी जी के कथन मे अपेक्षाकृत स्वाभाविकता है। नीर भरी बदली के वर्णन म जो

विरलता देखी जाती है वहीं नेत्रों से निस्सरित आँसुओं में भी। यह भी कह सकते हैं कि एक ओर ज्ञानी का पथ नीर भरी बदली का भी बरसने नहीं देता, दूसरी ओर भक्त की भावुकता वर्षा की झड़ी लगाए रहती है। ज्ञानी और भक्त का अन्तर स्पष्ट है। भक्त ही तो आगे बढ़कर ज्ञान की भूमिका में उतरता है। इस प्रकार महादेवी जी का ज्ञान किसी वेदान्ति की उद्भावना नहीं वह तो भक्तप्रवर कबीर का ही ज्ञान है। पाश्चात्य रंग में रंगे हुए राष्ट्र पर जब ये भौतिकवाद का ग्रीष्मातप छाया हुआ देखती हैं तो नीर भरी बदली बन कर आ जाती हैं पर जब वातावरण अपने अनुकूल नहीं पातीं तो चकित हुई वह उठती हैं—

"मधुमय कोमल कहाँ तू—
आ गई परदेशिनी री ?

कबीर का सर्वव्यापी अनन्त और असीम ब्रह्म ही उनका आराध्य है और उन्हीं के 'इस मन्दिर महँ कौन बसाई, ताको अन्त न कोऊ पाई' स्वर में स्वर मिलाकर वे पुकार उठती हैं—

"क्या पूजा क्या अर्चन रे।
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।'

कबीर सिद्ध थे, वे अभी तक साधिका हैं। अतः द्वैत की भावना भी उनका पल्ला नहीं छोड़ पाती—

' जब असीम से हो जाएगा, मेरी लघु सीमा का मेल।
देखोगे तुम देव! अमरता खेलेगी मिटने का खेल।"

जब कि कबीर अपने द्वैत का घड़ा फोड़ चुके हैं—

"जल में कुम्भ कुम्भ में जल है भीतर बाहर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तत कथ्यौ गियानी।"

इस करुणामयी साधिका ने अपने आराध्य के चरणों की पूजा अश्रु अर्घ्य चढ़ा कर की है—

' जिन चरणों की नख ज्योती ने हीरक जाल लजाए।
उन पर मैंने धुँधले से आँसू दो चार चढ़ाए।"

आराध्य के पदों में ज्योति भरना उन्होंने 'तुलसी' से सीखा है— 'श्री गुरु पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।'

महादेवी साध्य और साधिका का अन्तर कभी नहीं भूलीं। तुलसी के आराध्य दशरथनन्दन हैं तो इनके वृन्दावन वाले कृष्ण। अपनी साधना का अधिकार लेकर वे उसे ही जागने का आदेश दे रही हैं—

' शर में ले नाद मुरली में छिपा वरदान।
दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छविमान।

था रचा जिसने स्वरों में प्यार का संसार ।
गूंजती प्रतिध्वनि उसी की क्षितिज के उस पार ।
वृन्दाविपिन वाले जाग ।"

कभी-कभी अपने आराध्य की मोहक तान सुन कर वे चौंक पड़ती हैं—

'सुनाई किसने पल में आन कान में मधुमय मोहक तान ।
तरी को ले जाओ मंझधार, डूब कर ही जाओगे पार ।'

रेखांकित अंश बिहारी के इस दोहे का स्मरण दिला रहा है ।

'तन्त्री-नाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग ।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग ॥'

अन्तर इतना ही है कि बिहारी के साधक ही गहराई में डूब कर पार होते हैं, पर महादेवी अपने साथ अपने आराध्य को भी डुबाकर पार होने का संकेत करती हैं। वंशीवाले के साथ उनकी बाँसुरी और रागिनी भी जाएगी । क्योंकि वे पहले ही बता चुकी हैं— 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।"

सूर ने अपने आराध्य को हृदय में बन्दी बना लिया था तभी वे उन्हें निम्न चुनौती दे सके थे—

'हिरदै से जब जावगे, सबल बदौंगो ताय ।

महादेवी जी के आराध्य भी उनके हृदय में बन्दी बन चुके हैं—

"कौन बन्दी कर मुझे, अब बंध गया अपनी विजय में ।
कौन तुम मेरे हृदय में ।"

मीराँ की भाँति महादेवी भी अपने नैनों में नन्दलाल को ही बसाए रखना चाहती हैं और जिस प्रकार विरह-व्यथा मीराँ के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन चुकी थी, उसी प्रकार महादेवी का व्यक्तित्व भी विरह व्यथा का ही सुन्दर सृजन है । यथा—

'मैं जाण्यो नहीं प्रभु को मिलन कैसो होई री ।
आए मोरे अंगना फिर गए सजना, मैं अभागिन रही सोई री ।"
(मीराँ)

"गई वह अधरों की मुस्कान,
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर ।"

(महादेवी)

और जब उनके व्यापक विरह का साथ आँसू नहीं दे पाते—(आँखों के कोष हुए हैं, मोती बरसाकर रीते) तब संगीत उनका साथ देता ही रहता है । फलतः आँसू जाते-जाते पुनः लौट-लौट पड़ते हैं और वृष्टि की पुनः सृष्टि होने लगती है—

'अश्रु की ही हाट बन जाती करुण बरसात ।"

इस प्रकार उस विरह वेदना की मार्मिकता ही महादेवी जी की कविता का प्राण है जो लोक गीतो या ग्राम-गीतो का मूलाधार है। मध्यकालीन कवियो म भी वह प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है। इन्ही लोकप्रिय कवियो का अनुसरण करने वाली यह *साधिका भी सस्कृत-विदुषी एव रहस्यवादिनी होकर भी अपनी रचनाओ को लोक* तत्त्वो के प्रवेश से न बचा सकी। महादेवी जी वाणी और ब्रह्म दोनो के मदिर की उत्कृष्ट साधिका हैं, एक परमाराधिका हैं। उनके गीतो के बाह्य तथा आभ्यतर दोनो रूपो मे लोक-तत्त्व झांकते दिखाई पडते हैं पर गद्य म तो वे छलके से पडते हैं। इस रूप म भी वे एक अमर गायिका हैं।

वीणा गुप्ता

२०

महादेवी और छायावाद सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक विवेचन

सामान्यत सिद्धा त विवचन कवि का क्म नही होता। वह केवल अपनी अनुभूतिया का चितरा है। उसका जगत आलोचना प्रत्यालोचना की बीहडता से दूर स्वप्निल व जादुई वातावरण स युक्त होता है। पर समय की पुकार सुनकर प्रबुद्ध कवि केवल कल्पना की तूलिका व भावनाओ के रग मे ही नही उलभा रहता वरन उसका अ तमन चीत्कार कर उठना है। और फिर वह ईट का जवाब पत्थर से नहीं तो कम से-कम फूलो स ही देने को तत्पर हो जाता है। हिन्दी साहित्य मे भी छायावाद अपने साथ भीषण प्रतिक्रिया लेकर आया। साहित्य जगत की हलचलो स जगा कवि समुदाय भी तब अपनी बातें कहने के लिए व्यग्र हो उठा।

महादेवी वर्मा भी इस दृष्टि से अपवाद नहीं रही हैं। सम्भवत पन्त जी के बाद उनकी भूमिकाऐं और आमुख ही इस दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं। जिस युग म वे स्वय काव्य रचना कर रही थी वह युग हँसी मजाक स ऊपर उठकर स्वाभाविक रूप से छायावाद युग कहलाने लगा था परन्तु तब तक आलोचना प्रत्यालोचना या खण्डन मण्डन का बाजार ठण्डा नही पडा था। छायावाद के विरोध म उठती आवाजो क मध्य स्वय छायावादी कवियो की अपने बचाव म दी गई दलीलें नक्कार खाने म तूती की आवाज के समान कुछ समय के लिए अवश्य दब गई थी, परन्तु समय के साथ ही उनका महत्त्व जाना गया और बाद म छायावाद के सही मूल्याकन के लिए उनका अध्ययन किया जाने लगा। प्राय सभी छायावादी कविया ने अपनी कृतियो क आमुख म छायावाद सम्ब धी अपनी इन धारणाओ को अभिव्यक्त किया है। श्रीमती महादेवी वर्मा के ग्र था (आधुनिक कवि यामा, दीपशिखा हिमालय आदि) के परिचयात्मक पृष्ठ इस दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं क्योकि उनम छायावाद का जितना सम्यक निरूपण मिलता है उतना अन्यत्र मिलना कठिन है।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने कविता को अपरिभाष्य बताया है तथा उसकी व्याख्या या विवेचना को असम्भव। फिर भी छायावाद के नामकरण पर विचार करते हुए इस प्रकार के काव्य का रहस्यवाद या तत्युगीन प्रचलित सज्ञा 'हृदयवाद' स भिन्न एक नवीन प्रणाली का काव्य माना है। 'नीहार' के 'आमुख' म छायावाद व

रहस्यवाद का तुलनात्मक विवेचन करते हुए उन्होंने लिखा है —

'मिस्टिसिज्म (Mysticism) का यथार्थ अनुवाद रहस्यवाद ही हो सकता है छायावाद शब्द में उसकी छाया दिखाई पड़ती है, मूर्ति नहीं। रहस्यवाद में अस्पष्टता, परिच्छिन्नता और सर्वसाधारण की दुर्बोधता भलकती है यह चमत्कारक होकर अचिंतनीय भी है। छायावाद में यह बात नहीं पाई जाती। वह स्निग्ध, मनोरम और प्रांजल है साथ ही उतना अचिंतनीय नहीं शायद इसीलिए उस पर अधिकतर सहृदयों की स्वीकृति की मुहर लग गई है। छायावाद शब्द प्रचलित हो गया है और अपने उद्देश्य की पूर्ति भी कर रहा है।"

छायावाद के प्रेरणास्रोत के रूप में महादेवी जी द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता को ही स्वीकार करती हैं जिसकी स्थूलता की प्रतिक्रियास्वरूप सूक्ष्म भाव-ग्रहण का प्रवृत्ति से युक्त इस काव्य का प्रारम्भ हुआ। छायावाद की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन करते समय उन्होंने अपने समक्ष तीन आयाम रखे हैं—भावात्मक विशेषताएँ शिल्पगत नूतनता तथा पराभव के कारण।

भावात्मक विशेषताओं के अंतर्गत स्वानुभूति की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति चित्रण को उन्होंने विशेष महत्त्व दिया है और इन्हें छायावादी काव्य की सर्वप्रमुख विशेषताएँ माना है। इनके अतिरिक्त यथार्थवादी दृष्टिकोण, नारी के प्रति श्रद्धा भाव, करुणा, रहस्यात्मकता, सर्ववाद एवं राष्ट्रीयता को भी उन्होंने छायावादी काव्य की प्रवृत्तियों के रूप में स्वीकार किया है। छायावादी काव्य को आत्मानुभूति की व्यंजना स्वीकार करते हुए महादेवी जी ने 'रश्मि' के 'आमुख' में तथा 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' में कहा है—

(१) 'छायावाद के जन्म का मूल कारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव (बंधनों से ऊब उठना) में छिपा हुआ है। उसके जन्म से पहले कविता के बंधन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छंद छंद में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम 'छाया' उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।'

(२) "इस व्यक्तिप्रधान युग में व्यक्तिगत सुख दुःख अपनी अभिव्यक्ति के लिए आकुल थे। अतः छायायुग का काव्य स्वानुभूतिप्रधान होने के कारण वैयक्तिक उल्लास विषाद की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बन सका।

उनके अनुसार स्वानुभूति की अभिव्यक्ति करने की यह आकांक्षा एवं तड़प वेदों, उपनिषदों, ऋचाओं और भक्ति-काव्य में भी मिलती है पर बीच में कुंठित हो जाने के कारण हम उससे अवगत न हो सके थे। छायावाद युग में यह तड़प एक बार फिर

चीत्कार के रूप मे मुखर हो उठी। स्वय उनके का य म यक्त रहस्यानुभूति इसी स्वानुभूति का ही रूप है। उनकी गम्भीर चिन्तनशील एव सौ दयप्रिय भावुक प्रवृत्ति इसी रूप म स तुष्ट भी हो पाई है। या 'नीहार', रश्मि आदि का य-ग्र यो मे सकलित कविताआ मे पार्थिव सुख-दु ख की भी अभिव्यक्ति मिलती है।

प्रकृति क प्रति एक सवदनशील भावुकता छायावादी का य की दूसरी विशेषता रही है। छायावादी कवि कल्पना और प्रत्यक्ष दशन के बल पर न केवल प्रकृति का सजीव चित्राकन करता है, वरन उसका मानवीकरण करके उसम प्राणप्रतिष्ठा भी कर देता है। प्रकृति उसके जीवन का पूरक व अनिवाय अग थी—"छायावाद की प्रकृति घटकूप आदि मे भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपो मे प्रकट एक महाप्राण बन गई। अत अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बि दुओ का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।'

छायावादी कवि प्रकृति व जीवन दानो को समान व्यापक अस्तित्व स युक्त मानकर अपने को उसम पूणतया रमा देना चाहता है। इस रूप म छायावादी काव्य प्रकृति के मध्य जीवन का उद्गीथ' कहा जा सकता है।

इन कवियो की सववाद की भावना भी प्रकृति प्रम के कारण ही अधिक पुष्ट व मुखर हुई है। कही कही उसका स्वरूप इतना सूक्ष्म है जिसम जड-चेतन तथा व्यष्टि समष्टि की चेतना इतनी एकरूप हो उठती है कि उनमे पाथक्य सम्भव हो नही हो पाता। यह अभिन्नता अपनी जगह पर एक ऐसी सूक्ष्म सौ दर्यानुभूति का भी ज म देती है जो भावा मक दशन का सहज बना देती है। इस दिशा मे इन छायावादी कवियो का प्रेरणास्रोत सस्कृत काव्य ही रहा है।

श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य में भी कल्पना का यह वभव दशनाय है। उन्होने उसी क माध्यम म नित्यप्रति क जाने पहचाने दृश्यो को भा नवीन सौ दय प्रदान किया है। उनकी यह कल्पना प्रकृति के प्रागण म खुलकर खेलती दिखती है। मुस्कराता हुआ नभ उ हे प्रियतम क आने का सदेश दता है और 'नीर भरी बदरी उन्हे अपने जीवन का प्रतीक लगता है। प्रकृति का मानवीकरण करने की प्रवृत्ति भी उनम अ य छायावादी कविया की भाँति ही मिलती है। उनके लिए प्रकृति स्वय म तो महत्त्व पूण है ही वह प्रियतम का आभास देन क कारण भी महत्त्वपूण हो उठती है। 'प्रिय साध्य गगन मेरा जीवन' तथा हुए धूल अक्षत मुझ धूलि च दन' एसी हा उक्तिया हैं। इसके अतिरिक्त पृष्ठभूमि क रूप म आलकारिक रूप म तथा वण परिज्ञान हतु भी प्रकृति का चित्रण उन्होने सफलतापूवक किया है।

प्रकृति प्रेम क अतिरिक्त छायावादा कवियो की एक अ य विशेषता (नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण) का ओर भी श्रीमती महादेवी वर्मा ने सकेत किया है।

उनके अनुसार "छायावाद की नारी पुरुष के सौदर्य-बोध, स्वप्न, आदश आदि का प्रतीक है।" छायावादी कवि प्रकृति के समान ही नारी को रहस्यमयी सूक्ष्मता एव विविधता से युक्त अस्तित्व प्रदान करता है, चाहे उसस उसके द्वारा अकित की गई यथाथ की सीमा रेखाए धुधली ही क्यो न पड़ गई हो।

यद्यपि छायावादी कवि अतिशय भावुक, कल्पनाशील, करुण व्यक्तित्व लेकर सामने आया, पर उसका काव्य केवल कल्पना का जाल ही नही कहा जा सकता। स्थूल की प्रतिक्रियास्वरूप लिखा जाने के कारण स्थूल का वैसा चित्रण तो इसम अवश्य प्राप्त नही होता जसा द्विवेदीयुगीन कवियो के काय मे मिलता है, परतु कही भी यह काव्य यथाथ को भुला नही पाया है। युगीन समस्याओ से वह अप्रभावित रहा है, ऐसा भी कहना ठीक नही होगा—"छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया मे उत्पन हुआ था अत स्थूल को उसी रूप म स्वीकार करना उसके लिए सम्भव न हो सका, परन्तु उसकी सौदय दृष्टि स्थूल के आधार पर नही है, यह कहना स्थूल की परिभाषा को सकीण कर देना है। उसने जीवन के इतिवृत्तात्मक यथाथ चित्र नही दिए, क्योंकि वह स्थूल से उत्प न सूक्ष्म सौदय सत्ता की प्रतिक्रिया थी, अप्रत्यक्ष सूक्ष्म के प्रति उपेक्षित यथाथ की नही, जो आज की वस्तु है। परतु उसने अपने क्षितिज से क्षितिज तक विस्तृत सूक्ष्म की सुदर और सजीव चित्रशाला में हमारी दष्टि को दौडा दौडा कर ही उसे विकृत जीवन की यथाथता तक उतरने का पथ दिखाया। इसी से छायावाद के सौ दयद्रष्टा की दृष्टि कुत्सित यथाथ तक भी पहुँच सकी।'

समसामयिक परिस्थितियो के प्रति जागरूक इन कवियो ने सुदर एव मार्मिक राष्ट्रीय काय का भी सजन किया—

(१) 'राष्ट्र की विषम परिस्थितियो ने भी छाया युग की करुणा मे एक रहस्यमयी स्थिति पाई।"

(२) 'पुरातन गौरव का ओर प्राय सभी कवियो का ध्यान आकर्षित हुआ, क्योकि बिना पिछले सास्कृतिक मूल्यो के ज्ञान के मनुष्य नये मूल्य निश्चित करन मे असमथ रहता है। स्वय महादेवी जी का का य अतिशय कल्पना व भावुकता से भरा होन पर भी यथाथ से असम्पृक्त नही रहा है। हिमालय' तथा बग दशन' मे उनका देशप्रेम व राष्ट्रीयता मुखर हुई है।

इन विशषताओ के अतिरिक्त कला वभव की समृद्धि की दृष्टि से भी जो कि छायावादी का य की सर्वाधिक मुखर प्रवत्ति रहा है, महादवी जी ने इस युग के काव्य पर प्रकाश डाला है। पल्लव (प त) और परिमल (निराला) के आमुख के सदश ही महादेवी जी न भी अपने कतिपय ग्रन्थो म इस युग की कलात्मक प्रवत्तियो की विवेचना की है। छायावादी कवि ने जब देखा कि उसकी सूक्ष्म सौदर्यानुभूति खडीबोली की

सात्विक कठोरता एव पुरातन छन्द-बन्धो को नही सह सकती तब उसने नवीन ध्वन्यात्मक व अथगर्भित नवीन शब्द गढे व ढूढे तथा अपनी भावनाओ को कोमलतम कलेवर प्रदान करने की चेष्टा की। इसीलिए छायावादी काव्य म हमे गहरे हल्के, फीके सभी रग व शलियाँ सहज ही उपलब्ध हो जाती हैं। सम्भवत इसीलिए इस युग का काव्य गीतात्मक अधिक रहा है। महादेवी जी ने छायावादी गीता के विषय म लिखा है— इस युग के गीतो की एकरूपता म भी ऐसी विविधता है जो उन्ह बहुत काल तक सुरक्षित रख सकेगी। इनम कुछ गीत समीर के झोके के समान हमे बाहर से स्पश कर अन्तरतम तक सिहरा देते हैं कुछ अपने दशन से बोझिल पखो द्वारा हमारे जीवन को सब ओर से छू लेना चाहते हैं, कुछ किसी अलक्ष्य डाली पर छिपकर बैठी कोकिल के समान हमारे ही किसी भूले स्वप्न की कथा कहते रहते हैं और कुछ मन्दिर के पूत घूप धूम के समान हमारी दृष्टि को धुधला परन्तु मन को सुरभित किए बिना नहीं रहते।'

छायावादी गीत स्वानुभूति की अभिव्यक्ति होने के कारण आँसुओं मे पगे हुए हैं, रहस्यमय हैं, परन्तु यथाथ से दूर नहीं। महादेवी जी के शब्दो म—'छायावाद व्यथा का सवेरा है, अत उसके प्रभाती गीतो की सुनहली आभा पर आँसुओं की नमी है छायावाद के गीता का यथाथ कभी भाव की छाया म चलता है और कभी दार्शनिक आत्मबोध का।'

छायावादी कवियो ने अपनी अभिव्यक्ति को अधिकाधिक नूतन बनाने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया वह भी पूव प्रयुक्त भाषा की अपेक्षा अधिक सकेतमयी एव लाक्षणिक थी। शब्द व उसके अथ क मध्य अद्भुत सामजस्य इन कवियो ने बनाए रखा। उन्होने रूढ शब्दा को भी विभिन्न नवीन सन्दर्भों म प्रयुक्त किया और आवश्यकता नुसार नवीन शब्द सृष्टि द्वारा भाषा को गम्भीर अथवत्ता प्रदान की। 'छायावाद ने नए छन्दबन्धों मे सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति का जो रूप देना चाहा वह खडीबाली की सात्विक कठोरता नही सह सकता था। अत कवि ने कुशल स्वणकार क समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वण और अथ की दृष्टि स नापतोल और काँटछाँट कर तथा कुछ नय गढ़कर अपनी सूक्ष्म भावनाओ को कामलतम कलेवर दिया है।

इन कवियो न अलकारा व छन्दा क प्रयोग म भी पर्याप्त मौलिकता दिखाई है। उन्होने अपना कल्पनामयी भावुक उक्तियो को सजाने के लिए अन्य भाषाओ के छन्दों को भी अपनाया और उन्ह अपने अनुरूप गढ़ लिया है। महादेवी जी का स्वय का काव्य भी लक्ष्याथ व व्यग्याथ-सम्पन्न है। उनक द्वारा प्रयुक्त प्रतीको एव अलकारो म अद्भुत वलक्षण्य एव नवीनता है। कहीं कहीं इन लक्षणात्मक, ध्वन्यात्मक एव वक्रोक्तिमूलक प्रयोगो के कारण उनका काव्य सामान्य पाठक क लिए दुरूह प्रतीत होता है, पर सामान्यत उनस शली का सौन्दय बढ़ा ही है, घटा नहीं है। फिर सवत्र

लक्षणा और व्यजना ही प्रमुख हो ऐसा भी नही है। नीहार' एव 'रश्मि' की कविताएँ अभिधेय होते हुए भी मार्मिक व हृदयस्पर्शी बन पडी हैं।

छायावाद हिन्दी के अन्य वादो से टूटकर अलग थलग नही पनपा वरन् सभी से उसका एक आन्तरिक सम्बन्ध बना रहा है। वस्तुत किसी एक साहित्यिक प्रवृत्ति के प्रधान होते ही अन्य प्रवृत्तियाँ पूर्णत नष्ट न होकर गौण रूप से जीती रहती हैं। यथार्थवाद निराशावाद सुखवाद आदि भी घुलेमिले रूप मे छायावाद के क्रोड मे पनपते रहे और समय के साथ मुखरता प्राप्त कर सके श्रीमती महादेवी वर्मा इस मत से सहमत हैं—'इस रूप मे उसका किसी विचारधारा से या भावधारा से विरोध नही वरन आभार ही अधिक है। क्योंकि भाषा छन्द कथन का विशेष शैली की दृष्टि से उसने अपने प्रयोगो का फल ही आज के यथार्थवाद को सौंपा है।'

केवल हिन्दी साहित्य ही नही वरन् पाश्चात्य से भी उसने अपना सम्पर्क बनाए रखा। विशेषत अंग्रेजी रोमांसवाद से उसका अदभुत साम्य रहा है। हाँ इतना अवश्य है कि अंग्रेजी व बगला साहित्य से प्रभावित होते हुए भी कही भी इन कवियो ने अपने अस्तित्व को मिटने नहीं दिया है। उन्होंने सर्वत्र भारतीयता की रक्षा की है एव उन विदेशी प्रभावो का भी भारतीयकरण किया है।

इतना होते हुए भी हिन्दी का यह लोकप्रिय वाद सवत १९९४ तक आते आते पराभव को प्राप्त होने लगा था। श्रीमती महादेवी वर्मा ने भी पन्त जी के समान इसके पराभव के कारणो मे मूल रूप से जनता के प्रति उदासीनता एव आध्यात्मिक चेतना का उलझा होना स्वीकार किया है। वस्तुत इन कवियो की आध्यात्मिक अनुभूति कभी कभी इतनी दुरूह हो उठती है कि सामान्य पाठक के लिए उसको समझ सकना सम्भव नहीं हो पाता। जीवन के प्रति इनकी दृष्टि भी इसी प्रकार कहीं-कहीं अत्यधिक भावात्मक हो उठी है जिससे जीवन उपेक्षित हो गया है और कल्पना का तत्त्व प्रधान। जब उन्होने इस अतिशय कल्पनायुक्त काव्य को यथानुरूप भाषा शैली व अलकारो द्वारा सुसज्जित किया तब स्वाभाविक रूप से ही अभिव्यक्ति अधिक सूक्ष्म हो उठी और उनका काव्य सामान्य जनता से दूर की वस्तु हो गया—

(१) छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तो का सचय न देकर हमे केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य-सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था। इसी से उसे यथार्थ रूप मे ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया।

(२) छायावाद के कवि को एक नये सौन्दर्यलोक मे ही वह भावात्मक दृष्टिकोण मिला जो जीवन मे नहीं इसी से वह अपूर्ण है परन्तु यदि इसी कारण हम उसके स्थान मे केवल बौद्धिक दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा कर जीवन की पूर्णता देखना चाहेंगे तो हम भी असफल रहेंगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी जी पलायन या निराशा व कुठा को छायावाद के पराभव का मूल कारण नहीं मानती। उनके मतानुसार 'ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे धीरे' में केवल पलायन वृत्ति के दर्शन करना आलोचको की भ्रमदृष्टि का परिणाम है। यदि हम चाहें तो इन्ही पंक्तियों में एक अनखोजे, अनजाने नवीन संसार को ढूंढ निकालने की महती अभिलाषा एवं अदम्य जिज्ञासा को व्यक्त देख सकते हैं।

स्वयं महादेवी जी का काव्य विरह तथा विप्रलम्भ से भरा पड़ा है। वे 'चिर विरह' की ही कामना करती हैं मिलन उन्हें इष्ट नहीं। किन्तु उनके इस विरह को हम छिछला वेदनावाद नहीं कह सकते। वह पराजय या पलायन की भावना से ऊपर है। उसमें उन्नयन का एक ऐसा भाव है जो अपना पृथक महत्त्व रखता है। उनके आँसुओं में ऊहात्मकता नहीं है वरन वे कवयित्री की अंतर्दशा के व्यंजक हैं। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए लिखा है – 'पर न अब तक मैं व्यथा का छंद अनिम गा चुकी हूँ।' 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा' 'रश्मि' आदि के गीत इस दृष्टि से प्रमुख हैं।

महादेवी जी ने छायावाद को एक नवीन उपलब्धि माना है। उनके अनुसार छायावाद कभी मर नहीं सकता वरन युग के बदलते आयामों के साथ उसका स्वरूप भी नित्य नवीन होगा। यह तथ्य आज पूर्णत सत्य भी प्रतीत होता है यदि हम तथाकथित प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता और यहाँ तक कि अकविता कही जानेवाली काव्यधारा को देखें तो उसमें भी छायावादी कण ही मिलेंगे। निश्चय ही छायावाद को जितनी गहराई से महादेवी जी ने पहचाना है उतना सम्भवत किसी अन्य कवि ने नहीं। जब तक साहित्य में छायावाद द्वारा प्रदत्त काव्य रत्न सुरक्षित रहेंगे तब तक उसके अनोखे पारखी 'महादेवी' का नाम भी अमर रहेगा।

२१

'दीपशिखा' की भूमिका

दीपशिखा महादेवी जी की पाँचवी काव्य कृति है—इससे पूर्व उनकी चार रचनाएँ क्रमश: नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत नाम से प्रकाशित हो चुकी थीं। 'नीहार' में महादेवी का किशोर कवि एक प्रकार से अपरिचित काव्यलोक में प्रवेश करता है अतः वहाँ परिचायक रूप में कवि सम्राट अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की अत्यन्त संक्षिप्त भूमिका है। 'रश्मि' में दर्शन के अध्ययन के प्रभाव से कवि में थोड़ा आत्म विश्वास आता है और अपनी बात से एक छोटी सी भूमिका के दर्शन पहली बार होते हैं। 'नीरजा' का परिचय फिर रायकृष्णदास जी के शब्दों में दिया गया है किन्तु 'सांध्यगीत' के आरम्भ में कवि की अपनी भूमिका है जिसमें स्थिर रूप से काव्य से सम्बद्ध कतिपय मौलिक प्रश्नों का विवेचन किया गया है। 'दीपशिखा' की भूमिका का कलेवर इन सबकी अपेक्षा कहीं व्यापक और उसका स्वर कहीं अधिक आश्वस्त है। यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि को उत्तेजित कर दिया गया है। इस उत्तेजना की पृष्ठभूमि भी स्पष्ट ही है। उन दिनों प्रगतिवाद का आन्दोलन जोर पकड़ रहा था—और यह जोर रचनात्मक कम, ध्वंसात्मक अधिक था। प्रगतिवाद के पक्षधर आलोचक पूर्ववर्ती काव्य मूल्यों को भस्म कर नवीन सामाजिक मूल्यों का आरोपण करने में प्रयत्नशील थे और उनका सीधा प्रहार था छायावाद पर, जिसकी प्रतिक्रिया में प्रगतिवाद का जन्म हो रहा था। कुछ कवि और आलोचक इस कोलाहल में बच्चे पढ़ने लग गये थे—छायावाद के प्रबल समर्थक प्रगतिवाद को कवि के पा[illegible] की कसौटी' मानने पर आमादा हो गये थे। उस वातावरण में 'दीपशिखा' का और उससे भी अधिक 'दीपशिखा' की भूमिका का प्रकाशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सामयिक घटना थी।

इस भूमिका में कवयित्री ने काव्य से सम्बद्ध अनेक मौलिक प्रश्न उठाये हैं उदाहरण के लिए—सत्य का स्वरूप, काव्य और सत्य, सौन्दर्य का स्वरूप, काव्य और उपयोगिता, नैतिक और उपयोगी [illegible] का भेद और उसकी निरर्थकता, [illegible] की [illegible] और दोनों का [illegible] सम्बन्ध, रहस्यानुभूति और आधुनिक काव्य में उसकी स्थिति, छन्द [illegible] इस नवीन और राजनीतिक [illegible] का प्रयोग

किया गया है। भूमिका का चतुर्थ एवं अन्तिम खंड 'दीपशिखा' की कविता के साथ प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है—यहाँ कवि ने गीत की परिभाषा और स्वरूप गीत के दो प्रमुख भेद—रहस्यगीत और सगुण गीत, दीपशिखा' में गीत और चित्रकला का योग, इन दोनों के लिये प्रयुक्त प्रकृति के उपकरण आदि पर संक्षिप्त किन्तु मार्मिक वक्तव्य दिये हैं। इस विवेचन के अन्त में यह भी संकेत किया गया है कि कवि का अपना जीवन एकान्त का या साधना का जीवन नहीं है—उसके कर्मक्षेत्र की विविधता भी कम सारवती नहीं' है—उसने आज के 'उपेक्षित संसार में भी बहुत कुछ मान्य पाया है अन्यथा सभ्य समाज मे इतनी दूरी असह्य हो जाती।

सत्य मूलतः अखण्ड है अतः असीम है किन्तु जब वह व्यक्ति की चेतना का विषय बनता है तो उसके लिए एक विशेष सीमा में आना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार सत्य की यह दोहरी स्थिति सहज स्वाभाविक है वास्तव में इस दोहरी स्थिति में ही वह हमारे सामने आता है। भावक्षेत्र और ज्ञानक्षेत्र पृथ्वी के उन दो गोलार्धों के समान हैं जो मिलकर सत्य की इस चेतना को पूर्णता प्रदान करते हैं। व्यक्ति का सत्य राग और बुद्धि इन दो अधवृत्तों से अनिवार्यतः घिरा रहता है। इनमें राग अथवा अनुभूति की प्रवृत्ति गहराई की ओर है और बुद्धि की विस्तार की ओर, जीवन का सत्य इन्हीं दोनों में परिवेष्ठित रहता है। असीम सत्य को व्यक्ति की सीमित चेतना में प्राप्त करना—अखण्ड को खण्ड में सिद्ध कर लेना मानव-चेतना के लिए जितना दुष्कर है उतना ही अनिवार्य भी। मानव चेतना ने सत्य की इस सिद्धि के लिए जितने माध्यमों का अनुसंधान किया है काव्य या कला उनमें सबसे सफल माध्यम है। इसीलिए महादेवी का मत है कि सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है। सौन्दर्य बाह्य रेखाओं और रंगों का सामंजस्य मात्र नहीं है—"सत्य की प्राप्ति के लिए काव्य और कलाएं जिस सौन्दर्य का सहारा लेते हैं वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है।' सौन्दर्य वस्तुतः विकास के लिए अपेक्षित जीवन के प्रत्येक स्पन्दन का पर्याय है। उसकी परिधि से छोटा, बड़ा लघु, गुरु सुन्दर विरूप, आकर्षक, भयानक कुछ भी बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। उसके भीतर बहिर्जगत और अन्तर्जगत दोनों का वैविध्य समंजित है। इस प्रकार महादेवी के अनुसार उपर्युक्त सन्दर्भ में कला सौन्दर्य के माध्यम से सत्य की अभिव्यक्ति का नाम है।

उपयोगी और ललित कलाओं के रूप में कला का वर्गीकरण महादेवी जी को स्वीकार्य नहीं है—इस प्रकार का वर्गीकरण अत्यन्त स्थूल है क्योंकि तत्त्वदृष्टि से उपयोगिता और लालित्य अथवा सौन्दर्य में कोई मौलिक भेद नहीं रह जाता। स्थूल द्रष्टा आलोचकों ने उपयोगिता का अर्थ जीवन की बहिरंग आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित कर सौन्दर्य से उसका भेद कर दिया है। किन्तु यह भेद मिथ्या है। उपयोगिता के स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक असख्य रूप हो सकते हैं और ये सूक्ष्मतर रूप ही वास्तव

म सौन्दय के पर्याय बन जाते हैं। इसी प्रकार सौन्दय की भी अपनी विशेष उपयोगिता है जो जीवन की आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। काव्य और ललित कलाओं का उपयोग उस उन्नत रागात्मक भूमिका पर स्थित होता है जो साधारणीकृत होने के कारण सहज रमणीय या सुन्दर होती है। इसी परिप्रेक्ष्य म कवि ने काव्यगत नैतिक मूल्यों की भी व्याख्या की है काव्य मे नैतिकता का अथ विधि निषेध नहीं है। "जीवन को गति देने के दो ही प्रकार हैं—एक तो बाह्यानुशासनों का सहारा देकर उसे चलाना और दूसरे अन्तजगत मे ऐसी स्फूर्ति पैदा कर देना जिससे सामंजस्यपूर्ण गतिशीलता अनिवार्य हो उठे।" काव्यगत नैतिक मूल्य दूसरे प्रकार के अन्तगत ही आते हैं। अर्थात् काव्य के क्षेत्र म नैतिकता उन मूल्यों का नाम है जो जीवन के सामंजस्यपूर्ण विकास मे सहायक होते हैं और चूंकि सामंजस्य ही सौन्दय का भी आधारतत्त्व है इसलिए नीतिगत मूल्यों मे और सौन्दयगत मूल्यों में कोई तात्त्विक भेद नहीं रह जाता।

इसी प्रकार पूर्वोक्त अन्य विषयों का भी महादेवी ने गम्भीर चिन्तन किया है। अनुभूत होने के कारण उनके विचारों मे एक विशेष प्रकार की मार्मिकता और विश्वास की दीप्ति आ गई है। इसलिए हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में उनके अनेक वाक्य सूत्र बनकर प्रचलित हो गये हैं। जैसे—"बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भावभूमि पर उसने प्रकृति मे बिखरी सौन्दयसत्ता की रहस्यमयी अनुभूति प्राप्त की और दोनों को मिलाकर एक ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद अध्यात्मवाद, रहस्यवाद आदि अनेक नामों का भार सँभाल सकी।" अथवा "साधारणत गीत व्यक्तिगत सीमा मे तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता मे गेय हो सके।"

प्रस्तुत प्रसग म महादेवी की इन सभी मान्यताओं की समीक्षा करने का अवकाश नहीं है। इसलिये मैं केवल एक ऐसे प्रश्न को ही लेता हूँ जो अधिक ज्वलन्त और जिसका महादेवी के काव्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है वह है आधुनिक काव्य मे रहस्यानुभूति का प्रश्न। बौद्धिकता के इस युग म छायावाद के कवि ने जब अपनी कविताओं मे परोक्ष आलम्बन के प्रति प्रणय निवेदन का आग्रह किया तो अनेक आलोचकों ने उसकी अनुभूति की सत्यता पर सन्देह किया। महादेवी ने प्रस्तुत भूमिका मे अपने पक्ष म अनेक तक दिये हैं —१ प्रत्येक सामञ्जस्य अथवा सौन्दय की अनुभूति ही अपने मूल मे रहस्यानुभूति होती है। २ अपनी अपूर्णताओं को किसी पूर्ण आदर्श की कल्पना म समर्पित करने की लालसा मानव मे जन्मजात है। उन्हीं के शब्दों में स्वभाव से मनुष्य अपूर्ण भी है और अपनी अपूर्णता के प्रति सजग भी। अत किसी उच्चतम आदर्श भव्यतम सौन्दय या पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति आत्मसमर्पण द्वारा पूर्णता की इच्छा स्वाभाविक हो जाती है।' ३ यह आत्मसमर्पण किसी न किसी प्रकार के

रागात्मक सम्बन्ध की ओर इंगित करता है और रागात्मक सम्बन्धों में भी केवल माधुर्य भाव के द्वारा ही पूर्ण के साथ अपूर्ण का एकान्त तादात्म्य सम्भव हो सकता है। इस प्रकार से परोक्ष या रहस्यमय आलम्बन के प्रति प्रणय निवेदन मानव-हृदय की एक सहज प्रवृत्ति और प्रायः एक सहज आवश्यकता भी हो जाती है। ४ प्राचीन काव्य का इतिहास भी इस प्रकार की रहस्यानुभूति को सिद्ध करता है। कवि के अपने शब्दों में ही, **"अखण्ड और व्यापक चेतन के प्रति कवि का आत्मसमर्पण सम्भव है या नहीं —इसका जो उत्तर अनेक युगों से रहस्यात्मक कृतियाँ देती आ रही हैं वही पर्याप्त होना चाहिए।" "प्रकृति के व्यस्त-व्यस्त सौन्दर्य में रूपप्रतिष्ठा, बिखरे रूपों में गुण प्रतिष्ठा, फिर इनकी समष्टि में एक व्यापक चेतन की प्रतिष्ठा और अन्त में रहस्यानुभूति का जैसा क्रमबद्ध इतिहास हमारा प्राचीनतम काव्य देता है वैसा अन्यत्र मिलना कठिन होगा।"**

इसमें सन्देह नहीं कि ये तर्क अपने आप में बड़े प्रबल हैं और वास्तव में आधुनिक बुद्धिजीवी कवि की रहस्यानुभूति के पक्ष में कल्पना और वैदग्ध्य के जितने भी उपकरण एकत्र कर सकते थे वे सब यहाँ उपस्थित हैं। किन्तु हमारा विनम्र निवेदन है कि इन तर्कों में कल्पना की रमणीयता अधिक है। इनसे न प्रश्नकर्ता की बुद्धि ही निरुत्तर होती है और न उसका हृदय ही इन पर प्रत्यय कर पाता है। बुद्धि उत्तर देती है कि आपने जो कुछ कहा अर्थात आदर्श, सौन्दर्य या पूर्ण व्यक्तित्व और उसके प्रति माधुर्य मूलक आत्मसमर्पण यह तो सब कल्पना का चमत्कार है। इन सब की कल्पना पर किसी को आपत्ति नहीं है। प्रश्न यह है कि इस प्रकार के काव्य का मूलाधार रहस्य प्रणय की अनुभूति है या उसकी कल्पना? यदि कल्पना है तब तो समस्या का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु यदि रहस्य प्रणय की अनुभूति का आग्रह है तो यह पूर्वोक्त तर्कों से सिद्ध नहीं होती। अतः छायावादी काव्य में अभिव्यक्त रहस्यानुभूति की व्याख्या के दो भाग हैं—एक पार्थिव से अपार्थिव की ओर जाता है अर्थात् पार्थिव प्रणय भावना के उन्नयन की ओर इंगित करता है और दूसरा जैसा कि महादेवी जी मानती हैं, अपार्थिव रहस्यानुभूति को लौकिक प्रणय प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है अर्थात् अपार्थिव से पार्थिव की ओर जाता है। महादेवी की मान्यता को स्वीकार कर लेने से एक बड़ा अहित यह होता है कि छायावाद की, विशेषकर उनके काव्य की, प्रेरक-शक्ति 'अनुभूति' न होकर 'अनुभूति की कल्पना' मात्र रह जाती है और प्रकारान्तर से छायावाद का समर्थक उसके आलोचकों के आक्षेप के सामने सिर झुका देता है।

किन्तु यह तो एक प्रसंगमात्र है और इसके विषय में भी अन्तिम निर्णय देना सम्भव नहीं। हिन्दी आलोचना के विकास में इस भूमिका का महत्त्व अक्षय है। इससे छायावादी काव्य दृष्टि अनाविल हुई, उसके सम्बन्ध में प्रचारित अनेक भ्रान्तियों का निराकरण हुआ, शाश्वत काव्यमूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा हुई और हिन्दी में सौष्ठववादी आलोचना का पथ प्रशस्त हुआ।

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

२२

'नीरजा' एक विश्लेषण

महादेवी वर्मा की रचनाओं में 'नीरजा' का स्थान कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। रसानुभूति के उत्कर्ष के साथ अभिव्यंजना का क्रमिक विकास 'नीरजा' में स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'नीरजा' कवयित्री की काव्यानुभूति का तीसरा सोपान है किन्तु इस सोपान तक पहुँचते-पहुँचते उस मंजिल की प्रायः सभी चोटियाँ दिखाई पड़ने लगी हैं। कल्पना का प्राधान्य अब क्षीणतर होकर चिन्तन और अनुभूति के रूप में परिवर्तित हो गया है। आनन्द और उल्लास का स्निग्ध आलोक कवयित्री के अन्तर में 'नीरजा' के विकास में सक्षम होकर उस रूप के वातावरण में विचरण करने की प्रेरणा दे रहा है। श्री रायकृष्णदास के शब्दों में— 'नीरजा' में 'नीहार' का उपासना भाव और भी तीव्रता और तन्मयता के साथ जागृत हो उठा है। इसमें अपने उपास्य के लिए केवल आत्मा की करुण अधीरता ही नहीं अपितु हृदय की विह्वल प्रसन्नता भी मिश्रित है। 'नीरजा' यदि अश्रुमुखी वेदना के कणों से भीगी हुई है तो साथ ही आत्मानन्द के मधु से मधुर भी है। मानो, कवि की वेदना कवि की करुणा अपने उपास्य के चरण-स्पर्श से पूत होकर आकाश गंगा की भाँति इस छायामय जग को सींच देने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है।' इन पंक्तियों में 'नीरजा' को अश्रुमुखी वेदना के कणों के साथ आत्मानन्द के मधु से मधुर कहा गया है। संसार को अपनी शान्त स्निग्ध भावधारा से आप्लावित करने वाली 'नीरजा' को कवयित्री की उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण रचना हमने प्रारम्भ में इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण कहा है। 'नीरजा' में काव्यानुभूति के उत्कर्ष के साथ आनन्दानुभूति के मनोरम स्थलों का भी अभाव नहीं है।

'नीरजा' महादेवी जी के अनुभूति एवं चिन्तन प्रधान अट्ठावन गीतों का संकलन है। काव्याङ्गों की दृष्टि से यह मुक्तक गीति काव्य का रूप है। अन्तर्मुखी सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करने के लिए गीतिकाव्य सर्वश्रेष्ठ साधन स्वीकार किया जाता है। यद्यपि गीत शब्द के विषय में आज भ्रान्तियों का अभाव नहीं—सभी शीर्षक-हीन लघुकाय कविताओं को प्रायः गीतिकाव्य के नाम से व्यक्त करने लगे हैं। गीति तत्त्व के अभाव में भी हमने अनेक कविताओं को गीतिकाव्य में परिगणित

होते देखा है, किन्तु गीत की यदि सीमा मर्यादा निर्धारित की जाये तो गीत संगीत और काव्य के समुचित समन्वय को ही कहा जा सकता है। संगीत के अन्तर्गत उसके प्रधान धर्म गेयता का होना नितान्त आवश्यक है। महादेवी जी के गीतों में हम इन दोनों तत्त्वों के पूर्ण समावेश के साथ अन्तर्दर्शन और आत्मनिष्ठता की प्रधानता देखकर उनकी प्रभावोत्पादकता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। 'नीरजा' के गीतों में रागात्मक अनुभूति की तीव्रता एक ऐसा समाहित प्रभाव उत्पन्न करती है कि कुछ क्षणों के लिए मानसिक आवेगों का प्रसार गीत के भाव के अतिरिक्त कहीं और जाता ही नहीं। कहना न होगा कि ऐसा मोहक प्रभाव गीतों के कलापक्ष की परिपूर्णता के कारण उत्पन्न नहीं होता और न उनकी संगीतात्मकता का ही यह फल है—यह तो निश्चय ही गीतों के अन्तराल में समाविष्ट सूक्ष्म भाव-गरिमा है जो पाठक को अपने में लीन किये रखने की अनुपम शक्ति रखती है। जिन पक्षों में यह भाव अभिव्यंजना की दुर्बोधता या भाव की अतिसूक्ष्मता के कारण अव्यक्त रह गया है, वहाँ कलापक्ष के चमत्कार पर पाठक नहीं रीझता। 'नीरजा' में ऐसे अनेक गीत हैं जो अपनी भाव वस्तु की गहनता के कारण अज्ञेय-से बने रह जाते हैं। उनकी यह अज्ञेयता क्यों है यह जानने के लिये कवयित्री की भावाभिव्यंजन-शैली की अपेक्षा भाव वस्तु का अनुशीलन ही अधिक आवश्यक है। भाव प्रसार या प्रेषणीयता की क्षमता जिन गीतों में न्यून मात्रा में है उनमें भी गेयता और आत्मनिष्ठ भावना का अभाव नहीं है।

जैसा कि हमने प्रारम्भ में कहा है कि 'नीरजा' के गीत अनुभूति और चिन्तन प्रधान होने के कारण 'नीहार' और 'रश्मि' के गीतों से अधिक आत्म-चेतनापूर्ण हैं। आत्म चेतना की जागृति गीति-काव्य का प्राण है। अपने हृदय का हर्ष विषाद प्रकट करने के लिए गीत एक ऐसा सरस माध्यम है जिसमें हमारी भावना और अनुभूति को प्रतिफलित होने का पर्याप्त अवकाश मिलता है। महादेवी जी ने स्वयं गीत का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'गीत का चिरंतन विषय रागात्मक वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख दुःखात्मक अनुभूति से ही है। साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।' 'नीरजा' के गीतों में हम उक्त परिभाषा को पूर्णरूप से चरितार्थ होता हुआ पाते हैं।

'नीरजा' के गीत-तत्त्व के मूल रूप को समझने के लिये उसकी अभिव्यंजना-शैली के अन्य उपादानों का हृदयङ्गम करना भी आवश्यक है। महादेवी जी ने जिस युग में काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया, वह छायावाद का उत्कर्ष-काल था। छायावादी अभिव्यंजना इतनी परिपुष्ट और समृद्ध हो चुकी थी कि उसमें सामान्य कोटि के

प्रतिभाहीन कवि क पर्वा जमना सम्भव न था। महादेवी जी ने छायावादी काव्य प्रणाली की अभिनव मा यताओ को स्वीकार करके भी उसम अपना व्यक्तित्व सबसे पृथक रखा। इस व्यक्तित्व की स्थापना मे उन्ह छायावादी प्रवत्तिया म नूतनता का सचार करना पडा जो उनकी रहस्यानुभूति का मूल बीज है।

महादेवी जी के कवि-व्यक्तित्व की विशिष्टता उनक काव्य-वशिष्टय का प्राण है। छायावाद का मूल दशन समझने मे उ होने अपना नवीन मौलिक दष्टिकोण प्रस्तुत किया और हम यह कहन म सकोच नही कि छायावाद क मूल दशन को जिस समग्रता के साथ आपने पहचाना कदाचित 'प्रसाद जी को छोडकर किसी अन्य छायावादी कवि ने उतनी यापकता से उसे ग्रहण नही किया। छायावाद के दशन का मूल उन्होने 'सर्वात्मवाद' मे बलाकर अपनी काव्य धारा म केवल प्रकृति के प्रति ही प्रीति व्यजित नही की प्रत्युत जड चेतन सभी मे सावत्रिक प्रीति एव प्रणय निवेदन किया। इस सर्वात्मवाद का आदश भले ही प्राचीन आत्मवादी दशनो या उपनिषदो के सदृश ब्रह्मपरक न हो किन्तु इसमे प्रिय के प्रति आकुल आत्मा की पुकार बडे ऊर्जस्वित स्वरो मे गूँजती है। उपनिषदो का आत्मवाद दशन क चक्रव्यूह मे आकर फँस गया था और शकराचाय के अद्वैत सिद्धान्त के प्रवत्तन से पहले तक वैराग्य भावना के प्रकार का ही प्रकारा तर से साधक बना रहा। महादेवी जी ने अपनी कविता मे रहस्य भावना को स्थान देते हुए यद्यपि अद्वत मत की अवहेलना नहीं की है किन्तु उनका अद्वैत का य की मदुल मोहक सरणियो मे होकर माधुयसिक्त हो गया है। उनकी रहस्य भावना मे भक्तो और निगु णियो की रूढि के अनेक स्थलो पर समावेश होने का कारण भी उनकी आत्म निवेदन की परम्परा तथा यही 'मधुरतम व्यक्तित्व की सृष्टि' कहा जाता है। का यात्मक परिच्छेद मे रहस्य भावना के साथ ईश्वरो मुख प्रेम की अभिव्यक्ति चिर अनादि मे चली आ रही है। कवयित्री ने 'नीरजा' मे इस प्रकार के प्रेम का बडा सजीव और सुदर वणन किया है। इस वणन मे जिस अलौकिक प्रिय का आह्वान मिलन बिछोह निवेदन उत्सग और समपण है वह भौतिक अस्तित्व न रखते हुए उसी प्रकार दिव्य और अपार्थिव है जिस प्रकार कबीर जायसी आदि की रहस्यवादी कविता मे। अन्तमु खी भावनाओ की प्रधानता के कारण महादेवी जी अपनी रचनाओ म प्राकृतिक सुख-दुःख अथवा उसके सामजस्य का कोई उल्लेख नही करतीं। प्राकृतिक दृश्यो का बाह्य अकन भी इसी कारण उनकी कविता में अपेक्षाकृत विरल है। यह ठीक है कि अन्य छायावादी कवियों की भाँति वे भी प्राकृतिक पदार्थों को चेतन अस्तित्व प्रदान करती हैं और कल्पना के द्वारा उन्हें मूत रूप देकर उनमे भावनाओ का आरोपण भी करती हैं, किन्तु इस प्रक्रिया मे उनकी अपनी मौलिकता निर्माण चातुरी म है उनके उपकरण अन्य छायावादी कवियों से कुछ इतर कोटि के होते हैं इसलिए उन्हें छायावादी होने पर भी रहस्य

वादी कोटि मे पूर्व य स्थान प्राप्त है । रहस्यवाद का प्रसार चिन्तन क्षेत्र मे ही होता है । अपनी पहली रचना 'नीहार' स ही महादवी जी अद्वतवाद का सहारा पाकर इस ओर अग्रसर हुई है, किन्तु नीरजा म आकर चि तनमात्र स अद्वत भावना को पल्लवित नही करती । अनुभूति का आश्रय भी उनका सम्बल बनकर उ हें रहस्यो मुख करता है । नीरजा की कविताओ म तो वे प्रियतम को अपने अन्तर म बसा हुआ देखकर तुष्ट भी होती हैं । आत्मसाक्षात्कार का आनन्द पाकर जसे साधक परितोष पाता है, तत्सदश परितोष भाव 'नीरजा' की अनेक कविताओ म व्यक्त हुआ है । जिन कवि ताओ म कल्पना का विशेष आग्रह न होकर अनुभूति को चित्रित किया गया है निस्स देह वह का आनन्द के साथ एक प्रकार की नैसर्गिक रसानुभूति भी उपलब्ध होती है ।

रहस्यवादी कविता म आत्मा और परमात्मा के विरह का वणन मिलन और दशन की अपक्षा अधिक मार्मिक और आवषक होता है । 'नीरजा' म भी विरह-दशा का वणन बहुत ही मार्मिक तथा मनोरम है । प्रियतम के विरह से भी जीवन की साथकता का अनुभव हो सकता है जीवन को विरह का जलजात बतात हुए 'नीरजा' मे विरहज य उपादानो से ही जीवन निर्माण का विवरण प्रस्तुत किया गया है —

'विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !
वदना मे ज म करुणा मे मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात
जीवन विरह का जलजात !

आँसुओ का कोष उर दग अश्रु की टकसाल,
तरल जल कण से बने घन-सा क्षणिक मदु गात,
जीवन विरह का जलजात !

प्रिय की अनुभूति क वणन अद्वत भावना क साथ नीरजा म स्थान-स्थान पर उपल ध होते हैं । प्रियतम का सान्निध्य पाकर आत्मा अहकार से तृप्त नही होती वरन् वह बसुध सी होकर उसम तादात्म्य-सुख पाती है उसे प्रिय परिचय की आकाक्षा भी नही रहती, जग-परिचय की इच्छा नहा रहती स्वग और अपवग म लय होन की स्पृहा भी निशेष हो जाती है —

तुम मुझमे प्रिय ! फिर परिचय क्या !
तारक मे छवि प्राणो मे स्मति,
पलकों मे नीरव पद की गति,
लघु उर म पुलकों की ससृति,
भर लाई हूँ तेरी चचल,

प्रतिभाहीन कवि के पर्याँ जमना सम्भव न था। महादेवी जी ने छायावादी काव्य प्रणाली की अभिनव मा यताओ को स्वीकार करके भी उसमे अपना व्यक्तित्व सबसे पृथक रखा। इस व्यक्तित्व की स्थापना म उन्हें छायावादी प्रवृत्तियो म नूतनता का सचार करना पडा जो उनकी रहस्यानुभूति का मूल बीज है।

महादेवी जी के कवि-व्यक्तित्व की विशिष्टता उनके काव्य-वशिष्टय का प्राण है। छायावाद का मूल दशन समझने मे उन्होने अपना नवीन मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और हम यह कहने म सकोच नही कि छायावाद के मूल दशन को जिस समग्रता के साथ आपने पहचाना कदाचित 'प्रसाद जी को छोडकर किसी अय छायावादी कवि ने उतनी व्यापकता से उसे ग्रहण नही किया। छायावाद के दशन का मूल उन्होने सर्वात्मवाद' मे बताकर अपनी काव्य धारा म केवल प्रकृति के प्रति ही प्रीति व्यजित नही की प्रत्युत जड चेतन सभी मे सार्वत्रिक प्रीति एव प्रणय निवेदन किया। इस सर्वात्मवाद का आदश भले ही प्राचीन आत्मवादी दशनो या उपनिषदो के सदृश ब्रह्मपरक न हो किन्तु इसमे प्रिय के प्रति आकुल आत्मा की पुकार बडे ऊजस्वित स्वरो मे गूँजती है। उपनिषदो का आत्मवाद दशन क चक्रव्यूह मे आकर फँस गया था और शकराचाय के अद्वैत सिद्धान्त के प्रवत्तन से पहले तक वैराग्य भावना के प्रचार का ही प्रकारान्तर से साधक बना रहा। महादेवी जी ने अपनी कविता मे रहस्य भावना को स्थान देते हुए यद्यपि अद्वत मत की अवहेलना नही की है कि तु उनका अद्वैत काव्य की मदुल मोहक सरणियो मे होकर माधुर्यसिक्त हो गया है। उनकी रहस्य भावना म भक्तो और निगु णियो की रूढि के अनेक स्थलो पर समावेश होने का कारण भी उनकी आत्म निवेदन की परम्परा तथा यही मधुरतम व्यक्तित्व की सृष्टि' कहा जाता है। काव्यात्मक परिच्छेद म रहस्य भावना के साथ ईश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यक्ति चिर अनादि मे चली आ रही है। कवयित्री ने 'नीरजा' मे इस प्रकार के प्रेम का बडा सजीव और सुदर वणन किया है। इस वणन मे जिस अलौकिक प्रिय का आह्वान मिलन बिछोह निवेदन उत्सग और समपण है वह भौतिक अस्तित्व न रखते हुए उसी प्रकार दिव्य और अपार्थिव है जिस प्रकार कबीर जायसी आदि की रहस्यवादी कविता मे। अन्तमु खी भावनाओं की प्रधानता के कारण महादेवी जी अपनी रचनाओ मे प्राकृतिक सुख-दु ख अथवा उसके सामजस्य का कोई उल्लेख नही करतीं। प्राकृतिक दश्यों का बाह्य अकन भी इसी कारण उनकी कविता में अपेक्षाकृत विरल है। यह ठीक है कि अय छायावादी कवियो की भाँति वे भी प्राकृतिक पदार्थों को चेतन अस्तित्व प्रदान करती हैं और कल्पना के द्वारा उन्हें मूत रूप देकर उनमे भावनाओं का आरोपण भी करती हैं किन्तु इस प्रक्रिया में उनकी अपनी मौलिकता निर्माण चातुरी मे है उनके उपकरण अय छायावादी कवियों से कुछ इतर कोटि के होते हैं इसलिए उन्हें छायावादी होते पर भी रहस्य

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी, आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चांदनी भी हूँ,
बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'

आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन 'नीरजा के गीतों में प्रचुर मात्रा में है। रहस्यवाद की भावना को व्यक्त करने के लिये साधारणतः चार मुख्य स्तरों का क्रमिक विकास होता है जो महादेवी जी की यामा में संकलित चारों कृतियों में देखा जा सकता है। वैयक्तिक सुख-दुःख की सीमा को पार कर जब आत्मा दुःख की वेदना के द्वारा भी सुख और हर्ष का अनुभव करने लगती है तभी भावात्मक रहस्यवाद का चरम उत्कर्ष काव्य में आता है। भावनात्मक रहस्यवाद के चित्र प्रस्तुत करने वाले कवि में लौकिक सुख दुःख को अलौकिक में लीन करने की क्षमता होना अनिवार्य है। महादेवी जी ने स्वयं लिखा है—"'नीरजा' और 'सांध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिससे अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुःख में सामंजस्य का अनुभव करने लगता है।' यही कारण है कि नीरजा में व्यक्त वेदना के गीत आनन्द का पथ प्रशस्त करते हैं दुःख का नहीं। यह वेदना अलौकिक होकर आत्मानन्द से पूर्ण हो जाती है और प्रियतम के पास ले जाने में सहायक होती है। 'नीरजा' का पहला गीत जिस अश्रु नीर को लेकर अवतीर्ण होता है वह दुःख से आविल सुख से पंकिल है। वह जीवन पथ का दुर्गमतम तल अपनी गति से कर सजल सरल युग तपित तीर को शीतल करता है। कौन तुम मेरे हृदय में गीत लिखते हुए भी इसी प्रकार की वेदना के मधुर रूप को अंकित किया गया है। 'पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में ?' कहकर वेदना द्वारा ही उसकी प्राप्ति कही गई है। वेदना और दुःख की स्थिति को महादेवी जी सदैव उच्च स्थान देती हैं। 'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।' दुःख के आध्यात्मिक रूप को उन्होंने अपनी कविता में मुखरित किया है। प्रियतम के आह्वान में भी दुःख मार्ग का संकेत इस बात का द्योतक है कि वे दुःख का त्याग उत्सर्ग और समर्पण का साथी-संगी मानती हैं।

दुःखवाद नीरजा के गीतों में जहाँ कहीं व्यक्त हुआ है वहाँ लौकिक सीमाओं से ऊपर अलौकिक आनन्द-पथ को प्रशस्त करता हुआ ही है—

तुम दुःख बन इस पथ से आना !
शूलों में नित मृदु पाटल सा खिलने देना मेरा जीवन
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना।

और कहूँ जग से संशय क्या,
तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या!'

तादात्म्य के स्वरूप वर्णन में महादेवी जी ने दोनों का पार्थक्य जिस काव्यात्मक शैली से दूर किया है वह निराला के 'तुम हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुरसरिता' का ध्यान दिला देता है। यथार्थ में, प्रेयसी और प्रियतम के पृथक् अस्तित्व का भ्रम ही हमारे मोहजाल का कारण है। उसे समझने से दोनों की एकता समझी जा सकती है। यह एकता दार्शनिक शब्दों में 'अंशांशिभाव' या 'अग्निस्फुलिंग भाव' से व्यक्त होती है किन्तु कवयित्री ने दार्शनिकता का आश्रय न लेकर काव्य में ही दर्शन की सरस शैली से समावेश किया है —

"चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम
मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
तू असीम, मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय।
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या!'

संसार के समस्त पदार्थों में गति और परिवर्तन उपस्थित करने वाला असीम शक्ति सम्पन्न प्रिय विश्व के कण-कण में व्याप्त रहकर भी हमें दूर लगता है और विरही आत्मा युग युगान्तर से करुण विलाप करके उसकी वियोगज्वाला में जलती है। 'नीरजा' के 'पथ देख बिता दी रैन प्रिय पहचानी नहीं'—गीत में प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा करके इस भाव को बड़ी सरस शैली से व्यक्त किया गया है। अपनी रहस्यानुभूति को लौकिक रूपकों के द्वारा व्यक्त करने में महादेवी जी को आशातीत सफलता मिली है। 'रश्मि' और 'नीहार' में भी लौकिक रूपकों की प्रचुरता है, किन्तु 'नीरजा' में तो यह छवि देखते ही बनती है। इन रूपकों में भी छटा उस स्थल में और देदीप्यमान हो जाती है जब कवयित्री अपने अन्तर के हर्षातिरेक में बेसुध होकर गीत लिखने बैठती है। हृदय की सच्ची अनुभूति के अंकन में लीन होकर जब वे गा उठती हैं तब उसमें न कहीं कृत्रिमता रहती है और न कहीं अस्पष्टता। नीचे के गीत में स्वाभाविक सरल भाव की स्निग्ध व्यंजना देखकर महादेवी जी की कला का मूल्यांकन करिए—

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुम से हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ!

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी, आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चांदनी भी हूँ,
द्योत भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'

आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन 'नीरजा के गीतो मे प्रचुर मात्रा म है। रहस्यवाद की भावना को व्यक्त करने के लिये साधारणत चार मुख्य स्तरो का क्रमिक विकास होता है जो महादेवी जी की यामा' म सकलित चारो कृतियों म देखा जा सकता है। वयक्तिक सुख-दुख की सीमा को पार कर जब आत्मा दुख की वेदना के द्वारा भी सुख और हर्ष का अनुभव करने लगती है तभी भावात्मक रहस्यवाद का चरम उत्कष काव्य म आता है। भावनात्मक रहस्यवाद के चित्र प्रस्तुत करने वाले कवि म लौकिक सुख दुख को अलौकिक म लीन करने की क्षमता होना अनिवाय है। महादवी जी ने स्वय लिखा है—' नीरजा' और 'साध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिससे अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुख मे सामजस्य का अनुभव करने लगता है।' यही कारण है कि नीरजा मे व्यक्त वेदना के गीत आनद का पथ प्रशस्त करत हैं दुख का नही। यह वदना अलौकिक होकर आत्मानन्द मे पूण हो जाती है और प्रियतम के पास ले जाने मे सहायक होती है। नीरजा' का पहला गान जिस अश्रु नीर को लेकर अवतीण होता है वह दुख से आविल सुख म पकिल है। वह जीवन पथ का दुगमतम तल, अपनी गति से कर सजल सरल' युग तपित तीर को शीतल करता है। कौन तुम मेरे हृदय मे गीत लिखत हुए भी इसी प्रकार की वेदना के मधुर रूप को अकित किया गया है। 'पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय मे ? कहकर वेदना द्वारा ही उसकी प्राप्ति कही गई है। वेदना और दुख की स्थिति को महादेवी जी सदव उच्च स्थान देती हैं। दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे ससार को एक सूत्र म बाँध रखने की क्षमता रखता है। दुख के आध्यात्मिक रूप को उन्होंने अपनी कविता म मुखरित किया है। प्रियतम के आह्वान मे भी दुख माग का सकेत इस बात का द्योतक है कि वे दुख का त्याग उत्सग और समपण का साथी-सगी मानती हैं।

दुखवाद नीरजा के गीतो म जहाँ कहीं व्यक्त हुआ है वहाँ लौकिक सीमाओ से ऊपर अलौकिक आनन्द-पथ को प्रशस्त करता हुआ ही है—

तुम दुख बन इस पथ से आना!
शूलो मे नित मृदु पाटल सा खिलने देना मेरा जीवन,
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना।

नित जलता रहने दो तिल तिल अपनी ज्वाला मे उर मेरा,
इसकी विभूति मे फिर आकर अपने पद चिह्न बना जाना।
तुम दुख बन इस पथ से आना !

दुख मे अपने अस्तित्व का लीन करके आत्मान द लाभ करना ही जीवन की सार्थकता है। 'मिटने वालो की बेसुध रगरलियाँ' ही विश्व मे सौरभ, सुख, आलोक और हास्य की सृष्टि करती हैं —

'मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू लड़ियाँ देखो
मेरे गीले पलक छुओ मत मुर्झाई कलियाँ देखो'

उपर्यु क्त पक्तियो म इसी भाव की सु दरतम व्यजना है।

इस दुख से सतप्त होने पर आत्मा की तितिक्षा इतनी हो जाती है कि वह सब-कुछ सहने म अपने को समर्थ पाती है, मत्यु का भी भय उसे रचमात्र आतकित नही करता। ससार की समस्त विभीषिकाओ पर विजय पाकर परमात्मा के मिलन के लिए उन्मुख आत्मा सतत अपने पथ पर अग्रसर होती रहती है —

कमलदल पर किरण अकित चित्र हू मैं क्या चितेरे ?
है युगा का मूक परिचय इस दश स इस राह से ,
हो गई सुरभित यहाँ की रेणु मेरी चाह से
नाश के निश्वास से मिट पायेंग क्या चिह्न मेरे ?
नाच उठते निमिष पल मेर चरण की चाप से ,
नाप ली निस्सीमता मैंने दृगों की माप से ,
मृत्यु के उर मे समा क्या पायेंग अब प्राण मेरे ?

प्रिय को अद्वत भाव के साथ अपने भीतर बाहर समाविष्ट पाकर साधिका को उसकी पूजा अर्चा का उपक्रम आडम्बर प्रतीत हाता है। अपने जीवन को ही वह असीम का सुन्दर मन्दिर मानती है और फिर 'क्या पूजा क्या अर्चन रे !' कहकर इस बाह्याडम्बर की उपेक्षा करता है। सचमुच ही नीरजा क विरह, दुख, वियोग और अद्वतपरक गीतो म एक एसी दीप्ति है जो एक साथ मानस को आलाक स परिपूर्ण कर देती है। जैसे रात्रि के तमाच्छन्न आकाश म उल्का का प्रकाश सहसा फलकर उजियाले की दिव्य छटा दिखाता है वस ही इन गीतो का आलोक भी, जहाँ कही गम्भीर चिन्तन म कवयित्री नही उतरी है, वहाँ काव्य क परम सौन्दर्य का दर्शन कराता है।

नीरजा म महादेवी जी की चिन्तन दिशा म अवश्य उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है। आत्मा और परमात्मा क अस्तित्व के साथ इसम प्रकृति या विश्व का अस्तित्व भी रागात्मक सबध स्थापित करता हुआ दृष्टिगत होता है। द्वतरहित होकर

ही सकल्प विकल्प की द्विविधा मिटती है। जब कोई भिनता नहीं रह जाती तब फिर यह जड चेतन सभी तद्रूप लगते हैं —

यह क्षण क्या द्रुत मरा स्पन्दन,
यह रज क्या नव मेरा मृदु तन
यह जग क्या लघु मरा दपण,
प्रिय तुम क्या चिर मेरे जीवन !'

'नीहार' और 'रश्मि' की कविताओ म प्रकृति उनके साथ सहानुभूति प्रकट करती थी किन्तु 'नीरजा' म आकर कवयित्री को विश्वास हो चला है कि उसके प्रिय के आगमन की बला सन्निकट है। उनके आगमन स पहले चिर-सुहागिनी का आभरण उन्हे अपने अङ्ग प्रत्यङ्ग पर सजाना है। अत वह वसन्त रजनी को शृगार करने के लिये उत्साहित करती है— प्रकृति की वसन्तकालीन छटा का भी इसी प्रसङ्ग में चित्रण कवयित्री ने किया है —

'तारकमय नव वेणी बन्धन
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मिवलय सित घन अवगुण्ठन
मुक्ताहल अभिराम बिछादे चितवन से अपनी
पुलकती आ वसन्त रजनी।'

नीरजा की मूल भावना का यथाथ परिचय देने वाली मधुर-मधुर मेरे दीपक जल कविता है। इस गीत में दीपक कवि के व्यक्तित्व का प्रतीक है। अपने सुकुमार कोमल शरीर को, अपने जीवन के प्रत्येक अणु को दीपक की वर्तिका की भाँति जलाती हुई कवयित्री अपने प्रियतम का पथ आलोकित करना चाहती है। अपने को माम की भाँति गलाकर आलोक फैलाने वाली दीपशिखा म विश्व-कल्याण और ससार-सवा का जो उदात्त आदश दृष्टिगत होता है वह काव्य का ही नही, ससार का आदश है —

'युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
सौरभ फला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन,
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल।'

भावपक्ष के साथ ही 'नीरजा का काव्य-सामग्री बहुत समृद्ध है। प्रकृति के अनेक सुन्दर दृश्य चित्र, रजनी और दिवस के वणन, जहाँ हमारी भावनाओं को उत्तेजित और अनुभूति का तीव्र बनाते हैं वहाँ साथ ही-साथ प्रकृति वणन के भी सुन्दरतम

डॉ० भालचन्द्र तैलग

२३

'नीहार' पर नीहारिका दृष्टि

आदिम नहीं प्रथम

'नीहार' की रचना को कवि सम्राट अयोध्यासिंह उपाध्याय ने सुश्री महादेवी वर्मा का आदिम ग्रन्थ कहा है परन्तु इसे आदिम न कहकर प्रथम कहना ही उचित होगा। कारण यह कि नीहार की रचना छायायुगीन महादेवी वर्मा की प्रथम प्रकाशित रचना है और इसमें तत्कालीन ऐतिहासिक तथा साहित्यिक उन्नयन के संकेत और सदर्भ मिलते हैं। छायावाद की भावभूमि वैचारिक भूमि नई भास्वर चेतना और उसका सास्कृतिक परिवेश स्पष्ट सूचित करता है कि 'नीहार' को सुश्री महादेवी वर्मा का आदिम ग्रन्थ नहीं, उनकी प्रथम रचना मानना होगा।

प्रथम संकलन और प्रथम प्रकाशन

'नीहार' में सुश्री महादेवी वर्मा के उन गीतों का संकलन है जिनकी रचना सन १९२३ से १९२९ तक हुई थी और जिन्हें स्वयं कवयित्री ने हृदय की मुग्धता के साथ अपनी कलकण्ठ माधुरी दी थी और जिन गीतों को उन्होंने अपनी संगीतरीति तथा संगीति प्राप्ति का सौभाग्य प्रदान किया था। उन गीतों के मधुर भावों का वह मुखर रूप, उनके निर्मल और आकुल अन्तर की वे अभिव्यजनाएँ उन मुक्तकों की वह नवीन लय, उन छन्दों का वह मधुरिम संगीत अब सवदा के लिए विगलित होकर मौन में आश्वस्त है। 'नीहार' उस छायावाद का प्रथम शुद्ध निष्पादन है। भारत के तत्कालीन राष्ट्रीय जागरण के प्रभाती स्वर तथा उस आन्दोलन की नयी ऊर्जस्वित चेतना नीहार के इस छन्द में है —

मैं कम्पन हूँ, तू करुण राग
मैं आँसू हूँ, तू है विषाद
मैं मदिरा तू उसका खुमार
मैं छाया, तू उसका अधार
मेरे भारत मेरे विशाल,
मुझको कह लेने दो उदार
फिर एक बार, बस एक बार।

यौवन की उत्साह भरी उमंग उद्वेलन की विवशता भरी कसक, भारत को स्वतन्त्र कर लेने की चेतन भावना इस सम्पूर्ण गीत में आतप्रोत है। गीत के अन्तिम चरण 'फिर एक बार, बस एक बार' की लय में तथा 'मैं और तू' के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध में निराला की-सी ध्वनि गूंजती है। एक अन्य गीत लें —

विधु की चाँदी की थाली मादक मकरन्द भरी सी।
जिसमे उजियाली रातें लुटतीं घुलतीं मिसरी-सी॥

इसमें प्रसाद की कल्पना खेलती सी नजर आती है। तथा—

जीवन का मधु बेंच रही हो, मतवाली आँखों में घोल।
क्या लोगी? क्या कहा सजनि, इसका दुखिया आँसू है मोल।

इसमें पंत के व्यापार और विनिमय की प्रतिध्वनि सी सुनाई पड़ती है। और तो और 'नीहार' की इन पंक्तियों

विश्व में हूँ फूल तू सबके हृदय भाता रहा,
दान कर सर्वस्व फिर भी हाय हर्षाता रहा।

में द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता की पुरानी बातें भी याद आ जाती हैं। 'नीहार' के इन प्रकाशित कविताओं के संकलन में तत्कालीन ऐतिहासिक संकेतों के साथ ही साथ तत्कालीन साहित्यिक वातावरण एवं उस काव्यान्दोलन के अनुकूल और अनुरूप अनेकानेक उपस्थितियाँ अंकित हैं, जिन्हें देखकर तथा सुनकर 'नीहार' को 'आदिम ग्रन्थ' न कहकर इसे सुश्री महादेवी वर्मा के गीतों का प्रथम प्रकाशन ही मानना चाहिए।

निर्माल्य का विसर्जन

'नीहार' की सर्जना महादेवी की आत्मानुभूति तथा आत्माभिव्यंजना का प्रथम निर्माल्य विसर्जन है—अपने प्रियतम के चरणों पर 'नीहार' की ये प्रथम पंक्तियाँ

निशा की धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधु मदिरा का मोल

निशा के इन मनोहर व मनोरम रूपचित्रों के ये रंग, ये सरल और वंकिम रेखाएँ उनके व प्रणयस्य प्यार और मृदु कामकेलि एक नया आरम्भ प्रस्तुत है जिसमें उन्मीलन है ... रसमय है जिज्ञासा है—यहाँ से तो छाया नयी भावभूमि के बंधन ... का सौन्दर्य-चेतना व्यक्त के प्रमपरक ... से उद्भुद होती है। ... ही इन छन्दों की अपना भाव का सम्बन्ध जुड़ता-सा नजर

है। प्रणय की यह साधना 'नीहार' के गीतों की इन पक्तियो से आरम्भ होती हुई दृष्टिगोचर होती है —

आज आये हो हे करुणेश, इन्हें जो तुम देने वरदान,
गलाकर मेरे सारे अ ग करो दो आखो का निर्माण।

इन दो वरदान प्राप्त आँखो से कवयित्री ने देखा इस विश्व सु दरी के रूप को, मानसी चेतना को और उसके आध्यात्मिक आभास को। यह व्याप्ति 'नीहा ' के इन चरणा मे देखिये —

उदधि नभ को कर लेगा प्यार, मिलेंगे सीमा और अनन्त।
उपासक ही होगा आराध्य एक होंगे पतभार वसन्त।

ज्योति की रगीनी को अपनी कनीनिका म भर लेने पर तो विश्व-व्याप्त रगीनी को और कण कण बिखरे हुए दीप्त सौन्दय को समेट कर अपनी झोली मे सँजो लेना ही वह मन व्यापार है जिसे क्षणानुभूति की सज्ञा दी जा सकती है। प्रकृति मे बिछली और बिखरी सौन्दयसत्ता ही तो वह नीहारिका दीप्ति है जिसे अपने पात्र म उँडेलकर पी लेने की साध महादेवी की एक अपनी प्यास है। 'नीहार' की इन पक्तियो को जब मैंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कवि सम्मेलन मे उनकी कलकण्ठ माधुरी स आज से लगभग ३७ वष पहले सुना था ऐसा ही अनुभव हुआ था। वे पक्तियाँ थी —

इन हीरक के तारो को कर चूर बनाया प्याला,
पीडा का सार मिलाकर प्राणो का आसव ढाला।

सौन्दय की यह अ तमुखता रहस्योन्मुखता का आरम्भ है। अनुभूति ने जहाँ कल्पना को हृदयगम किया है वहाँ कल्पना ने अनुभूति को सँवारा है। नीहार' मे वह कल्पना सूत्र मिलता है जिसमें पिरोये गये मुक्तकों की रंगीन छाया मन को अपने सहज आकषण से स्फुरित करती है। ये पक्तियाँ हैं —

घूघट पट से झाक सुनाते, ऊषा के आरक्त कपोल,
जिसकी चाह तुम्हें है उसने छिडकी मुझ पर लाली घोल।

अथवा

इन ललचाई पलकों पर, पहरा जब था व्रीडा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीडा का।

प्रणय और मिलन के अभिमुखो की अनुभूति 'नीहार' का वह उन्मुक्त द्वार है जहाँ से महादेवी की वेदना नहीं वेदना का विवृति नही प्रत्युत वेदना की विवृति की विशदता का निदशन होता है। मेरा तात्पय यहाँ यह है कि वेदना शब्द म शारीरिक पीडा का कोरा अथ आ घमकता है वेदना की विवृति से अथ मे व्यापकता अवश्य आती

है, परन्तु अन्तरात्मा की वह स्वीकृति नहीं आती जिसमें महादेवी के प्राण बसते हैं। इस विशदता में उस कल्पना सुख का विभावन है जिसमें भावनाओं का निरन्तर अवसान नहीं होता, रमणीयता का ह्रास नहीं हो जाता, मन व्यापार को नादित्य समाप्त नहीं कर देता वरन् मानसिक प्रक्रिया को एक अपूर्व आह्लाद मिलता है और मिलता है भावों के अन्तस्तल की आकुलता को आवेग। इसे यदि वेदना की विवृति विशदता न कहना चाहें तो इसे 'वेदना की विशद विवृति' अवश्य कहें —

विकसते मुरझाने को फूल,
उदय होता छिपने को चन्द।
शून्य होने को भरते मेघ,
दीप जलता होने को मन्द।
यहाँ किसका अनन्त यौवन
अरे अस्थिर छोटे जीवन।

वेदना की विशद विवृति की झलक हम 'यौवन' 'जीवन' अथवा अन्यत्र राग और 'प्राण' जैसे शब्दों में आकुंचित विकुंचित होती हुई दृष्टिगोचर होती है। वेदना की विशद विवृति का कल्पना सुख निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए —

वेदना मधुमदिरा की धार
अनोखा एक नया संसार।

और अन्त में इन पंक्तियों में देखें —

जहाँ विष देता अमरत्व, जहाँ पीड़ा है प्यारी मीत,
अश्रु हैं नयनों का शृंगार, जहाँ ज्वाला बनती नवनीत
मृत्यु बन जाती नवजीवन, वहीं रहता नीरव भाषण।

यही तो भावों की रसात्मकता है और यही महादेवी की आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति है। वेदना का विशद विवृति ही महादेवी के निर्माल्य का विसर्जन है। 'नीहार' उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

वस्तु, व्यापार, भाव और संकेतों की संश्लिष्ट योजना-शैली

निश्वासों का नीड़ निशा का बन जाता जब शयनागार
लुट जाते अविराम छिन्न मुक्तावलियों के बन्दनवार
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार
आँसू से लिख लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।

इस सन्दर्भ में यहाँ दो व्याख्याएँ इन विद्वान आलोचकों की उद्धृत करना उपयुक्त समझता हूँ जिन्होंने इसे विराट कल्पना तथा सरल और सरस कविता के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी जी की व्याख्या है

आकाश म रात्रि के समय अचानक बादल छा गय हैं और पानी भी बरसने लगा है। इसी अवस्था की कल्पना यह जान पडती है। अथवा यह राज्य त का कल्पना है। रात्रि के मुक्तावलियो के अभिराम व न्दनवार तारिका पक्ति छिन्न होकर लुप्त गय हैं निश्वासो का नीड उसका शयनागार बन गया है, इसका इतना ही अथ मेरी समझ म आ पाता है कि रात्रि दु खपूण निश्वास ले रही है तारे बुझ रह हैं, बू दे गिरने लगा हैं वही मानो बुझत तारो के नीरव नयनो का हाहाकार और उसके आसू हैं जिनके द्वारा यह लिखा जा रहा है—ससार कितना अस्थिर है।[1]

पडित जानकीवल्लभ शास्त्री इन्ही पक्तियो की व्याख्या इन शब्दो म करत हैं —

निस्स देह यह वणन निशावसान का है। बादल के छा जाने मे और पानी क बरसने लगने से इसका कोई सम्ब ध नही है। कवयित्री निशा के ऐश्वय की क्षण भगुरता से विश्व की नश्वरता का निष्कष निकाल रही है। कहती हैं कि निशा सु दरी का वासगृह जब निश्वासो का नीड बन जाता है चित्रसारी की सारी भव्यता जैसे एक घासन म सिमट जाती है सवेरे सवेरे का कुहरा या छाता चला जाता है कि शयनागार की आकाश सी प्रशस्तता और चमक दमक का कही पता तक नही लगता। यह प्राकृतिक जगत का कुहासा भावजगत का उच्छवास निश्वास है। वासकसज्जा जैसी उमग तरगो भरी निशा सु दरी ने जो ऐ वय गर्वित स्वप्न सँजोए थे वह क्रम क्रम से उच्छवासो म उभरते गये निश्वासो म विलीन होते गय और अब उस छविवेश में उच्छवास निश्वास ही शेष रह गय हैं कुहरा कुहरा भर दिखता है। यह तो हुई अतग ह की तसवीर, और बाहर जो मोती की लडियो जमी गुथी गुथी तारावलियो के व दनवार तन हुए थ जिनसे वह निलय निवास वासगृह की आभा से मण्डित था वह भी (जहा तहाँ स तारो के टूटत जाने के कारण) छिन्न भिन्न होत लुप्त गये, खत्म हो गय। यहा ब द वार वाली नखतपाती अपेक्षाकृत दूरतर प्रदेश मे टिमटिमाने वाली समझी जानी चाहिए क्योकि आगे की पक्ति मे नयनतारा का स्पष्ट उल्लेख है। वे प्रकाशबिन्दु सी तारिकाएँ तो जसे लुप्त गई और ये नयनतारे बुझते बुझने से अब भी देखे जा सकते हैं। (व जसे मोती के पिरोय दाना सी थी जो किसी रूप के स्वागत के निमित्त उत्सुक आँखों से चिर प्रतीक्षा के पश्च त भी उसके न दिखने पर, टूटे हुए ब दनवार की तरह बिगलित अश्रुकण बनकर बिखर गई कि तु ये तारे आँखो की पुतलियाँ जसे हैं जो अपने सामन ही समस्त वभव को उजडते देख म्दमलिन पड गय हैं) फिर नयनो का शालीनता तो यह है कि सब कुछ देख-सुनकर वे नीरव हैं भीतर वदना तरगायित है मगर बाहर अजब सी खामोशी है। व चीखते चिल्लाने नही, प्रकृति म शान्ति उत्प न करने वाले तारे नहीं लगाते खामोश आँसुआ म फूट पडत हैं। इस

[1] बीसवीं शताब्दी, (१६६२) पृष्ठ १६८

प्रकार उस निशा-सुन्दरी के चुमते हुए तारो रूपी नीरव नयनों का हाहाकार शबनम के आंसुओ से जसे यही लिख जाता है कि हाय रे, यह ससार कसा क्षणभगुर है ।'

'नीहार' के गीतो की इस सश्लिष्ट योजना शली म काव्य का अ तरग सौ दय निहित है । मेरी दृष्टि म तो 'नीहार' के ये गीत क्लिष्ट न होकर सश्लिष्ट हो गये हैं सरल न होकर तरल हो गये हैं । इन गीतो म अ तमन के सवेगो की वीथियां खुलती हैं तथा भावो की वीथियां लहराती हैं ।

•

———

१ प्राच्यसाहित्य, पृष्ठ ५४

डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी

२४

'रश्मि' का अन्तर्दर्शन

किसी भी साहित्यिक विधा, और विशेष रूप से काव्य मे जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता को अस्वीकार नही किया जा सकता परन्तु जीवन की समग्रानुभूति की तह मे पठकर सवेगात्मक धरातल पर अपने दृष्टिक्रम का प्रदर्शन नयी भावभूमियो का अन्वेषण एव अभिव्यक्ति तथा कोरी दार्शनिकता के मोह को न सवरण कर सकने की असमर्थताजन्य दुरूहतापूर्ण विवेचना मे पर्याप्त अन्तर है। साहित्यकार—वह कवि भी हो सकता है—के 'एप्रोच' तथा दार्शनिक के खण्डन मण्डन को एकीकृत करने का प्रयास साहित्यिक शैथिल्य का द्योतक तो होगा ही, साथ ही साथ साहित्य और दर्शन की पद्धतियो मे भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट प्रभावान्विति एव भाव सगति मे भी व्यवधान उपस्थित करेगा। काव्य और दर्शन के क्षेत्र एव सम्प्रेषण पद्धतियो मे दो ध्रुवो का अन्तर है। दार्शनिक ग्रन्थो एव चिन्तनात्मक साहित्यिक कृतित्व मे पहला अन्तर है भावबोध के आयामो और बाह्य परिवेश के मूतन का—दार्शनिक सृष्टि के गत्यावरोधस्वरूप स्थिर बाह्य वास्तविकता एव ऊपरी प्रत्याभासो तक ही अपनी दृष्टि को सीमित कर देना है, जब कि साहित्यकार जीवन की तह मे पठकर अनुभूतियों को सवेगात्मक और गत्यात्मक धरातल पर प्रस्थापित करने का प्रयास करता है। साथ ही साथ दार्शनिक तार्किक पद्धति का प्रयोग अधिक करता है और साहित्यकार अनुभूत सत्यो पर आधारित भावात्मक दृष्टिकोण का प्रसारक होता है। विश्व के सभी महान् साहित्यकारो का कृतित्व इसके प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। विदेशी काव्य में शेक्सपियर या दान्ते के कृतित्व की महानता केवल गृहीत दार्शनिकता—सेनेका मोण्टेन या सेंट थामस के दर्शन को ज्यों का त्यों अभिव्यक्त करने के कारण न थी। तुलसीदास या प्रसाद भी केवल दर्शन के विभिन्न सिद्धान्तो की व्याख्या तक सीमित रहकर प्रथम श्रेणी के कवि न हो सकते थे। चारों ही कवियो ने अपने युग की सवेगात्मक स्फूर्ति की सफल अभिव्यक्ति की, और शायद इसीलिए उनका कृतित्व उच्च स्तर का है। काव्य मे कवि विशेष की सवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का अकन, जीवन के प्रति उसकी भावधारा की मार्मिक अभिव्यक्ति तो अवांछनीय नहीं है परन्तु दार्शनिक की सी तर्क बुद्धि या विश्लेषण सामर्थ्य की कोई गुजाइश नहीं। सुप्रसिद्ध कवि और समीक्षक टी० एस० इलियट के शब्दो में 'काव्य दर्शन, धर्म

या तत्व चिंतन का स्थानापन्न नहीं हो सकता।' उसकी अपनी अलग क्रिया है। वास्तव में हम दर्शन को संकुचित अर्थ में न ग्रहण कर एक व्यापक अर्थ देना होगा। यदि हम यह कहें कि दर्शन से तात्पर्य है विश्व के पुनर्दर्शन या पुनरवलोकन की चेष्टा तो अनेक साहित्यिक कृतियाँ अधिकांश दर्शन-ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक सफल मानी जायेंगी। साहित्यकार और विशेषरूप से कवि किसी भी विचारधारा का कल्पनाशील या सर्वग्राही संवाहक ही कहा जा सकता है। महादेवी जी के सम्पूर्ण कृतित्व और विशेषतः 'रश्मि' के अन्तर्दर्शन को हम इसी परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। 'रश्मि' में उन्होंने कहाँ तक अपनी संवेदनात्मक दृष्टि के माध्यम से जीवन की किसी निश्चित दिशा या धारा का सफल निर्देशन किया है? क्या वे 'रश्मि' में सोद्देश्य अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील रहने पर भी दर्शन की तर्क या विश्लेषण पद्धति तक ही अपनी सीमा बाँध चुकी हैं या काव्य प्रतिभा के माध्यम से जीवन की समग्रानुभूतियों पर आधारित भावावेगमयी चिन्तन सामर्थ्य का परिचय दे सकी हैं।

'रश्मि' का कृतित्व उपनिषद, वेदान्त तथा बौद्ध दर्शन से प्रभावित होने पर भी पूर्णरूपेण इनका ही भावानुवाद नहीं कहा जा सकता। महादेवी जी ने व्यापक दार्शनिक पूर्वपीठिका पर रश्मि के कृतित्व को आधारित करने पर भी अपने चिंतन का स्वतन्त्र अस्तित्व रखा है। रश्मि की कुछ कविताओं की भाव भूमि बौद्ध दर्शन से अनुप्रेरित प्रतीत होती है—बुद्ध के करुणावाद की सफल अभिव्यक्ति 'रश्मि' के कृतित्व का एक अंग कही जा सकती है। परन्तु बौद्ध दर्शन की अन्तर्प्रेरणाओं से प्रभावित होने पर भी महादेवी ने अपने ढंग से ही प्रत्येक समस्या पर विचार किया है। हम कह सकते हैं कि बुद्धि की अन्तर्प्रेरणाएं भी महादेवी के मौलिक चिन्तन को शिथिल नहीं कर सकी हैं। बुद्ध ने व्यक्तित्व की समाप्ति को ही अन्तिम लक्ष्य या निर्वाण माना—व्यक्तित्व की निर्विशेषता ही माना उनके दर्शन का अभिन्न अंग बन गई। महादेवी जी ने बुद्ध के विपरीत व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य को 'रश्मि' में मुख्य स्थान दिया और व्यक्तित्व भी अपनी सम्पूर्ण गरिमाओं से हीन अत्यन्त लघु। इस दृष्टि से महादेवी का भाव बोध या संवेदनशीलता बहुत कुछ इधर की नयी कविता से सम्बन्ध-सूत्र जोड़ती-सी प्रतीत होती है—उनकी साधिका भी अपनी उपलब्धियों के प्रति पूर्णरूपेण आश्वस्त है। इस प्रकार उपलब्धियों के सन्दर्भ में व्यक्तित्व की लघुता पर गर्वानुभूति रश्मि की विशेषता कही जा सकती है। महादेवी में भी उस संकोच का बहिष्कार सा दृष्टिगोचर होता है जो व्यक्ति को अपनी संभावनाओं के प्रति मनन के लिए बाध्य करने से रोकता है। नयी कविता में विशेष रूप से व्यक्तित्व की लघुता या बौनेपन पर गर्वानुभूति प्रकट करने का स्वर धर्मवीर भारती के काव्य में उपलब्ध होता है। इस यों कहा जा सकता है कि व्यक्ति का अपना सामर्थ्य के प्रति जागरूकता तथा साधना-क्रम पर संकुचित सीमाओं में भी उन्नत संभावनाओं के प्रति प्रतीति महादेवी

जी को धर्मवीर भारती की काव्यानुभूति के अधिक निकट ला देती है यद्यपि दोनों के क्षेत्र में ऊपरी भेद अवश्य है। महादेवी ने 'रश्मि' में अपनी लघुता की कथा का निस्संकोच प्रसारित किया है—वह इस बात से पूर्णरूपेण आश्वस्त हैं कि साधना में उनका लघु व्यक्तित्व 'असीम' को अवश्य ही आकर्षित करेगा। व्यक्तित्व की लघुता उनकी दृष्टि में पराजय अथवा पश्चगामी प्रवृत्तियों की द्योतक नहीं हो सकती —

'पर न समझना देव, हमारी
लघुता है जीवन की हार।'

साधना के बल पर जो स्वर महादेवी में मुखर हुआ है वही धर्मवीर भारती के कवि को भी प्रतीकात्मक ढंग से अपने व्यक्तित्व के प्रति आश्वस्त रहने की प्ररणा देता है। भारती की प्रबल प्रतीति है कि युग की सम्भावनाएँ कभी कभी लघु या बौने व्यक्तित्व की अपेक्षा भी रख सकती हैं—सामाजिक उन्नयन में कभी लघु व्यक्तित्व ही मूल उपकरण बन सकता है।

बुद्ध ने दुःख को अत्यधिक महत्त्व दिया। इन्होंने अमद्रवादी के स्वर में स्वर मिला कर स्वीकार किया कि वास्तव में जीवन की स्थिति दुःखमय ही है, दुःख की न्यूनता को ही हम सुख मान लेते हैं। दुःख और सुख के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी दुःख की अतिशयता ने उन्हें पलायनवाद एवं निराशावाद की ओर ही अग्रसर किया। मथिलीशरण गुप्त की काव्य कृति 'यशोधरा' के बुद्ध स्वयं दुःख से ही आतंकित होकर तपस्वी बन जाते हैं।

महादेवी जी ने सुख और दुःख के सहअस्तित्व को मान्यता देते हुए भी निराशावादी स्वर को मुखर न होने दिया। शायद इसका प्रमुख कारण यह है कि बौद्ध-दर्शन के साथ ही साथ उन पर उपनिषद और गीता दर्शन का भी पर्याप्त प्रभाव रहा है। महादेवी में दुःखवाद की अभिव्यक्ति तीन रूपों में सम्भव हो सकी है एक तो दुःख और सुख के सहअस्तित्व की व्याख्या में दूसरे दुःख को भाव प्रसारिणी सामर्थ्य के प्रतिपादन में, तीसरे मृत्यु से भयभीत न होने की प्रवृत्ति के रूप में। पहले रूप के अंतर्गत महादेवी ने सुख-दुःख के समन्वित स्वरूप का विश्लेषण करते हुए दोनों की समस्थिति स्वीकार की है। इस दृष्टि से महादेवी गीता दर्शन एवं उपनिषदों की विचारधारा के अधिक निकट प्रतीत होती हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इस बात का उपदेश दिया कि सुख और दुःख को समान भाव से ग्रहण कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ—

'सुखदुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व, नैवं पापमवाप्स्यसि॥'

ईशावास्योपनिषद में भी सुख और दुःख की समस्थिति का स्वर मुखर हुआ है—

यस्मिन सर्वाणि भूतान्यात्मवाभूद्विजानत ।
तत्र को मोह क शोक एकत्वमनुपश्यत ॥'

महादेवी ने 'रश्मि' मे सख दुःख के समन्वय की ओर तो सकेत किया ही है, साथ ही साथ नाश और निर्माण को भी एकसूत्र मे अनुस्यूत करने की चेष्टा भी उनम परिलक्षित होती है। इस प्रकार सुख दुःख का चिन्तन उन्हें एक व्यापक धरातल पर मानव की विकास प्रक्रिया का विश्लेषण करने के लिए प्रेरित करता है। सख दुःख का चक्रमण उन्हे परिवतनशीलता के सम्बन्ध मे सोचने के लिए प्रेरित करता है। महादेवी की मान्यता है कि सुख और दुःख की असम्पृक्ति विचारातीत है। प्रकृति प्रतीकों के माध्यम से सुख दुःख की अन्विति का प्रयास उनका प्रमुख काव्य स्वर कहा जा सकता है

' छिपा कर उर मे निकट प्रभात
गहनतम होती पिछली रात,
सघन वारिद अम्बर से छूट
सफल होते जल कण मे फूट!'

सामजस्य के इस स्वर की दृष्टि से महादेवी पत और प्रसाद की काव्यानुभूतियो मे समानता उपलब्ध होती है। प्रसाद ने प्रगीति रचना आसू तथा महाकाव्य 'कामायनी' मे सुख दुःख की समरसता का स्वर मुखर किया। उनकी स्थापना है कि सुख दुःख एक दूसरे से अविच्छिन्न हैं—दोनो की स्थिति सापेक्ष है। एक का अस्तित्व दूसरे के बिना सभव ही नही है—

'दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात।' (कामायनी)

' मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह मिलन का
सुख दुख दोनो नाचेंगे
है खेल आँख का मन का।' (आँसू)

पंत ने भी प्रसाद की ही भांति जीवन सरिता के दो कूल माने हैं—एक दुःख और दूसरा सुख। जिस प्रकार दो सीमाओ में बँधी हुई नदी सतत अविराम गति से प्रवाहित होती रहती है, उसी प्रकार जीवन धारा भी सुख और दुःख के तटो के बीच ही अपनी अवस्थिति स्वीकार किये हुए है। जीवन सरिता का सतुलन दोनो ही पुलिनो की अपेक्षा रखता है। जीवन की एकागी परिणति केवल सुख दुःख के समन्वय द्वारा ही रोकी जा सकती है। जीवन मे सुख दुःख का सापेक्ष महत्व सृष्टि की विकास प्रक्रिया

क सम्ब ध म सोचने का विवश करना है। सुख-दु ख का समन्वय ही मानो आगे चलकर महादेवी को सजन और सहार की व्याख्या क लिए प्रेरित करता है। यहाँ भी हम प्रसगवश एक बात कह दें। महादेवी की भावाभिवृत्ति इतनी बलवती है कि उसके माध्यम स व प्रतीति क स्वर तक सहज ही पहुँच जाती है—विघटन या विनाश का स्वरूप हे निराशावा ी नही बना पाता, क्योकि विनाश म ही सृजन के अमर तत्वो को खोज करने वाली गायिका इस नर्सागक परिणति स्वीकार कर लेती है। महादेवी की नव निर्माण के प्रति इतना गहरा आस्था है कि सहार का वह परिवतन क्रिया स कुछ और अधिक नही मानती। हम इस यो कह सकते हैं कि रश्मि' का महादवी की चितन धारा सुख दु ख के सामजस्य का प्रस्तुतीकरण करते हुए उ ह निर्बाध रूप से जीवन क विकास क्रम की ओर आकृष्ट कर लेती है और यहा पर सृष्टि के अस्तित्व की समस्या स्वय ही सुलझ जाती है, महादवा की अन्वेषण-शक्ति उन्ह निर्माण और विनाश की तह म पठकर जीवन प्रक्रिया के परिवतनशाल स्वरूप का परिचय करा दती है। इस प्रकार दु खवाद क माध्यम से ही उनकी दृष्टि क नये वातायन खुल जाते हैं। महादवी का यह चितन-परिणति बहुत-कुछ सीमाओ तक उन्ह पत, मथिलीशरण गुप्त तथा पाश्चात्य कवि शली की काव्यानुभूतिया क निकट खडा कर देता है। महादवी न उपयुक्त तीनो कवियो के समान विनाश मे नव-सजन के तत्वो का अन्वेषण किया है। उनकी स्थापना है कि विनाश की एक प्रक्रिया अनेक सजनशील सभावनाओ को अन्तर्निहित किए रहती है—

सष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने मे सौ वरदान।

पत और शैली भी नयी सष्टि के लिए उरसग के पक्षधर वह जा सक्त हैं और इसी से मिलता हुआ स्वर है गुप्त जी के 'द्वापर' के बलराम का जो नव विश्व की स्वप्न सहार के आधार पर ही सजा पाते हैं नयी सृष्टि के लिए प्रलय भी प्रेक्षणीय हमको।' महादेवी जी न दु ख और सुख के तुलनात्मक परीक्षण के उपरान्त यह निष्कष निकाला है कि दु ख भाव प्रसारिणी वत्ति है तथा सुख मानव की रागात्मिका वत्तियों का सीमित करने की स्थिति। दूसर शब्दो म, सुख व्यक्ति या समाज को अहम-केंद्रित बनाता है और दु ख भावावेशमयी स्थिति के माध्यम से सकुचित सीमाओं या परिधियो से ऊपर उठकर उसे समाज निष्ठ बनन का प्रेरित करता है। दु ख भाव प्रसार है और सुख भाव अवरोध। इस प्रकार महादेवी जी ने दु ख ी भावभूमि पर वत्तियो के सामाजीकरण का प्रयास किया है। दुख को उन्होंने ऐसी रागात्मिका वत्ति के रूप म स्वीकार किया है जो व्यष्टि का समष्टि का ओर उन्मुख कर सकती है। इस प्रकार व्यक्तिवादी अहम् केंद्रित दा विजडित भावनाओं का उदात्तीकरण या उन्नयन महादेवी न दु ख की भावप्रसारिणी स्थिति द्वारा ही स्वीकार किया है। सुख व्यक्ति के

'आत्म' का सञ्जीवन है और दुःख उसका प्रवाह। दूसरे शब्दों में, दुःख ससीम को असीम के धरातल पर प्रतिष्ठित करने का एकमात्र प्रयास है, क्योंकि ससीम भावों की संकीर्णता का द्योतक है और असीम उसकी उन्मुक्त स्वच्छंद गति।

'दुःख के पद छू बहते झर झर
कण-कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस में वह असीम,
जग को आमंत्रित कर लाता।'

यदि हम यह कहें तो असंगत न होगा कि महादेवी ने सुख और दुःख द्वारा उसी विचारधारा की पुष्टि की है जो प्रसाद के 'महाकाव्य कामायनी' में मनु और श्रद्धा द्वारा संपादित हुई है। मनु व्यक्ति की उसी सुखान्वेषिणी प्रवृत्ति के द्योतक हैं जो उसे 'स्व' से ऊपर नहीं उठने देती। मनु की सम्पूर्ण चेष्टाएँ आत्मसुख तक ही सीमित हैं अपने सुख की उपलब्धि ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य है। प्रसाद ने नाटकीय प्रसंगों के माध्यम से जिस विचारधारा पर प्रकाश डाला है उसी की अभिव्यक्ति महादेवी की 'रश्मि' में अभीष्ट है—सुख की खोज के लिए लालायित मनु समाज की तरफ से आँखें मूँद लेते हैं उसके सुख दुःख के प्रति उनकी सम्पूर्ण संवेदनशीलता ध्वस्त हो जाती है। इसी भयंकर व्यक्तिवाद से उनकी मुक्ति के हेतु श्रद्धा की अवतारणा की गई है। मनु के कथन से यदि हम 'रश्मि' की भावाभिव्यक्ति की तुलना करें तो दोनों में अद्भुत विचार साम्य मिलेगा। महादेवी के अनुसार भी सुखान्वेषी इस सीमा तक अहमनिष्ठ हो जाता है कि बाह्य जीवन से उसका तनिक भी लगाव नहीं रह जाता—

'गर्वित कहता मैं मधु हूँ
मुझसे क्या पतझर का नाता।'

और यही बात मनु के मुख से भी निकली है —

तुच्छ नहीं है अपना सुख भी,
श्रद्धे! वह भी कुछ है।

महादेवी ने इस अहमवादी मनोवृत्ति के विरोध में जिस भाव प्रसारिणी वृत्ति को रखा है, उसकी चर्चा हम कर चुके हैं। प्रसाद ने भी मनु की इस अनिवादी सुखान्वेषिणी वृत्ति के विरोध में श्रद्धा की उदात्त भावनाओं को रख दिया है —

अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है सबका नाश करेगा।
औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।

'रश्मि मे महादेवी ने मृत्यु का आह्वान किया है। ऊपर से देखने पर यह स्वर व्यक्तिपरक गीतकारो भगवतीचरण वर्मा, बच्चन अचल और नरेन्द्र शर्मा की काव्यानुभूति की भ्रान्ति उत्पन्न करता है। व्यक्तिपरक गीतकारो ने प्रणयजन्य असफलता से प्रेरित होकर मृत्यु मुखी दृष्टि को स्वीकार किया था। इधर के प्रयोगवादी काव्य मे भी धर्मवीर भारती और विजयदेवनारायण साही आदि ने जीवन की सर्वव्यापी असफलता से क्षुब्ध होकर निराशा की चरम अभिव्यक्ति के लिए मृत्यु की कामना प्रकट की। इस प्रकार यह नितान्त स्पष्ट है कि व्यक्तिपरक गीतकारो एव प्रयोगवादियों ने असफलता निराशा और पराजय के कारण ही मृत्यु का आह्वान किया। महादेवी ने निराशावादी मन स्थिति म मृत्यु का निमन्त्रण नही दिया। जहा तक पहले रूप का प्रश्न है उनकी समानता रवीन्द्रनाथ टगोर से की जा सकती है। रवीन्द्र न भी मृत्यु को आध्यात्मिक प्रिय का ही दूत माना था— 'प्रभेर दूत के पठावे नाथ कबे।' जीवन-स्वप्न एव प्रशान्ति की आकाक्षा ने भी महादेवी को 'रश्मि म मृत्यु के आह्वान की प्रेरणा दी है। परन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण जीवन की असफलता स उनका यह स्वर प्रेरित नही है—

ज्यो श्रात पथिक पर रजनी, छाया-सी आ मुस्काती,
भारी पलकों म धीरे, निद्रा का मधु ढुलकाती
त्यों करना बेसुध जीवन।

वेदना और अतृप्ति से मोह रश्मि क कृतित्व की विशेषता है। महादेवी म जिस वेदना के प्रति मोह है वह परिस्थितिजन्य विवशता या नियतिवाद की देन नही कही जा सकती। महादेवी का वेदनावाद रहस्यानुभूतियो पर आधारित है तथा सनातन विरह का परिचय देता है। महादेवी तृप्ति के लिए न तो उत्तरछायावादी व्यक्तिपरक गीतकारों की भाति लालायित रहती हैं और न असतृप्तिजन्य विद्रोह का स्वर ही उनम मुखर हो सका है। बच्चन भगवतीचरण वर्मा या अचल क समान उनक गीतिकाव्य म न तो उद्दाम वासनाओ का आवेग है और न असतृप्त तृषा। दूसरी ओर यदि हम महादेवी क अतृप्ति के स्वर से प्रसाद के 'आँसू की तुलना करें तो भी दोनो की भावभूमियो म पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होगा। पहला अन्तर तो यह है कि प्रसाद ने 'आँसू' म वेदना स मुक्ति हेतु अपनी छटपटाहट अभिव्यक्त की है और दूसरे अपरोक्ष रूप से तृषा या पिपासा की स तुष्टि का स्वर भी मुखरित किया है। 'प्रसाद म सयोगाकाक्षा की तीव्रतम अभिव्यक्ति है और महादेवी में मिलन से बचने का प्रयास। रश्मि मे महादेवी न जिस जीवनदर्शन की ओर ध्यान आकर्षित किया है, वह है —अनन्त प्रतीक्षा शाश्वत विरह तथा अमिट असतृप्ति। वह एक ऐसी गायिका के रूप म हमारे सम्मुख आती हैं जो लक्ष्य सिद्धि की अपेक्षा पथ की अनन्तता

में ही अधिक प्रतीति रखती हैं। इस प्रकार सिद्धि की अपेक्षा साधना, लक्ष्य की अपेक्षा पथ, तप्ति की अपेक्षा अतप्ति, मिलन की अपेक्षा विरह और अमर प्रतीक्षा की कामना ही महादेवी म अधिक बलवती है। दूसरे शब्दो मे, हम कह सकते हैं कि शाश्वत तषा या पिपासा ही रश्मि' का अभीप्ट है। प्रसाद' नियतिवाद से विवश होकर जीवन से समझौता करके ही वेदना को अनिच्छ पूवक स्वीकार करने के लिए बाध्य हुए। 'आँसू के अधिकाश प्रसगो मे उन्होने अतृप्तिजन्य उपालम्भ का स्वर ही मुखर किया है। महादेवी का अतृप्ति के प्रति मोह और प्रसाद की सतप्ति की बलवती आकाक्षा का तुलानात्मक अध्ययन इस दप्टि से रोचक है। महादेवी चिर अतप्ति चाहती है, प्रियतम तक पहुचने की भी लालसा को दमित करती है और साथ ही साथ अमर प्रतीक्षा का मोह उन्ह अपनी असफलता निवेदन करने के लिये भी प्ररित करता है—

'मेरे छोट जीवन मे देना न तप्ति का कण भर
रहने दो प्यासी आँखें भरतीं आँसू के सागर।'

महादेवी की इन पक्तियो से जब हम 'आँसू की तुलना करते हैं तो दोनो की भावधारा का अ तर स्पष्ट हो जाता है। प्रसाद तप्त न होने पर क्षुब्ध होकर उपालम का स्वर मुखर करने के लिए बाध्य हो उठते हैं—

लहरो मे प्यास भरी है
है भवर पात्र भी खाली।
मानस का सब रस पीकर,
लुढ़का दी तुमने प्याली।'

महादेवी प्रियतम के सान्निध्य की आकाक्षा का विरोध करती हैं और प्रसाद रूप दशन या मिलन के अभाव मे क्षुब्ध हो उठते हैं। महादेवी प्रियतम तक पहुँचने के सम्पूण प्रयासो की विफलता चाहती हैं क्योकि उनम लक्ष्य तक न पहुचने की साध तीव्र है — पर तुम्हें पकड पाने के सारे प्रयत्न हो फीके।'

'प्रसाद प्रिय के वास्तविक मिलन के अभाव से प्रपीडित हो उठते हैं —

'मादकता से आए तुम
सज्ञा से चले गए थे।
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे उतरे हुए नशे-से।'

प्रसाद और महादेवी की भावभूमियों का यह अन्तर नामन प्रणय प्रसगो के वविध्य क कारण ही अधिक है— प्रसाद मिलन सुख का उपयोग कर चुके हैं जबकि महादेवी की 'रश्मि म सयोग के क्षणो की अवतारणा ही नही की गई। यहाँ प्रसगवश एक बात

और कह दें। महादेवी ने 'रश्मि' म जिस वेदना के प्रति मोह प्रकट किया है, वह निराशाज-य न होकर जीवन के विशाल कमक्षेत्र मे व्यक्तित्व की समस्त शक्ति के साथ सघष करने को प्रेरित करती है। इस दृष्टि से 'अज्ञेय' के उप-यास 'शेखर एक जीवनी' से उनका चि-तन साम्य है। एक वेदना ऐसी होती है जो व्यक्ति को कुण्ठित कर देती है दूसरी ऐसी जो उसे सघष, विद्रोह या नवसृजन के लिए प्रेरित करती है, एक वेदना -यक्ति को ह्रासा-मुख बना देती है और दूसरी ससार के दु ख का अवलोकन कर उसे सम्पूण शक्ति के साथ हटाने को विवश करती है। महादवी और 'अज्ञेय' दोनो का कृतित्व वेदना के दूसरे स्वरूप को ही अधिक महत्त्व देता है। और, शायद इसी कारण अध्यात्म लोक का आकषण भी महादेवी को 'रश्मि' मे जन-जीवन के दु ख से नितान्त दूर नहीं कर सका है। ससति की पी-ा का स्वर निर-तर उनके श्रवणों में पड़ता रहा है, जिसकी उपेक्षा करने की सामर्थ्य 'रश्मि' की महादेवी मे नहीं है—

तेरा वभव देखूँ या
जीवन का क्रदन देखूँ।

'रश्मि' की महादेवी पर उपनिषद और गीता के सववादी दशन का भी प्रचुर प्रभाव पड़ा है। सववादी सम्पूण प्रकृति-व्यापारो मे एक ही अव्यक्त, अज्ञात सत्ता के सौन्दय का दशन करता है। उसे सम्पूण विश्व म एक ही चेतन तत्त्व की दीप्ति विकीण होती हुई दृष्टिगोचर होती है। सववादी प्राय दो रूपो में ब्रह्म का अस्तित्व स्वीकार करता है। एक तो अखिल ससृति मे असीम की रूपराशि को बिखरा हुआ देखकर और दूसरे अपने अन्तस् मे उसकी स्थिति स्वीकार करके। ये दोनो ही रूप 'रश्मि' मे उपलब्ध होते हैं। सम्पूण प्रकृति मे ब्रह्म की रूप माधुरी के ही दशन महादेवी को होते हैं, और इस दृष्टि से उनकी अनुभूति गीता या उपनिषद के अधिक निकट प्रतीत होती है—

वे तारक बालाओं की, अपलक चितवन बन जाते
जिसमे उनकी छाया भी, मैं छू न सकूँ, अकुलाऊँ।

गीता और उपनिषद से इन पक्तियो का भाव साम्य निता-त स्पष्ट है—

सवभूतस्थभूत्मानां सवभूतानि चात्मनि।
वीक्ष्यते योग युक्तात्मा सवत्र समदर्शिन॥

(गीता)

तमेव भान्तमनुभाति सव
तस्य भासा सवमिद विभाति।

(उपनिषद्)

सववाद का यह रूप महादेवी की भाँति 'प्रसाद' की 'कामायनी' में भी उपलब्ध होता है। 'प्रसाद' भी एक ही सत्ता की व्याप्ति सम्पूण विश्व मे स्वीकार करते हैं—
'एक तत्त्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड या चेतन।'

सर्ववाद के दूसरे रूप में अन्तर्गत ब्रह्म का अस्तित्व ससीम में ही स्वीकार किया जाता है। ब्रह्म अपने विराट व्यक्तित्व के साथ ससीम में निवास करता है। इस प्रकार की सर्ववादी भावना अप्रत्यक्ष रूप से समीप की महिमा को भी उद्घाटित करती सी प्रतीत होती है। इस कोटि के सर्ववाद की अभिव्यक्ति कबीर की रहस्य प्रतीतियों में भी सम्भव हो सकी है। कबीर ससीम में ही असीम की स्थिति स्वीकार करते हैं—

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी
तेरे ही नाल सरोवर पानी।

महादेवी ने भी 'रश्मि' में ससीम में ही असीम का समावेश स्वीकार कर साधक के व्यक्तित्व की लघुता में भी गरिमा का आभास पा लिया है—

विश्व में वह कौन सीमाहीन है?
हो न जिसका खोज सीमा में मिला
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं,
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान हो!

वेदान्त के अद्वैतवादी दर्शन, उपनिषदों की आत्मा और परमात्मा की एकता की भी 'रश्मि' के कृतित्व से समानता है। वेदान्त दर्शन के अनुसार आत्मा और परमात्मा में तादात्म्य है, एकरूपता है। उपनिषद् की स्थापना है कि नानात्व का अभाव ही आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रमाण है। छांदोग्य और मुण्डकोपनिषद् में आत्मा और परमात्मा के तादात्म्य या सायुज्य को स्वीकार किया गया है। छांदोग्य उपनिषद् में तो सामान्य रूप से *सिद्धान्त प्रतिपादन किया गया है परन्तु मुण्डकोपनिषद् में* काव्यात्मक धरातल पर आत्मा और ब्रह्म की एकरूपता का उद्घोष है। जैसे नदियाँ समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही आत्मा भी परमात्मा से एकाकार हो जाती है—

'तत्सत्य स आत्मा तत्त्वमसि।'

(छांदोग्य उपनिषद्)।

यथा नद्य स्यन्दमाना समुद्र
स्त उच्छन्ति नाम रूप विहाय।

(मुण्डकोपनिषद्)

अद्वैतवाद की काव्यात्मक व्याख्या कबीर निराला और महादेवी तीनों के कृतित्व में देखी जा सकती है। कबीर आत्मा और परमात्मा में कोई पार्थक्य नहीं मानते। दोनों की एकोक्ति उनके काव्य स्वर की विशेषता कही जा सकती है—

मैं तैं तैं मैं ए द्वै नाहीं।
आपै अकल सकल घट माहीं॥

निराला भी आत्मा और ब्रह्म की एकता को प्रमाणित करते हुए अद्वैतवाद के सिद्धान्त का ही काव्यात्मक प्रतिपादन करते हैं— तुम प्राण और मैं काया।

'रश्मि' की महादेवी कबीर और 'निराला' के स्वर मे स्वर मिलाकर आत्मा और ब्रह्म के एकाकार को ही पुष्ट करती हैं। आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता, एकत्व तथा असम्पृक्ति ही उन्हें अद्वैतवादी विचारधारा के निकट खड़ा कर देती है। आत्मा और ब्रह्म की अविच्छिन्नता 'रश्मि का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है

मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं जसे रश्मि प्रकाश।

'रश्मि' की महादेवी दार्शनिक परम्परा स सम्बन्ध-सूत्र जोड़ते हुए भी, कबीर की रहस्य प्रतीतियो से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी आधुनिक काव्य बोध के आस्वादन की पूर्ति भी करती हैं। इसीलिए कही कही उनकी चिन्तन धारा 'अनेय के कृतित्व या नयी कविता की सीमाओ का भी सस्पर्श करती सी प्रतीत होतीहै।



२५

'नीरजा' का आकुल प्रणय-निवेदन

'नीहार' एव 'रश्मि' के चिन्तन सोपानों पर अग्रसर होती हुई महादेवी 'नीरजा म अनुभूतिमयी होकर भावना की साकार प्रतिमा बन गई हैं। उनके प्रौढ़ चिन्तन की प्रेरणा ने उनकी भावना की पृष्ठभूमि को सुदृढ़ कर दिया है और वे 'नीरजा' की भावमयी रगस्थली म हृदयस्पर्शी क्रीड़ा करती हुई दृष्टिगत होती हैं। इसमे उनकी अनुभूति की वीणा के स्वर झनझना उठे हैं और वे इस काव्यमयी नाटिका की आकर्षक नायिका स्वय बन गई हैं। श्री रामकृष्णदास जी का यह कथन उनकी उपासना पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डालता है - 'उनकी काव्य-वेदना आध्यात्मिक है। उसमे आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन है। कवि की आत्मा मानो विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है।'[1]

विरह मे चिर' रहने वाली साधिका ने पिता की दार्शनिकता एव माँ की भावुकता का उत्तराधिकार अपने विरह-गीतों में मधुरतम रूप म स्पष्टत परिलक्षित किया है। निगु ण रहस्यमय चिरसत्ता के प्रति गाय गए गीतो की मृदुल झंकार ने उनके उपासना मन्दिर को झकृत कर दिया है।

साधना के विकास की तीन प्रमुख अवस्थाएँ हैं—जिज्ञासा विरह मिलन। उपनिषद के अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' की भाँति आराध्य के प्रति जिज्ञासा महादेवी को भी प्रिय की खोज के लिए प्रेरित करती है—'कौन तुम मेरे हृदय मे।'

जिज्ञासु साधना द्वारा उस चरम सत्ता की स्वयवेद्य अनुभूति करता है और फिर जब जीव ब्रह्म के ऐक्य की अनुभूति साधक के व्यक्तित्व में समा जाती है तब वह इन्द्रियातीत आनन्दानुभूति करता है।

'तुम मुझ मे प्रिय फिर परिचय क्या ?' का सन्तुष्टि लाभ कर अभिन्नता का आनन्दानुभव करती हुई उनकी आत्मा अलौकिक अनिर्वचनीय आनन्द-देश की स्मृति म विरहाकुल होकर तडपती है। उनके उपास्यदेव मीरां की भाँति *गिरधरनागर' या* कबीर के निगु ण राम' नहीं हैं अपितु उनका चिरनूतन विराट सत्ता का स्वरूप है—

जिसके काले तिल मे बिम्बित
हो जाते लघु तण औ अम्बर।'[2]

---

१ नीरजा वक्तव्य पृष्ठ ५
२ नीरजा, पृष्ठ ५४

उस आराध्य का सौरभ विश्व को सुरभित करता रहता है। उसकी छवि मेघों का चुम्बन करती है उसकी ध्वनि अचलों को प्रतिध्वनित करती है। उनका प्रिय 'अलबेला' है। यद्यपि वह असीम है, पर महादेवी ने उसे अपने लघुतम जीवन के सुन्दर मन्दिर में सिंहासनासीन कर लिया है। उनकी श्वास उस प्रिय का अभिनन्दन करती है, उसके लोचन मे जल कण उनकी पद रज प्रक्षालन को उमडते रहते हैं। पुलकित रोम के अक्षत एव पीडा का चन्दन लगाकर उपासिका ने अपने स्नेहपूर्ण दीपक-मन' को प्रज्वलित कर दिया है। स्पन्दन की धूप अधरों द्वारा प्रिय का जाप, पलकों के नर्त्य की ताल ने आराधना की मधुरिमा मे चार चाँद लगा दिए हैं। अर्चना का इससे अधिक भव्य रूप और क्या हो सकता है ? उन्होंने सत्य ही कहा है—'क्या पूजन क्या अर्चन रे?

उनकी साधना अन्तर्मुखी है। अभेदत्व म भेद और भेद मे अभेदत्व की प्रतीति अनुभूतिगम्य होती है। ऐसी अनुभूतियाँ सकल्पात्मक भी होती हैं और साधनात्मक भी। इसी के सहारे ससीम म असीम समा जाता है और वह साधक मन असीम ससीम, प्रियतम प्रियतमा, आत्मा-परमात्मा का भेद मिटाकर कह उठता है—

'तू असीम मैं सीमा का भ्रम, काया छाया मे रहस्यमय !
तुम मुझ मे प्रिय फिर परिचय क्या ?'[१]

जहाँ प्रति पल प्रियतम का जन्म हो वहाँ स्वर्ग या मुक्ति भी कुछ नही होती। इस नवीन सत्य की अनुभूति ही उनकी महत्वपूर्ण साधना है—

'रोम रोम मे नन्दन पुलकित
साँस-साँस मे जीवन शत शत
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित
मुझ मे नित बनते मिटते प्रिय
स्वर्ग मुझे क्या निष्क्रिय लय क्या।'[२]

वे उसकी निःसीमता को दृगों से नापकर अमर बन जाती हैं— मृत्यु के उर में समा क्या पायेंगे अब प्राण मेरे ?'[३]

वे अभिन्नता की प्रतीति के क्षण म 'चिर जीवन प्यास बुझा लेने की कामना करती हैं। साथ ही अपने 'लघुतम बन्धन' मे मुक्ति को बाँधने की भी महत्वाकाक्षा करती हैं।

उनकी साधना में वेदना का स्वर अपने प्रबल रूप मे मुखरित हो उठा है। प्रयसी की भाँति वे परोक्ष प्रिय के लिए अहर्निश आकुल रहती हैं। मुस्कराते हुए

१ नीरजा, पृष्ठ ३०
२ नीरजा पृष्ठ ३०
३ नीरजा, पृष्ठ ७२

आकाश को देखकर उनके मन में संकेतात्मक प्रश्न हो उठता है—'अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?'

उनके विस्मित लोचन मोती से उजल जल-कण से छलछला उठते हैं तथा अपने प्रिय की साधना में उनका जीवन 'विरह का जलजात' बन जाता है—जिसका जन्म वेदना में होता है और करुणा में जिसका आवास है। वे अपने इस जीवन-कमल की सार्थकता भी इसी में मानती हैं—

'जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात।'[1]

उनकी आध्यात्मिक विरह साधना का रहस्य ही यह है। कभी-कभी उनका मन खोया खोया सा होकर अज्ञात पीड़ा से सिहर उठता है। वे आतुर होकर पूछ बैठती हैं—

'पुलक पुलक उर सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यों भर भर ?'[2]

वे उस चिरंतन से मिलने को आतुर हो उठती हैं। अपने पलक-पाँवड़े बिछाकर अपने पाहुन का आह्वान करती हैं

'तुम विद्युत बन आओ पाहुन
मेरी पलकों में पग धर धर।'[3]

हृदय में पाहुन के समा जाने पर उनका हृदय गूँगे के गुड़' जैसा अनिर्वचनीय सुख प्राप्त कर लेता है और उनका भावुक हृदय 'जड़ता' की इस दशा को प्राप्त होकर पूछ बैठता है—'आज क्यों तेरी वीणा मौन ?'

अलौकिक क्षणों में असीम सत्ता से अपना अटूट सम्बन्ध स्थापित करती हुई अनुरागिनी महादेवी प्रिय की महानता से अपने को महान समझ गर्वान्वित हो उठती हैं— तेरे वैभव की भिक्षुक या कहलाऊँगी रानी।

उनकी विरह साधना में अश्रु और ज्वाला प्रमुख उपादान हैं जिनके द्वारा वे अपना अमर वन्दना का निरन्तर पालन करती हैं। उनकी पलकों में सुकुमार सपना तथा आँसू के मिस 'प्यार' सतत ढलता रहता है। अन्तर्हित प्रिय के माधुर्य से रस स्नान हो उनकी पीड़ा कसक उठती है—'तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना।'

इसी भाँति उनकी अमर साधना का 'दीपक मन' भी सतत प्रज्ज्वलित होकर

१ नीरजा पृष्ठ २४
२ नीहार पृष्ठ ३८
३ नीहार, पृष्ठ ११

'प्रियतम का पथ भी आलोकित करता रहता है। यहा दीप उनके प्रेम का प्रतीक है—

'अपना जीवन दीप मदुलतर
वर्ती कर निज स्नेहसिक्त उर,
फिर जो जल पावे हँस हँसकर
हो आभा साकार।'[1]

वे 'जलने में ही अपने जीवन की निधि' पाती हैं। उनके नयनों मे आँसू नही हैं अपितु वे तो उनकी साधना के प्रतीक हैं प्रिय की स्मृति के प्रतिरूप हैं—'यह ढुलक रही है याद, नयन से पानी नहीं।'[2]
अपने दृगो मे निराली कालिन्दी बहाकर वे स्वयं 'मधुमास' बन जाती हैं। प्रकृति की चित्रपटी मे उनको साधना और भी निखर उठी है। प्राकृतिक उपकरणो द्वारा वे अपनी वेदना का अनुभव करती हैं। प्रकृति के विभिन्न चित्र उनके भाव को विकसित करते रहते हैं। प्रकृति की अनेक क्रीडाओ मे वे अपने प्रियतम की आँख मिचौनी के खेलो का आभास पाती हैं—

'सिहर सिहर उठता सरिता उर
खुल खुल पडते सुमन सुधा भर
मचल मचल आते पल फिर फिर
सुन प्रिय की पद चाप हो गयी,
पुलकित यह अवनी।'[3]

प्रकृति मे अनन्त प्रियतम की अभिव्यक्ति देखने वाली महादेवी प्रकृति को भी अपने ही प्रेम रग में अनुरंजित देखती हैं—

प्रिय गया है लौट रात।
सजल धवल अलस चरण,
मूक मदिर मधुर करुण,
चाँदनी है अश्रु स्नात।'[4]

वे प्रियतम के आगमन की भावना मे अनुप्राणित हो 'विभावरी को चाँदनी का अगराग लगा माँग को पराग से सजाकर 'प्रिय की पदचाप मदिर' सुनकर मल्हार गाने का आदेश देती हैं। उनके प्रिय चितेरे ने उनके हृदय को इन्द्रधनु की तूलिका से चित्रित किया है—

१ नीहार पृष्ठ ५६
२ नीरजा पृष्ठ १२
३ नीरजा पृष्ठ १३
४, नीरजा पृष्ठ २३

'बादलों की प्यालियाँ भर चाँदनी के सार से,
तूलिका कर इन्द्रधनु, तुमने रंगा उर प्यार से।'[1]

प्रिय के प्रेम से अनुरंजित हृदय विरही साधक बन जाता है। दुःख ही उसका सबसे बड़ा साधन बन जाता है। उनका हठीला मन जब मिलन की कामना करने लगता है तो वे उसे सहलाती हुई मना करती हैं—'मिलन का मत नाम ले।' वेदना के कणों से रिक्त होकर वे फिर आत्मानन्द के मधुर मधु का रसास्वादन करने लगती हैं। आत्मा की आकुलता के साथ साथ वे हृदय की विह्वल प्रसन्नता का अनुभव करती हैं। एक ओर अनन्त सुषमा है तो दूसरी ओर अपार वेदना। दोनों की संगमस्थली ही उनकी उपासना है।

एक ओर वे 'आ मेरी चिर मिलन-यामिनी' में संयोग की उत्कण्ठा अभिव्यक्त करती हैं तो दूसरी ओर प्रिय का भी दुःख के रूप में आह्वान करती हैं—'तुम दुःख बन इस पथ से आना।'[2]

वे यही प्रार्थना करती हैं—

'एक घड़ी गा लूँ प्रिय मैं भी, मधुर वेदना से भर अन्तर,
दुःख हो सुखमय सुख हो दुखमय उपल बनें पुलकित से निर्झर।'[3]

विरही साधक की साधना भी रहस्यमय होती है। वह अपने प्रिय से वरदान रूप में 'मिटने में प्रिय मिलन' का आशीर्वाद चाहती हैं—

'वर देते हो तो कर दो ना, चिर आँख मिचौनी यह अपनी,
जीवन में खोज तुम्हारी है मिटना ही तुमको छू पाना!'[4]

वे अपने नयनों को प्रिय के 'स्नेहांकुर' मानती हैं, साथ ही 'वरदान' भी, क्योंकि वे नयन प्रिय की उपासना के प्रमुख उपकरण हैं। विरह व्यथिता महादेवी भी 'मीरा' की भाँति अपने प्रिय को संदेश भेजने में स्वयं को असमर्थ पाती हैं। वे अपने प्रिय के प्रति नम्रतापूर्वक विरह वेदना व्यक्त करती हैं—

'कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती ?
दृग जल की सित मसि है अक्षय,
मसि प्याले भरते तारक द्वय,
पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर,
सुधि से लिख श्वासों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन पर
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती।

१ नीहार, पृष्ठ ७१
२ नीहार पृष्ठ ४३
३ नीहार पृष्ठ ६३
४ नीहार, पृष्ठ ४६

चिर तन प्रिय की साधिका महादेवी का जीवन वेदना का जीवन है। वेदना की कवयित्री ने इसीलिए विरह साधना द्वारा ही अपने चिर सु दर की अनुभूति जाग्रत की है। आचाय रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो म—'उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इनके हृदय का भाव-केन्द्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाए फूट फूट कर झलक मारती रहती हैं।'[1]

साधक की वेदना मे उसकी प्रणय साधना अन्तर्निहित रहती है पर तु वेदना मे तप कर साधक के प्राण अकलुष और उज्ज्वल हो जात है। तब उसी यक्तिगत वेदना से कल्याणमयी करुणा का ज म होना है। बस करुणा म विश्व समाहित हो जाता है। महादेवी भी अपने प्रिय से 'घन' बनने का वरदान चाहती हैं जो नित्य घिर घिर कर बरसता है अपने लिए नही वरन अपने को मिटाकर जो विश्व को सरसित करने मे अपने जीवन को ध य मानता है—

'नित घिरू झर झर मिटू प्रिय।
घन बनू वर दो मुझे प्रिय।'[2]

विश्व मे करुणा का प्रसार करने वाले गौतमबुद्ध की विश्वकरुणा की प्रेरणा द्वारा वे जागरण कराती हैं—'करुणा के दुलारे जाग', और फिर दोनो के सम वय म सौ दय की प्रतीति कर कह उठती हैं—

'जग करुण-करुण, मैं मधुर-मधुर।
दोनों मिलकर देते रजकण,
चिर करुण मधुर सु दर-सु दर।'[3]

उपासना की क्रमिक प्रौढता, वेदना एव करुणा की अनुभूति के सम्ब ध में श्रीरायकृष्णदास जी का यह निष्कष अक्षरश सत्य प्रतीत होता है—'कवि की वेदना, कवि की करुणा अपने उपास्य के चरण स्पश से पूत होकर आकाश-गगा की भांति इस छायामय जग को सींचने मे ही अपनी सार्थकता समझ रही है।'[4]

महादेवी स्वय भी करुणा के सम्ब ध म अपनी अनुमति कहती हैं—

'दु ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे ससार को एकसूत्र मे बांध रखने की क्षमता रखता है।'

इस प्रकार व्यक्तिगत वेदना की ज्वाला म जलती हुई नेत्रो से अश्रु प्रवाहित करती हुई वे समष्टि साधना की उत्कष दशा 'करुणा तक पहुँच जाती हैं क्योंकि वे जानती है कि उस करुणा की विश्व को आवश्यकता है—

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ७२०
२ नीहार पृष्ठ ४४
३ नीहार, पृष्ठ ८६
४ नीहार, वक्तव्य, पृष्ठ ६

'भिक्षुक सा यह विश्व खड़ा है, पाने करुणा का प्यार,
हँस उठ रे नादान, खोल दे पंखुरियों के द्वार,
रीते कर ले कोष, नहीं कल सोना होगा धूल।
अरे तू जीवन-पाटल, फूल।"

भाव वैभव, वेदना माधुर्य की त्रिवेणी प्रवाहित करती हुई महादेवी 'नीरजा' म 'चिर सुन्दर' के प्रति अपनी आराधना समर्पित करती हुई अपनी तदाकार स्थिति का वर्णन करती हुइ कहती हैं — बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'

'तृप्ति का कण भर न चाहने वाली उपासिका अपने परम धन आँसुओं की माला को विश्व मे लुटाकर विश्व तृप्ति का साधन बन कल्याण की रश्मियाँ बिखेर देती हैं

' जिसको जीवन की हारें, हों जय के अभिनन्दन सी।
वर दो यह मेरा आँसू, उसके उर की माला हो।'

अपनी 'प्यासी आँखों' म 'आँसू के सागर भरने वाली उपासिका महादेवी वर्मा ने नीरजा' मे मधुर साधना का पथ प्रशस्त किया है, चिर तन सत्य अभिव्यक्ति सौ दय तथा करुणा मे साहित्य के सत्य सु दर एव शिव की त्रिवेणी भी प्रवाहित की है।



१ नीहार पृष्ठ ७६
९ नीहार, पृष्ठ ६७

डॉ० रवीन्द्र भ्रमर

२६

मैं नीर भरी दुख की बदली

महादेवी का यह गीत मुझे बेहद पसन्द है। जब भी छायावाद की गीत सृष्टि से मै कुछ थोडी सी सुन्दर रचनाओ का चयन करना चाहता हूँ तो मेरी स्मृतियों के एकान्त में इस गीत की सरस एव करुणापूर्ण रागिनी अनायास झंकृत हो उठती है। व्यक्तिगत दृष्टि से मैं काव्य बोध के एक भिन्न धरातल पर हूँ। समसामयिक हिन्दी कविता की नयी रचना प्रक्रिया म मेरी जो आस्था और गति है उसके परिप्रेक्ष्य मे मुझसे यह आशा करना व्यर्थ है कि मैं छायावादी कविता के अस्पष्ट भावलोक और अतिअलकृत शिल्प विधान से बहुत सहमत हो सकूगा। किन्तु आधुनिक हिन्दी कविता के विकास की दृष्टि स मैं छायावाद क ऐतिहासिक योगदान को किसी भी मूल्य पर अस्वीकार नही कर सकता। विद्यापति से लेकर आज तक की हिन्दी गीत सृष्टि के प्रति यथोचित रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेने की क्षमता मुझम कहीं-न-कही है। और फिर कोई रचना जिस देश काल की हो उस उसी ऐतिहासिक परिवेश मे ग्रहण करना चाहिए अन्यथा उसका समुचित मूल्याकन नही किया जा सकता।

मुझे महादेवी का यह गीत सचमुच बहुत प्रिय है। इस एक ही रचना में मुझे छायावादी काव्य की अनेक विशेषताएँ एक साथ उपलब्ध हो जाती हैं। कल्पना की स्वच्छन्द उडान भावुकता का अनाहत आवेग प्रेम विरह की गहन अनुभूति, प्रस्तुत विषय को परोक्ष रूप से अप्रस्तुत के माध्यम से गोपनीय बनाकर कहने की कला, प्रकृति के साथ एक आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध और अनुभूतियो के अनुकूल उसे जीवन रूप म चित्रित करने की अनूठी भगिमा आदि कुछ बातें छायावाद को अपना अलग का स्वरूप प्रदान करती हैं। काव्य रूप की दृष्टि से छायावाद गीत काव्य का पोषक रहा है। इसमे अतिशय वयक्तिकता को प्रश्रय मिला है और ऐसी व्यक्ति निष्ठ तथा एकान्त अनुभूतियों का अकन करते समय गीत की प्रकृति के अनुसार भाषा की कारीगरी तथा छन्द एव शब्दगत सगीत की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। *'छायावाद की व्याख्या अनेक रूपो म की जाती है। मैं उसे उस अनुराग भाव की कविता मानता हूँ जिसकी अभिव्यक्ति मुख्यत प्रकृति के माध्यम से की गई है और कल्पना भावुकता तथा सवेदन शीलता के व्यक्तिनिष्ठ परिधान के कारण जो स्वत गीतमय हो उठा हो।'* महादेवी

के प्रस्तुत गीत के माध्यम से इन विशिष्टताओं का उद्घाटन किया जा सकता है। यहाँ छायावाद के प्रसंग में एक और चर्चा करना चाहूंगा। मैं रहस्यवाद को भी छायावाद के अन्तर्गत मानता हूं। आधुनिक काव्य में रहस्यवाद छायावाद का ही एक अंश बनकर प्रतिष्ठित हुआ है। छायावादी कवि की वैयक्तिक अनुभूतियाँ भारतीय अध्यात्म का आश्रय ग्रहण करते हुए जब अलौकिक संकेतों की ओर उन्मुख हुई हैं तो रहस्यवाद की सृष्टि हुई है।

महादेवी जी के प्रस्तुत गीत का अंतिम छंद निम्नांकित है—

मैं नीर भरी दुख की बदली!
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली!
मैं नीर भरी दुख की बदली॥

जीवन आद्यन्त दुखपूर्ण है। जीवन दुख का ही पर्याय है क्योंकि जीवात्मा और संसार के बीच किसी स्थायी सम्बन्ध की कल्पना नहीं की जा सकती। जितना कुछ सम्बन्ध दिखाई पड़ता है वह क्षणिक अर्थात मिथ्या है। जिसने कल जन्म लिया उसे आज मृत्यु का वरण करना पड़ेगा। संसार के सन्दर्भ में जीवात्मा का कुल इतना ही इतिहास है जो सचमुच बड़ा दुखद है।

प्रस्तुत छन्द में बदली के प्रतीक द्वारा जीवन की नश्वरता और जीवात्मा के सन्दर्भ में संसार की असारता का काव्यात्मक चित्रण किया गया है। नन्ही सी बदली क्षितिज के किसी कोने से उठकर कुछ क्षणों के लिए आकाश में तैर जाती है, किन्तु आकाश से उसका कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। वर्षा के रूप में उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। कुछ ऐसी ही अवस्था संसार में जन्म लेने वाले प्राणी की होती है। उसे जन्म लेकर मरना पड़ता है। संसार की रमणीयता से आकर्षित होकर उसे अपना बना लेने की आकांक्षाएँ व्यर्थ सिद्ध होती हैं। जीवात्मा उसके नश्वर शरीर को छोड़कर वापिस चला जाता है। इस रूप में यह सारा का सारा जीवन दुखपूर्ण है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि कवयित्री को इस प्रकार की दार्शनिक अनुभूति क्यों हुई? जीवन जैसा है उसे उसी सहज रूप में क्यों नहीं लिया गया? उत्तर कई प्रकार के हो सकते हैं। सम्भव है कि कवयित्री ने उस आध्यात्मिक अवस्था का बोध प्राप्त किया हो जिसके अनुसार जीवात्मा संसार में आने के उपरान्त परमात्मा से विरह की अनुभूति करने लगता है। कहते हैं कि जीव और ब्रह्म तात्विक रूप से एक हैं। बीच में माया का व्यवधान होने के कारण जीवात्मा को संसार में दुख की नाना अवस्थाओं से

गुजरना पडता है। सुख की वास्तविक अवस्था तो तब आती है जब जीव ससार के माया मोह का परित्याग करके पुन परमात्मा से मिल जाता है। भारतीय मिट्टी मे जनमी और पली हुई कवयित्री इस प्रकार के अध्यात्म दर्शन से प्रभावित हुई हो तो क्या आश्चय ! कबीर स निराला तक ऐसे दार्शनिक दृष्टिकोण ने हिन्दी कवियो को प्रगाढ भाव से छुआ है। जीवन को दु खपूर्ण और ससार को असार मान लेने के मूल म एक सम्भावना यह भी हो सकती है कि व्यक्ति के मन को प्रणय, परिणय या लोक व्यवहारगत किसी असफलता स कोई गहरी चोट लगी हो कि निराशा और उदासी ने उसके समस्त व्यक्तित्व को आच्छादित कर लिया हो और वह अपन आप को दुःख का प्रतिरूप समझकर इस वदनामय ससार से मुक्ति की कामना करने लगे। किन्तु यहाँ महादेवी जी और उनकी प्रस्तुत रचना के सन्दभ मे प्रथम कारण ही अधिक तकसगत जान पडता है। महादेवी हिन्दी के मध्ययुगीन सन्त-काव्य की आधुनिक और शायद अन्तिम शृखला समझी जाती हैं—

मेरी पसन्द के क्रम म विचाय गीत का दूसरा, वस्तुत चौथा, छन्द इस प्रकार है—

पथ को न मलिन करता आना पद चिह्न न दे जाता जाना
सुधि मेरे आगम की जग में सुख की सिहरन हो अन्त खिली।
मैं नीर भरी दुख की बदली ॥

जीवात्मा के आवागमन का विधान विचित्र है। आने जाने की प्रक्रिया और गति के सम्बन्ध म किसी को कुछ नही मालूम ! बस इतना होता है कि किसी नये जीव के आगमन के साथ उसकी सासारिक परिधि म सुख की एक लहर व्याप्त हो उठती है। किन्तु यह क्षणस्थायिनी ही होती है। अन्तत जीवात्मा को वापिस लौट जाना पडता है और उसके चल जाने के उपरान्त ससार के लीलापथ पर उसकी कोई भी छाप, कोई स्मृति शेष नही रह पाती। मेघ खण्ड उठता है, घिरता है बरसता है और फिर समाप्त हो जाता है। आकाश पथ पर उसकी कोई भी निशानी बाकी नही बचती। आवागमन का इस सम्पूण प्रक्रिया से जीवन को दु खद स्थिति का बोध हो जाता है। जन्म के समय ससार सुखी होता है तो हो ल। जीव का तो दु ख ही भोगना पडता है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि 'जनमत मरत दुसह दुख होई।' इन अनुभूतियो के मध्य जीवन सचमुच दु खपूर्ण है, बरसन वाले मेघ-खण्ड की तरह अश्रु-जल सिंचित। वेदना विदग्ध !!

दु ख की अनुभूति महादेवी के काव्य का मूल विषय है। उनकी अनेक रचनाओ मे इसकी बहुरगी अभिव्यक्ति हुइ है। उदाहरण के लिये—

(क) तब बुझते तारों के नीरव, नयनो का यह हाहाकार।
आँसू से लिख लिख जाता है, कितना अस्थिर है ससार।

(ख) असम्भव है चिर सम्मेलन।
न भूलो क्षण भंगुर जीवन॥

(ग) वेदना मे जन्म करुणा मे मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात।
विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात॥

(घ) तुम दुख बन इस पथ से आना।
वह सौरभ हूँ मैं जो उड़कर
कलिका मे लौट नहीं पाता
पर कलिका के नाते ही प्रिय
जिसका जग ने सौरभ जाना!!

(ङ) प्रिय! सान्ध्य गगन मेरा जीवन!!

महादेवी की गीत सृष्टि की अधिकांश रचनाओ का यही प्रधान स्वर है। इनमे विरह वेदना और ससार की क्षण भ गुरता का बडे प्रगाढ़ भाव से अकन किया गया है। दुःख महादेवी के काव्य की मूलभूत चेतना है। इसे 'दुखवाद' भी कहा जा सकता है। भारतीय सस्कृति म सम्भवत पहली बार गौतम बुद्ध ने इसका सद्धान्तिक उदघोष किया था। ससार के प्रत्येक पदाथ को अनित्य और नश्वर मानते हुए तथागत ने कहा था कि मानव जीवन म सवत्र दुख ही दुख है 'सब्ब दुक्ख।' उन्होने अपने ढग से इस दुखपूण ससार से मुक्ति पाने का उपाय भी बताया था। बाद म सांख्य दशन भी बुद्ध के दुखवाद स प्रभावित हुआ। मध्यकाल म दविक दहिक और भौतिक तापो का उल्लेख करते हुए हमारे स तो ने दुखवाद क सिद्धात की पुष्टि की और भगवद् भक्ति द्वारा सासारिक कष्टो से मोक्ष पाने का उपदेश दिया। एक सम्प्रदाय नित्य दुखवादियो का निकला जिन्होने कहा कि दुख स मुक्ति मिलना असम्भव है। महादवी के काव्य का इसी नित्य-दुखवाद के सदभ म देखना चाहिए। जीवात्मा निरतर दुख की दारुण अवस्थाओ को भोगता रहता है। महादेवी ने इस सत्य का स्पष्ट साक्षात्कार किया है। उनका दुख एक प्रकार का आध्यात्मिक प्रणयजन्य दुःख है। उन्होंने जिस प्रियतम की अनुभूति कल्पना के क्षितिज पर की है, उसी प्रिय ने अपनी एक चितवन स उनके कवि जीवन म पीड़ा के असीम साम्राज्य की रचना कर दी है—

इन ललचाई पलकों पर पहरा था अब व्रीड़ा का।
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का।
उस सोने के सपने को, देख कितने युग बीते।
आँखों के कोष हुए हैं, मोती बरसा कर रीते॥

जैसा कि मैंने आरम्भ म सकेत किया है, यह कह सकना बडा कठिन है कि महादेवी के काव्य म मिलने वाली इस प्रगाढ प्रणयानुभूति और विरह वेदना का कोई आधार लोकिक प्रेम और विरह की प्रत्यक्ष अनुभूति के बिना अलौकिक अथवा आध्यात्मिक होगा। प्रणयानुभूति का एसा सूक्ष्म एव हृदयग्राही अकन सम्भव नहीं होता।

विचाय गीत के शेप (आरम्भ के) तीन छन्द इस प्रकार हैं—

स्पदन मे चिर निस्पद बसा क्रदन मे आहत विश्व हँसा
नयनों मे दीपक से जलते पलको मे निर्झरणी मचली।
मेरा पग पग सगीत भरा स्वासो से स्वप्न पराग झरा
नभ के नवरग बुनते दूकूल छाया मे मलय बयार पली।
मैं क्षितिज भकुटि पर घिर घूमिल चिन्ता का भार बनी अविरल
रजकण पर जलकण हो बरसी नव जी वन अकुर बन निकली!
मैं नीर भरी दुख की बदली।।

एक पूरा रूपक है। चाहे बदली क अथ म लगा लिया जाये, चाहे छायावाद के अनुसार यह मान लिया जाये कि प्रकृति के एक खण्ड (बदली) का मानवीकरण किया गया है और चाह तो रहस्यवाद का अवलम्ब ग्रहण करते हुए जीवात्मा, परमात्मा तथा ससार के सम्बन्धों की अवतारणा की जाय। प्रथम सन्दभ म बदली अपने स्वरूप गति और अवसान का वणन करती है। दूसरे सन्दम म बदली अपने सजल परिवेश म एक सुकुमार विरहिणा प्रतीत होती है। तीसरा सन्दभ उस जीवात्मा का है जिसने ससार मे आने के उपरान्त दुख की परम अनुभूति अर्जित की है। उसम जो कुछ स्पन्दन और गति है उसक मूल म परमात्मा का निवास है। उसकी वेदना म ससार का विपाद पूण सगीत मुखरित हो रहा है। आँखो मे विरह की दीप्ति है या बिजली की कौंध, किन्तु पलको म अन्तव्यथा के कारण अश्रु निर्झर तरगायित हैं। ऊपर ऊपर से यह ससार कितना मादक है! चारो ओर माया का कसा मनोहर परिवेश है! किन्तु ससार के क्षितिज पर जीवात्मा के उगने और अस्त हा जाने की कहानी अत्यन्त क्षणिक है। जीवन और मृत्यु का दुखक्रम बराबर चल रहा है। न जाने कब समाप्त होगा? शायद कभी न हो। पन्त जा के शब्दो मे "चिर जन्ममरण के आरपार, शाश्वत जीवन नौका विहार!'

महादवी की यह रचना उनके और उनके युग के काव्य का बडा अच्छा प्रतिनिधित्व करती है। सम्पूण छायावाद युग मुख्यत दुख, निराशा और वेदना की अनुभूति का युग रहा है। इसके आध्यात्मिक अथवा काव्यात्मक मूल्य स अलग हटकर एक प्रश्न इसकी सामाजिकता के सम्बन्ध म उठता है। अतिशय वयक्तिकता और घोर

जसा कि मैंने आरम्भ म सकेत किया है, यह कह सकना बडा कठिन है कि महादेवी के काव्य म मिलने वाली इस प्रगाढ प्रणयानुभूति और विरह वेदना का कोई आधार लौकिक प्रेम और विरह की प्रत्यक्ष अनुभूति के बिना अलौकिक अथवा आध्यात्मिक होगा। प्रणयानुभूति का एसा सूक्ष्म एव हृदयग्राही अकन सम्भव नहीं होता।

विचाय गीत के शेष (आरम्भ क) तीन छन्द इस प्रकार हैं—

स्पदन मे चिर निस्पद बसा क्दन मे आहत विश्व हँसा
नयनों मे दीपक स जलते पलकों मे निर्झरणी मचली।
मेरा पग पग सगीत भरा स्वासा से स्वप्न पराग भरा
नभ के नवरग बुनते दुकूल छाया मे मलय बयार पली।
मैं क्षितिज भकुटि पर घिर धूमिल चिन्ता का भार बनी अविरल
रजकण पर जलकण हो बरसी नव जी वन अकुर बन निकली!
मैं नीर भरी दुख की बदली।।

एक पूरा रूपक है। चाहे बदली के अथ मे लगा लिया जाये, चाहे छायावाद के अनुसार यह मान लिया जाय कि प्रकृति के एक खण्ड (बदली) का मानवीकरण किया गया है और चाहे तो रहस्यवाद का अवलम्ब ग्रहण करते हुए जीवात्मा, परमात्मा तथा ससार के सम्बन्धों की अवतारणा की जाय। प्रथम सन्दभ म बदली अपने स्वरूप गति और अवसान का वणन करती है। दूसरे सन्दभ मे बदली अपने सजल परिवेश में एक सुकुमार विरहिणी प्रतीत होती है। तीसरा सन्दभ उस जीवात्मा का है जिसने ससार मे आने क उपरान्त दुख की परम अनुभूति अर्जित की है। उसम जो कुछ स्पदन और गति है उसके मूल म परमात्मा का निवास है। उसकी वेदना म ससार का विषाद पूण सगीत मुखरित हो रहा है। आखो म विरह की दीप्ति है या बिजली की कौंध, किन्तु पलको म अन्तव्यथा के कारण अश्रु निर्झर तरगायित हैं। ऊपर ऊपर से यह ससार कितना मादक है! चारा ओर माया का कसा मनोहर परिवेश है! किन्तु, ससार के क्षितिज पर जीवात्मा के उगने और अस्त हो जाने की कहानी अत्यन्त क्षणिक है। जीवन और मृत्यु का दुखक्रम बराबर चल रहा है। न जान कब समाप्त होगा? शायद कभी न हो। पन्त जी के शब्दों में "चिर जन्ममरण के आरपार, शाश्वत जीवन नौका विहार।

महादेवी की यह रचना उनके और उनके युग के काव्य का बडा अच्छा प्रतिनिधित्व करती है। सम्पूर्ण छायावाद युग मुख्यत दुख, निराशा और वेदना की अनुभूति का युग रहा है। इसके आध्यात्मिक अथवा काव्यात्मक मूल्य स अलग हटकर एक प्रश्न इसकी सामाजिकता क सम्बन्ध म उठता है। अतिशय वयक्तिकता और घोर

(ख) असम्भव है चिर सम्मेलन।
न भूलो क्षण भंगुर जीवन॥

(ग) वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात।
विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात॥

(घ) तुम दुःख बन इस पथ से आना।
वह सौरभ हूँ मैं जो उड़कर
कलिका में लौट नहीं पाता
पर कलिका के नाते ही प्रिय
जिसको जग ने सौरभ जाना!!

(ङ) प्रिय! सान्ध्य गगन मेरा जीवन!!

महादेवी की गीत सृष्टि की अधिकांश रचनाओं का यही प्रधान स्वर है। इनमें विरह वेदना और संसार की क्षण भंगुरता का बड़े प्रगाढ़ भाव से अंकन किया गया है। दुःख महादेवी के काव्य की मूलभूत चेतना है। इसे 'दुःखवाद' भी कहा जा सकता है। भारतीय संस्कृति में सम्भवतः पहली बार गौतम बुद्ध ने इसका सैद्धान्तिक उद्घोष किया था। संसार के प्रत्येक पदार्थ को अनित्य और नश्वर मानते हुए तथागत ने कहा था कि मानव जीवन में सर्वत्र दुःख ही दुःख है 'सब्ब दुक्खं।' उन्होंने अपने ढंग से इस दुःखपूर्ण संसार से मुक्ति पाने का उपाय भी बताया था। बाद में सांख्य दर्शन भी बुद्ध के दुःखवाद से प्रभावित हुआ। मध्यकाल में दैविक, दैहिक और भौतिक तापों का उल्लेख करते हुए हमारे संतों ने दुःखवाद के सिद्धांत की पुष्टि की और भगवद् भक्ति द्वारा सांसारिक कष्टों से मोक्ष पाने का उपदेश दिया। एक सम्प्रदाय नित्य दुःखवादियों का निकला जिन्होंने कहा कि दुःख से मुक्ति मिलना असम्भव है। महादेवी के काव्य को इसी नित्य दुःखवाद के सन्दर्भ में देखना चाहिए। जीवात्मा निरन्तर दुःख की दारुण अवस्थाओं को भोगता रहता है। महादेवी ने इस सत्य का स्पष्ट साक्षात्कार किया है। उनका दुःख एक प्रकार का आध्यात्मिक प्रणयजन्य दुःख है। उन्होंने जिस प्रियतम की अनुभूति कल्पना के क्षितिज पर की है, उसी प्रिय ने अपनी एक चितवन से उनके कवि जीवन में पीड़ा के असीम साम्राज्य की रचना कर दी है—

इन ललचाई पलकों पर, पहरा था जब व्रीड़ा का।
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का।
उस सोने के सपने को, देखे कितने युग बीते।
आँखों के कोष हुए हैं, मोती बरसा कर रीते॥

जसा कि मैंने आरम्भ म सकेत किया है, यह कह सकना बड़ा। कठिन है कि महादेवी के काव्य म मिलने वाला इस प्रगाढ प्रणयानुभूति और विरह वेदना का कोई आधार लौकिक प्रेम और विरह की प्रत्यक्ष अनुभूति के बिना अलौकिक अथवा आध्यात्मिक होगा। प्रणयानुभूति का एसा सूक्ष्म एव हृदयग्राही अकन सम्भव नही होता।

विचाय गीत क शेप (आरम्भ के) तीन छन्द इस प्रकार है—

स्पदन मे चिर निस्पद बसा क्रदन मे आहत विश्व हसा
नयनों मे दीपक से जलते पलकों मे निर्झरणी मचली।
मेरा पग पग सगीत भरा श्वासो से स्वप्न पराग झरा
नभ के नवरग बुनते दुकूल छाया मे मलय बयार पली।
मैं क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल चिन्ता का भार बनी अविरल
रजकण पर जलकण हो बरसी नव जी वन अकुर बन निकली।
मैं नीर भरी दुख की बदली।।

एक पूरा रूपक है। चाहे बदली के अर्थ में लगा लिया जाये, चाहे छायावाद के अनुसार यह मान लिया जाय कि प्रकृति के एक खण्ड (बदली) का मानवीकरण किया गया है और चाहे तो रहस्यवाद का अवलम्ब ग्रहण करते हुए जीवात्मा परमात्मा तथा ससार के सम्बन्धों की अवतारणा की जाय। प्रथम सन्दर्भ में बदली अपने स्वरूप गति और अवसान का वर्णन करती है। दूसरे सन्दर्भ म बदली अपने सजल परिवेश में एक सुकुमार विरहिणी प्रतीत होती है। तीसरा सन्दर्भ उस जीवात्मा का है जिसने ससार मे आने के उपरान्त दुःख की परम अनुभूति अर्जित की है। उसमें जो कुछ स्पन्दन और गति है उसके मूल म परमात्मा का निवास है। उसकी वेदना म ससार का विषाद पूर्ण सगीत मुखरित हो रहा है। आंखो म विरह की दीप्ति है पर कितना की कौंध, किन्तु पलको म अन्तर्व्यथा के कारण अश्रु निर्झर तरगायित है। इधर उधर से यह ससार कितना मादक है! चारो ओर माया का कैसा मनोहर ... है! किन्तु, ससार के क्षितिज पर जीवात्मा के उगने और अस्त हो जाने का ... क्षणिक है। जीवन और मृत्यु का दु खक्रम बराबर चल रहा है। न ... शायद कभी न हो। पन्त जी के शब्दों में 'चिर जन्ममरण के आरपार, शाश्वत जीवन नौका विहार!'

महादेवी की यह रचना उनके और उनके दु ... प्रतिनिधित्व करती है। सम्पूर्ण छायावाद युग मुख्यतः दुःख, ... इच्छा अनुभूति का युग रहा है। इसके आध्यात्मिक अथवा ... और वेदना की एक प्रश्न इसकी सामाजिकता के सम्बन्ध म उठता है। ...

(ख) असम्भव है चिर सम्मेलन।
न भूलो क्षण भगुर जीवन॥

(ग) वेदना मे जन्म करुणा मे मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात।
विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात॥

(घ) तुम दुख बन इस पथ से आना।
यह सौरभ हूँ मैं जो उड़कर
कलिका मे लौट नहीं पाता
पर कलिका के नाते ही प्रिय
जिसका जग ने सौरभ जाना!!

(ङ) प्रिय! सान्ध्य गगन मेरा जीवन!!

महादेवी की गीत सृष्टि की अधिकांश रचनाओ का यही प्रधान स्वर है। इनमे विरह, वेदना और ससार की क्षण भगुरता का बड़े प्रगाढ़ भाव से अकन किया गया है। दुख महादेवी के काव्य की मूलभूत चेतना है। इसे 'दुखवाद' भी कहा जा सकता है। भारतीय सस्कृति मे सम्भवत पहली बार गौतम बुद्ध ने इसका सैद्धान्तिक उदघोष किया था। ससार के प्रत्येक पदार्थ को अनित्य और नश्वर मानते हुए तथागत ने कहा था कि मानव जीवन मे सवत्र दुख ही दुख है सब्ब दुक्ख।' उन्होने अपने ढग से इस दुखपूर्ण ससार से मुक्ति पाने का उपाय भी बताया था। बाद मे सांख्य दशन भी बुद्ध के दुखवाद से प्रभावित हुआ। मध्यकाल म दविक, दहिक और भौतिक तापो का उल्लेख करते हुए हमारे सन्तो ने दुःखवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की और भगवद् भक्ति द्वारा सासारिक कष्टो से मोक्ष पाने का उपदेश दिया। एक सम्प्रदाय नित्य दुखवादियो का निकला जिन्होने कहा कि दुख से मुक्ति मिलना असम्भव है। महादवी के काव्य को इसी नित्य दुखवाद के सदभ म देखना चाहिए। जीवात्मा निरन्तर दुख की दारुण अवस्थाओ को भोगता रहता है। महादेवी ने इस सत्य का स्पष्ट साक्षात्कार किया है। उनका दुख एक प्रकार का आध्यात्मिक प्रणयजन्य दुख है। उन्होने जिस प्रियतम की अनुभूति कल्पना के क्षितिज पर की है, उसी प्रिय ने अपनी एक चितवन म उनके कवि जीवन मे पीड़ा के असीम साम्राज्य की रचना कर दी है—

इन ललचाई पलको पर, पहरा था जब व्रीड़ा का।
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का।
उस सोने के सपने को, देखे कितने युग बीते।
आँखों के कोष हुए हैं, मोती बरसा कर रीते॥

जैसा कि मैंने आरम्भ म सकेत किया है, यह कह सकना बडा कठिन है कि महादेवी के का य म मिलने वाला इस प्रगाढ प्रणयानुभूति और विरह वेदना का कोई आधार लौकिक प्रेम और विरह की प्रत्यक्ष अनुभूति के बिना अलौकिक अथवा आध्यात्मिक होगा। प्रणयानुभूति का एसा सूदम एव हृदयग्राही अकन सम्भव नही होता।

विचाय गीत के शेष (आरम्भ के) तीन छन्द इस प्रकार हैं—

स्पदन मे चिर निस्पद बसा शदन मे आहत विश्व हँसा
नयनो मे दीपक से जलते पलको मे निर्झरणी मचली।
मेरा पग पग सगीत भरा स्वासों से स्वप्न पराग झरा
नभ क नवरग बुनते दूकूल छाया मे मलय बयार पली।
मैं क्षितिज भकुटि पर घिर धूमिल चिन्ता का भार बनी अविरल
रजकण पर जलकण हो बरसी नव जो वन अकुर बन निकली!
मैं नीर भरी दुख की बदली।।

एक पूरा रूपक है। चाहे बदली के अथ मे लगा लिया जाये, चाहे छायावाद के अनुसार यह मान लिया जाये कि प्रकृति के एक खण्ड (बदली) का मानवीकरण किया गया है और चाहे तो रहस्यवाद का अवलम्ब ग्रहण करते हुए जीवात्मा, परमात्मा तथा ससार के सम्ब धों की अवतारणा की जाय। प्रथम स दभ मे बदली अपने स्वरूप गति और अवसान का वणन करती है। दूसरे सन्दभ म बदली अपने सजल परिवेश मे एक सुकुमार विरहिणी प्रतीत होना है। तीसरा स दभ उस जीवात्मा का है जिसने ससार मे आने क उपरान्त दु ख की परम अनुभूति अर्जित की है। उसम जो कुछ स्प दन और गति है उसके मूल म परमात्मा का निवास है। उसकी वेदना म ससार का विषाद पूण सगीत मुखरित हो रहा है। आखो म विरह की दीप्ति है या बिजली की कौंध, किन्तु पलको म अ तव्यथा के कारण अश्रु निर्झर तरगायित हैं। ऊपर ऊपर स यह ससार कितना मादक है! चारो ओर माया का कसा मनोहर परिवेश है! किन्तु, ससार के क्षितिज पर जीवात्मा के उगने और अस्त हो जाने की कहानी अत्यन्त क्षणिक है। जीवन और मृत्यु का दु खक्रम बराबर चल रहा है। न जाने कब समाप्त होगा? शायद कभी न हो। पन्त जी के श दा मे "चिर ज ममरण के आरपार शाश्वत जीवन नौका विहार!

महादवी की यह रचना उनके और उनक युग के काव्य का बडा अच्छा प्रतिनिधित्व करती है। सम्पूण छायावाद युग मुख्यत दु ख, निराशा और वेदना की अनुभूति का युग रहा है। इसके आध्यात्मिक अथवा काव्यात्मक मूल्य स अलग हटकर एक प्रश्न इसकी सामाजिकता क सम्ब ध म उठता है। अतिशय वैयक्तिकता और घोर

निराशा को प्रश्रय देने के कारण छायावादी कवियो पर पलायनवादी होने का आरोप लगाया जाता है। स्वाधीनता आदोलन और देश के नवजागरण के प्रथम प्रहर मे छायावाद ने प्रणय वेदना और दु खवाद के जिस स्वर को मुखरित किया उसे किसी भी दृष्टि से बहुत दायित्वपूण नही माना जा सकता। छायावादी काव्य-चेतना सामयिक यथाथ और युग सत्य से विमुख होकर एक अतिशय कल्पना प्रधान रोमानियत के कुहासे मे पथभ्रष्ट हो गयी थी। इस धारा के कवि अधिकाश मे क्षितिज के उस पार के किसी अयथाथ और अज्ञात लोक से अपना सम्ब ध जोडते रह गये। जब देश को उठाने और जगाने की जरूरत सबमे ज्यादा थी तब इन लोगो ने स्वय अपना आँखें बन्द कर ली और दु ख तथा निराशा के एकान्त गोपन कक्ष म आध्यात्मिक अथवा लौकिक प्रेम की पीडा का गान करते रहे। छायावाद के सामाजिक दायित्व पर विचार करते समय कुछ इसी प्रकार के तथ्य सामने आते हैं। लेकिन इस स्थिति पर एक दूसरे कोण से भी कुछ विचार किया जा सकता है। क्या यह सम्भव नही है कि देश की पराधीनता, आर्थिक शोषण और शोचनीय अवस्था की प्रगाढ अनुभूति के कारण ही छायावादी कवियो का दु खवाद पनपा और परिपुष्ट हुआ हो। महादेवी जी की प्रस्तुत रचना मे भी इस प्रकार के सकेत उपलब्ध होते हैं। जान पडता है कि उनका दु ख कुरीतियो और जड सस्कारो मे जूझती हुई भारतीय नारी का दु ख है। आहत विश्व और उसकी सिहरन का ध्यान उन्हें इस गीत मे भी हो जाता है। रजकण पर जलकण होकर बरसने और नवजीवन का अकुर बनकर फूट निकलने की कल्पना भी सामाजिक मगल की भावना से प्रेरित जान पडती है।

सक्षेप मे, 'नीर भरी दु ख की बदली' का यह गीत छायावाद की विभिन्न प्रवत्तियो को उद्घाटित करता है। कल्पना की स्वच्छन्द उडान और पीडा की प्रगाढ अनुभूति के आधार पर इसकी रचना हुई है। लौकिक अथवा आध्यात्मिक प्रणय की भावना इसके मूल मे है। प्रकृति की एक अनूठी सृष्टि के मानवीकरण या अपनी सवेदना के अनुकूल उसे चित्रित करने की कला का यहाँ पूण विकास दिखाई पडता है। 'स्पन्दन मे चिर निस्पन्द बसा' तथा 'विस्तत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना' जसी पक्तियाँ अध्यात्म और रहस्यवाद की प्रवत्ति को स्पष्ट करती हैं। अनुभूति की अतिशय वैयक्तिकता और रोमानियत के कारण सम्पूण रचना गीतिमय हो उठती है। रचना की भाषा तथा पद योजना म भी एक प्रकार का सगीत है। कुल मिलाकर यह गीत महादेवी की काव्य चेतना और गीत सष्टि का एक प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत करता है।
